आचार्य श्री दामनन्दी विरचित

पुराण सार संग्रह

आचार्य वसुनंदी मुनि

प्रकाशक

श्रीवाणी प्रकाशन

पुण्यार्जक

स्व. श्रीमति इंद्रारानी जैन स्व. श्री श्रीपाल जैन

की स्मृति में

परमपूज्य 108 मुनि श्री शिवानंद जी मुनि प्रशमानंद जी

के वर्षायोग 2018 के शुभ अवसर पर प्रकाशित

नमनकर्ता

श्रीमति छवि जैन सुनील जैन

अरिहंत जैन, अंशिका जैन

कृति - पुराण सार संग्रह

ग्रंथकार - आचार्य श्री दामनन्दी मुनि

सम्पादक - आचार्य वसुनंदी मुनि

प्राप्ति स्थान - ई-71 व 72, सैक्टर ए-5/6, ट्रोनिका सिटी, लोनी,
गाजियाबाद-201103 (उ.प्र.) मो. 9810018890

- अतिशय क्षेत्र जम्बू स्वामी तपोस्थली क्षेत्र, बौलखेड़ा, कामां, राज.

- अतिशय क्षेत्र जयशांतिसागर निकेतन, मंडौला, गाजियाबाद उ.प्र.

- हिमांशु जैन, फरीदाबाद, मो. 9024182930

संस्करण - द्वितीय 2018, 1100 प्रतियाँ

प्रकाशक - श्री वाणी प्रकाशन

प्राग् वक्तव्य

- आचार्य वसुनन्दी मुनि

संसार में प्राय: दो प्रकार के मनुष्य होते हैं। एक वे जो अपनी दुष्टता से संसार के प्राणियों को कष्ट या दु:ख के निमित्त होते हैं। जिनका नाम इतिहास के पन्नों पर श्याम वर्ण में अंकित है जिन्होंने इतिहास के पृष्ठों को भी कलंकित किया है, जो सदाचार, संयम, धर्म के विध्वंसक रहे। जिनका पुतला बनाकर चौराहे पर जलाते हैं। जिन्हें लोक में धिक्कारते हैं जिनका नाम भी कान में पड़ जाय तो लोग उसे अपशकुन या अशुभ ही मानते हैं जिनका कोई नाम भी लेना नहीं चाहता और न ही कोई व्यक्ति अपने पुत्रादि का वह नाम रखना चाहता है। जिसका नाम स्मरण भी शरीर में भय का संचार कर देता है, अशुभास्रव या पाप बंध का निमित्त है। तो दूसरी ओर कुलाचल के समान उत्तुंग श्रेष्ठ चारित्र वाले, सदाचार, परोपकार, शिष्टाचारी, विनयाचारी, धर्मात्मा, मूल साधक, दुर्द्धर तपस्वी, आत्म स्वरूप व परमात्मा के ध्याता, धर्म तीर्थ प्रवृति करने वाले महापुरुष होते हैं जिनका नाम स्मरण भी आज श्रद्धा के साथ किया जाता है। जो लोक में मंगलदायी, शुभ के निमित्त कारण, सन्मार्ग दृष्टा, एवं विश्व वंदनीय हुए। जिनका नित्य प्रात: ही नहीं अपितु सदैव सुख, शांति व मंगल् के निमित्त नाम स्मरण किया जाता है। जिनका नाम स्मरण करने, सुनने व ध्यान करने मात्र से असंख्यात् भवों के संचित पापों का उसी तरह क्षय हो जाता है, जैसे सूर्य के उदय होते ही अंधकार का क्षय हो जाता है। जिनका नाम पुराण/पौराणिक पुरुषों में आता है या जिनका नाम पुराणों में स्वर्णाक्षरों से अंकित है, जिनके नाम का पत्थर भी संसारी जनों के द्वारा अत्यंत श्रद्धा, भक्ति व समर्पण के साथ पूजा जाता है। जो लोकातिशयी, लोकोत्तर, लोकोपकारी, महापुरुष होते हैं वे अज्ञान तम से अवृत, इस विश्व में दिवाकर या इन्दु के समान होते है। उनका दिव्य ज्ञान, धर्म, संयम युक्त तप का दिव्य तेज आज भी पूरे विश्व को प्रकाशित/आलोकित करने में समर्थ है।

संसार में भलाई-बुराई, पाप-पुण्य, दिन-रात, प्रकाश-अंधकार, धर्म- अधर्म, शांति-अशांति, सुख-दुख, सदाचार-कदाचार, पर्वत-समुद्र, गुण-दोष, स्वभाव-विभाव, उपकार-अपकार, कृतज्ञता-कृतघ्नता, पृथ्वी-आकाश, जल-अग्नि, क्षमाशील-क्रोधी, मार्दव-मान, सरलता-कठोरता, सहजता-प्रवंचना, संतोषवृत्ति-लोभ, समता-रागद्वेष, संत महात्मा-दुष्ट पापात्मा ये सब छाया व धूप की तरह या देव नारकियों की तरह अनादिनिधन हैं।

आचार्य भगवन् विनयनंदी मुनिराज के परम शिष्य आचार्य भगवन् श्री दामनन्दि मुनिराज ने "पुराणसार संग्रह" नामक इस लघु ग्रंथ में देवाधिदेव भगवान श्री आदिनाथ प्रथम तीर्थंकर के जीवन चरित्र स्वरूप-आदिनाथ चरित्र, अष्टम तीर्थंकर का जीवन चरित्र श्री चन्द्रप्रभ चरित्र, पंचम चक्रवर्ती, बारहवें कामदेव व सोलहवें तीर्थंकर का जीवन चरित्र श्री शांतिनाथ चरित्र, बाइसवें तीर्थंकर का जीवन वृत्त श्री नेमिनाथ चरित्र, तेइसवें तीर्थंकर के जीवनवृत्त स्वरूप श्री पार्श्वनाथ चरित्र एवं कलिकाल धर्म साम्राज्य नायक अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी के जीवनवृत्त स्वरूप श्री वर्धमान चरित्र इन छह तीर्थंकरों का पवित्र जीवन चरित्र है।

इस ग्रंथ का स्वाध्याय भव्य सुधी प्राणियों के मिथ्यात्व अज्ञान व असंयम रूपी अंधकार को दूर करने में समर्थ, संसार, शरीर व भोगों का यथार्थ स्वरूप दर्शाकर वैराग्य का उत्पादक एवं समस्त कर्मों को नष्ट कर मोक्ष पद प्रदान करने में सहायक कारण है। यदि सुधी पाठक गण इन उक्त तीर्थंकरों का विस्तार से जीवन चरित्र पढ़ना चाहते हैं तो उन्हें श्री आदि पुराण, हरिवंश पुराण, पाण्डव पुराण, उत्तर पुराण, महापुराण, शांतिनाथ पुराण, चन्द्रप्रभ चारित्र, श्री नेमिनाथ पुराण, श्री पार्श्वनाथ पुराण या श्री पार्श्वनाथ चरित्र, महावीर पुराण, वर्धमान चरित्र, वड्ढमाण चरिऊ व अनुत्तर योगी/ तीर्थंकर महावीर व उनकी परम्परा के अन्य ग्रंथों का स्वाध्याय करना चाहिए।

ग्रंथ प्रकाशन में सहयोगी त्यागी व्रती, पुण्यार्जक, प्रकाशक एवं अन्य सभी प्रत्यक्ष व परोक्ष में रहे सहयोगियों को भी धर्मवृद्धि आशीर्वाद।

इस ग्रंथ के सम्पादन में मुझ अल्पज्ञ, छद्मस्थ साधक द्वारा त्रुटि रह गई हों तो सकल संयमी, अभेदरत्नत्रयधारी व विज्ञजन मुझे क्षमा करते हुए आगे के प्रकाशन में संशोधन हेतु सुझाव व संकेत देने का कष्ट करें, तथा सुधी पाठकगण गुणग्राही दृष्टि अपनाते हुए विनय पूर्वक ग्रंथ का आद्योपान्त स्वाध्याय करें।

"अलमति विस्तरेण"

कश्चिदल्पज्ञ श्रमण:
०२.१०.२०१८, श्री जिनशासन तीर्थ
अजमेर (राज.)

आचार्य दामनन्दि विरचित

पुराण सार संग्रह

श्री आदिनाथ चरित्र

प्रथम सर्ग

पुराण पुरुषों में श्रेष्ठ पुरुदेव भगवान् ऋषभदेव को प्रणाम कर मैं उनके पूर्व दस भवों से लेकर पुण्यवर्धक चरित्र का वर्णन करता हूँ॥१॥ इतिहास नाम से प्रसिद्ध, सन्तोष बढ़ाने वाले इस पुराण का सभी जन श्रवण करें। इसे सुधर्माचार्य ने अपने शिष्य जम्बूस्वामी के पूछने पर कहा था॥२॥ श्रुतकेवली के द्वारा कहे गये उस चरित्र के ठीक-ठीक वर्णन करने में मुझ- जैसे शास्त्रज्ञान-रहित की गति कहाँ? तो भी भक्ति से प्रेरित होकर वर्णन करता हूँ॥३॥

जम्बूद्वीप के पश्चिम भाग में सीतोदा नदी है। उसके उत्तर किनारे पर गन्धिल नाम का देश है। वहाँ मनोज्ञ विजयार्द्ध पर्वत पर अलका नाम की नगरी है। उस अलका नगरी के राजा अतिबल और रानी मनोहरी से दसवें भव पूर्व में भगवान् ऋषभ 'महाबल' नाम के पुत्र हुए। महाबल विद्याधरों के राजा थे॥४-५॥ वे सभी शुभ लक्षणों से सुशोभित तथा अति बलवान् और रूपवान् थे। वे पूर्व पुण्य के उदय से रानियों के साथ क्रीड़ा करते थे॥६॥ उनके महामति, संभिन्नमति, शतबुद्धि नामक तीन मंत्री मिथ्यादृष्टि थे और चौथा स्वयम्बुद्ध मन्त्री सम्यग्दृष्टि था॥७॥ एक समय राज्य-वर्धन (वर्षगांठ) नाम के उत्सव में उस काम-भोगासक्त राजा को स्वयम्बुद्ध ने उपदेश दिया कि सच्चे सुख की प्राप्ति के लिए आप दीक्षा ले लेवें॥८॥ इस पर सभा में बैठे हुऐ नास्तिक एकान्तवादियों ने हँसते हुए, श्रृगाल, टिट्टिभ के दृष्टान्त को देकर दीक्षा न लेने की बात कही अर्थात् उन लोगों ने स्वयम्बुद्ध की बात का खण्डन किया॥९॥

उन्होंने कहा कि वह तो वैसी ही बात हुई जैसे कि एक गृद्ध ने लोभ में आकर मुँह के मांस को छोड़ दिया और मछली पर झपटा। मछली तो पानी में चली ही गई और उसके पहले मांस भी। इस पर किसी कुलटा ने कहा कि अब आकाश की ओर क्या देखता है। तब गृद्ध ने उसे उत्तर दिया कि हे कुलटे ! तू क्या हँसती है। तू परदोष तो देखती है पर अपने दोष, अर्थ, कुल और पति को नहीं देखती ॥१०,११॥

इस बात पर श्रावक स्वयम्बुद्ध ने उस राजा के पूर्वज राजा अरविन्द की कथा सुनाई तथा उस राजा के पितामह शतबल ने जैनेश्वरी दीक्षा लेकर इन्द्रपद प्राप्त किया था, तत्सम्बन्धी कथा सुनाई। इस तरह यत्नपूर्वक बहुत देर तक उसने दीक्षा लेने का समर्थन किया ॥१२॥ किसी समय प्रोषध व्रत धारणकर वन्दना करने के निमित्त से वह मंत्री सुमेरु पर्वत पर गया। उसने वहाँ जिनालय में आदित्यगति और अरिञ्जय मुनि को देखकर उनसे प्रश्न किया ॥१३॥ कि हे नाथ ! हमारा स्वामी महाबल मुनि दीक्षा नहीं ले रहा है, इसका कारण बतलाइये ? ऐसा पूछने पर आदित्यगति मुनिराज ने अपने अवधिज्ञानबल से उत्तर दिया कि- ॥१४॥

इसी द्वीप के पश्चिम विदेह में गंधिल नाम का देश है। वहाँ नवदीक्षित इसने विद्याधरों के राजा को आकाश में जाते हुए देखकर निदान किया था ॥१५॥ अतः वह इस भव में काम भोगासक्त है। राजा की भोगासक्ति छुड़ाना कठिन नहीं है। वह भव्य है, और तुम्हारे वचनों को सुनेगा इसकी आयु केवल एक माह की है। इस प्रकार मुनि ने हेतु पूर्वक सब बातें कहीं ॥१६॥ यह सुनकर स्वयम्बुद्ध सुमेरु पर्वत से शीघ्र लौट आया और अपने स्वामी से उसने सब बातें कहीं। उसने यह भी कहा कि आप इस राजपाट को छोड़कर सच्चे देव की पूजा कीजिये ॥१७॥

उस महाबल ने अपने हितकारी मित्र के वचनों से राज्य को छोड़ दिया, आठ दिन तक अर्हंतदेव की पूजा की, तथा अन्त में समाधिमरण पूर्वक स्वर्ग में गया ॥१८॥ वह ऐशान स्वर्ग के श्रीप्रभ विमान में ललितांग नामका देव हुआ। वहाँ एक सागर प्रमाण आयु पाकर अर्हन्त भगवान् की पूजा का फल भोगने लगा ॥१९॥

धातकी खण्ड द्वीप के पूर्व दिशावर्ती सुमेरु पर्वत के पश्चिम विदेह में गन्धिल नाम का देश है। उसमें चारणमुनियों से सेवित एक अटवी है। उसके पास पाटलि ग्राम है वहाँ एक निर्धन निर्नामिका नाम की लड़की थी। एक समय उसने अम्बर तिलक पर्वत पर पिहिताश्रव नाम के मुनिराज को देखा ॥२०-२१॥ उनसे जिनेन्द्र गुणसम्पत्ति व्रत और श्रुतज्ञान व्रत को श्रद्धापूर्वक धारण किया और अंत में

उपवास कर वह श्रीप्रभ विमान में स्वयंप्रभा देवी हुई॥२२॥ वह स्वयम्प्रभा उस ललिताङ्ग की प्रधान देवी हुई तथा अपने गुरु की (मुनिराज जिन्होंने व्रत दिये थे) पूजा की। वह देवी ललिताङ्ग के साथ तीन पल्य की आयु पाकर, सुख से क्रीड़ा करने लगी॥२३॥

अपनी आयु के पन्द्रह दिन शेष रहने पर जिनेन्द्र की पूजा करता हुआ वह ललिताङ्ग स्वर्ग से च्युत हुआ। तब वह स्वयम्प्रभा देवी स्वयं भी छह मास तक धर्म में दृढ़ होकर जिनेन्द्र भगवान् की पूजा करती रही॥२४॥ स्वर्ग से च्युत होकर वह स्वयम्प्रभा पूर्व विदेह में पुष्कलावती देश की पुण्डरीकिणी नगरी में वज्रदन्त चक्रवर्ती और रानी लक्ष्मीमती की पुत्री हुई॥२५॥ रूप, विद्या और कला आदि गुणों से युक्त वह बालिका 'श्रीमती' इस नाम से विख्यात हुई। एक समय प्रातःकाल देवों के अद्भुत आगमन को देखकर उसे पूर्वभव का स्मरण हो आया और वह अपने महल में मूर्च्छित हो गई। यह देख सेवक-सेविकाओं ने उसे घेर लिया। चक्रवर्ती वज्रदन्त ने बालिका के जाति-स्मरण को जानकर उसकी परिचर्या में पण्डिता नाम की धाय को नियुक्त किया॥२६-२७॥

अनन्तर उसने एक ही समय में यशोधर भगवान् को मनोहर उद्यान में केवलज्ञान की उत्पत्ति तथा अपने शस्त्रागार में चक्ररत्न उत्पन्न होने की बात सुनी। कर्तव्य का निर्णय कर वह भक्तिवश पहिले जिनेन्द्र देव की पूजा करने गया॥२८॥ जिनेन्द्र देव की पूजा करने के बाद उसने चक्ररत्न की पूजा की। तथा चक्ररत्न को आगे कर नाना देशों पर शासन स्थापित करने के लिये प्रस्थान किया॥२९॥

यहाँ उस श्रीमती ने, अशोक वन में उस पण्डिता नाम की धाय द्वारा बार-बार पूछने पर अपने और अपने पति संबंधी तीसरे भव से लेकर वृत्तान्त सुनाया॥३०॥ देखी, सुनी और अनुभव में आई सभी बातों को कहकर तन्मय हो उसने एक पट पर स्पष्ट चित्र लिखा किन्तु उसमें कुछ बात छिपा रक्खी॥३१॥ योग विद्या जानने वाली वह धाय उस चित्रपट को लेकर महापूत नाम के जिनालय में गई। वह ऐसा जिनालय था जहाँ पर हमेशा पूजा उत्सव होते रहते थे॥३२॥

इधर वह चक्रवर्ती भी पृथ्वी जीतकर लौट आया। उसे अवधिज्ञान उत्पन्न हो गया था। उसने वहाँ आकर अपनी पुत्री को शीघ्र ही अपने समीप बुलाया॥३३॥ पैरों में प्रणाम करती हुई उस बालिका को कोमल वचनों से सन्तुष्ट कर, मस्तक चूम, आलिंगन कर राजा ने अपनी गोदी में बैठाया और पूछने पर कन्या ने कुशल

क्षेम की बात कही॥३४॥ अनन्तर राजा ने बतलाया कि मुझे जिनेन्द्र देव की वन्दना करते हुए अवधिज्ञान हो गया है। इसलिए मैं अपने, तुम्हारे और पति के पूर्व जन्मों को जानता हूँ॥३५॥ पहले इसी नगर में, इस भव से पाँच भव पहले मैं चन्द्रकीर्ति नामका राजा था। जयकीर्ति मेरा मित्र था॥३६॥

सम्यग्दर्शन पूर्वक श्रावकों के व्रतों को अच्छी तरह धारण कर, मित्र सहित मैं माहेन्द्र नाम के स्वर्ग में सात सागर आयु वाला प्रतीन्द्र हुआ॥३७॥ वहाँ से च्युत होकर पुष्करार्ध द्वीप के पूर्व सुमेरु के पूर्व विदेहवर्ती मंगलावती देश में रत्नसंचयपुर नगर में राजा श्रीधर और उनकी दो रानियाँ मनोहरी और मनोरमा से हम दोनों क्रम से श्रीवर्मा बलभद्र तथा विभीषण नारायण नाम के पुत्र हुए। हमारे पिता ने मुनि के पास धर्म सुनकर और विरक्त होकर जिनदीक्षा ले ली और उत्तम सर्वतोभद्र तप करके मोक्षपद प्राप्त किया। तथा मनोहरी नामक मेरी मां मेरे स्नेह से गृहधर्म में ही रत रही। आयु के अन्त में एक सौ चालीस उपवास करके मेरी माँ श्रीप्रभ ललिताङ्गदेव हुई॥३८-४१॥ अनन्तर भाई विभीषण के वियोग में अतिदुखी मुझे नारायण विभीषण का रूप धारण कर मनोहरी के जीव ने समझाया॥४२॥ फिर पांच हजार राजाओं के साथ मैंने युगन्धर जिनेन्द्र देव के समीप दीक्षा ले ली और सिहंनिष्क्रीड़ित तथा सर्वतोभद्र तप करने लगा। तप के प्रभाव से मैंने उत्तम अवधिज्ञान, बीज बुद्धि और पादानुसारी ऋद्धि प्राप्त की। दोनों व्रतों की अच्छी तरह आराधना कर अच्युत स्वर्ग में महिमाशाली देव हुआ और प्रीति-वर्धन नाम के अपने विमान में ललिताङ्ग को ले जाकर मैंने उसकी पूजा की ॥४३-४५॥

ललिताङ्ग वहाँ से च्युत होकर जम्बूद्वीप के पूर्व विदेहवर्त्ती मंगलावती देश में, विजयार्द्ध पर्वत की उत्तर-श्रेणी में स्थित गन्धर्वपुर के राजा वासव और रानी प्रभावती के एक सौ दस राजाओं का स्वामी महीधर नामक पुत्र हुआ॥४६-४७॥ वासव राजा ने अरिञ्जय मुनि के समीप दीक्षा धारण की और उसने कठोर काय क्लेश पूर्वक मुक्तावलि तप को तपकर अविनाशी मोक्ष पद प्राप्त किया। प्रभावती भी पद्मावती आर्यिका के समीप दीक्षा लेकर उग्र रत्नावली तपकर अच्युत स्वर्ग में गई॥४८-४९॥

एक समय वह महीधर राजा विद्या की प्राप्ति के लिए मेरु पर्वत पर आया और जिनालय में अष्टान्हिका पूजा करता हुआ बैठा ही था कि॥५०॥ हे पुत्रि! उसी समय पुष्करार्द्ध द्वीप के पश्चिम विदेह की प्रभंकरी नगरी में जिनेन्द्र विनयन्धर का

निर्वाण हुआ; और उनकी निर्वाण पूजा कर लौटे हुए देवेन्द्रों के साथ मेरु पर्वत पर जिनपूजा करने के लिए मैं भी आया। वहाँ अपनी माता के जीव महीधर को देखा ॥५१-५२॥ मैंने (जगत् के मंडनरूप) जिनेन्द्र देव के पास ही उस महीधर को समझाया और उसने दीक्षा ले ली तथा कनकावली तप करके प्राणत स्वर्ग का इन्द्र हुआ ॥५३॥ बीस सागर प्रमाण आयु तक भोगों को भोगकर वहाँ से च्युत होकर, वह धातकी खण्ड द्वीप की पूर्व दिशा में शोभित, पश्चिम विदेह के गन्धिल देश की राजधानी अयोध्या में राजा जयवर्मा और रानी सुप्रभा के अजितंजय नामका पुत्र हुआ ॥५४-५५॥

राजा जयवर्मा ने सर्व-ज्ञाता अभिनन्दन भगवान् के समीप दीक्षा लेकर आचाम्लवर्धन तप की तपस्या की और मोक्ष पाया। सुप्रभा ने सुदर्शना आर्यिका के समीप दीक्षा ले ली और रत्नावली नाम के उग्र तप को करके अच्युत स्वर्ग गई ॥५६-५७॥ वह अजितंजय भी चक्रवर्ती हुआ तथा अभिनन्दन जिनकी वन्दना करता हुआ, पापाश्रव के रुक जाने से 'पिहिताश्रव' नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥५८॥ तथा (अच्युतेन्द्र) से बोधित होकर उसने राज्य को छोड़कर दो हजार राजकुमारों के साथ मन्दरस्थविर मुनि के पास दीक्षा ले ली ॥५९॥ उन पिहिताश्रव मुनि के पास से हे पुत्रि ! तुमने अपने पूर्व तीसरे भव में उपवास व्रत लिये थे और श्रीवर्मा नाम के मेरे पूर्व भव में पिहिताश्रव के जीव ललिताङ्ग ने मुझे संबोधित किया था इसलिए वे मुनिराज हम दोनों के गुरु हुए ॥६०॥ मनोहरी के संबंध से मैंने इसके पूर्व हुए इक्कीस ललिताङ्ग देवों की पूजा की। जो कि सागरोपम आयु वाले थे ॥६१॥ हे पुत्री ! उन ललिताङ्ग में से तुम से सम्बन्धित बाईसवां ललिताङ्ग है वह स्वयम्बुद्ध मंत्री के उपदेश से जिनपूजा के प्रभाव से हुआ है ॥६२॥

एक और स्मरण की बात कहता हूँ सुनो। मेरे स्वर्ग में ब्रह्मेन्द्रादि देवता तथा ऐशान स्वर्ग से तुम दोनों दम्पति आये थे ॥६३॥ उन इन्द्रों ने युगन्धर जिनराज का इतिहास सुनने की इच्छा से मुझसे पूछा तब मैंने यह कथा कही थी ॥६४॥

जम्बूद्वीप पूर्व विदेह में सीता नदी के दक्षिण किनारे पर सुसीमा नगरी में उस भव से सातवें भव पूर्व में एक प्रहसित नामका वादी था, वह मिथ्यादृष्टि तथा हेतु, जाति, और छल में प्रवीण था। उसका मित्र विकसति था जो कि शब्दशास्त्र में विशारद था ॥६५-६६॥ वहाँ पर ऋद्धिधारी दश पूर्वों के जानकार मतिसागर नामके मुनि आये। उन्होंनें नयपूर्वक मधुर सद्धर्म का उपदेश दिया ॥६७॥ प्रहसित उनके

वचनों को सुनकर मित्र सहित दीक्षित हो गया और श्रुतज्ञान तप को आराधन कर अन्त में महाशुक्र स्वर्ग में देव हुआ। वहां मित्र सहित भोगों को भोगकर सोलह सागर प्रमाण आयु के समाप्त होनेपर दोनों धातकीखण्ड द्वीपके पश्चिम विदेह की पुण्डरीकिणी नगरी में राजा धनंजय और उसकी दो रानी यशस्विनी और जयसेना से बलभद्र और नारायण हुए। उनका नाम क्रमसे महाबल और अतिबल था। राज्य को भोगकर अपने भाई नारायण का वियोग होने पर बलभद्र महाबल ने दीक्षा ले ली ॥६८-७१॥ फिर शिवगुप्त मुनि के पास कठिन तप करके प्राणत स्वर्ग में गये जहाँ कि बीस सागर की आयु है ॥७२॥ वहाँ से च्युत होकर धातकीखण्ड द्वीपके पश्चिम मेरूकी पूर्व दिशावाले विदेह में प्रभाकरी नगरी के राजा महासेन और रानी सुन्दरी से जयसेन नाम का पुत्र हुआ ॥७३॥ उसने श्रीमन्धर जिनराज के समीप दीक्षा लेकर उग्र तपको तप कर षोडश कारण भावनाओं का अच्छी तरह आराधन किया तथा तीर्थंकर प्रकृति बांधी ॥७४॥ वह सिंहनिष्क्रीड़ित व्रत करके आठवें ग्रैवेयक में तीस सागर की आयु वाला अहमिन्द्र हुआ। फिर वहाँ से च्युत हो पुष्करार्ध द्वीप के पूर्व सुमेरु पर्वत के पूर्व विदेह में रत्नसंचय नगर के राजा अजितंजय और रानी वसुमती के युगन्धर नाम का पुत्र हुआ ॥७५-७६॥ लौकान्तिक देवों से सम्बोधित होकर उसने दीक्षा ले ली और चार घातिया कर्मों का नाशकर अनन्त चतुष्टय (अनन्तदर्शन, ज्ञान, सुख, वीर्य) को प्राप्त किया ॥७७॥ उन्होंने प्राणियों को हितकारी धर्म का उपदेश देकर और आत्महित चाहने वाले बहुत से भव्यों को प्रबोधित कर सकल भूमि में विहार किया। तथा मनुष्य, देव और असुरों से पूजित होकर अन्त में भगवान् युगन्धर मोक्ष पधारे ॥७८॥

इस प्रकार पुराणसंग्रह के पुरुदेव चरित में युगन्धर स्वामी का निर्वाण नामक प्रथम सर्ग समाप्त हुआ।

*****

द्वितीय सर्ग

हे पुत्रि ! इस प्रकार धर्म के प्रभाव से प्रहसित ने छयासठ सागर तक स्वर्ग सुख भोगकर मोक्ष प्राप्त किया। यह कथानक जो मैंने कहा वह क्या तुम्हें याद नहीं आ रहा है? पिहितास्रव मुनिराज को जब केवलज्ञान हुआ था और हम लोग नभस्तिलक पर्वत पर गये थे, उसकी याद शायद तुम्हें होगी ही॥२॥ हे पुत्रि, ब्रह्मेन्द्र, लान्तवेन्द्र, मैं तुम्हारा पति और तुम एक विमान में बैठकर स्वयम्भूरमण समुद्र गये थे, याद है न॥३॥

तुम से पचास हजार पूर्व (संख्या प्रमाण) वर्ष पहिले च्युत होकर मैं यशोधर और महादेवी से वज्रदन्त नामका पुत्र हुआ हूँ॥४॥ तुम्हारा वह बाईसवाँ ललिताङ्ग स्वर्ग से च्युत होकर मेरा भानजा हुआ है और वह यहाँ तीन दिन में ही आने वाला है॥५॥ लज्जा से नतमुखी अपनी पुत्री को इस प्रकार कहकर वह चक्रवर्ती भी "मैं तुम्हारी मामी के आने का स्वागत करने जाता हूँ" कहता हुआ बाहर चला गया॥६॥ उसी समय हर्षित मुख और नेत्र वाली पण्डिता धाय ने आकर जिनालय में हुए चित्र सम्बन्धी वृतान्त को सुनाया कि मेरे द्वारा फैलाये गये इस अभूतपूर्व चित्र को देखकर "यह किस लिए है क्या है, किसका है?" इस प्रकार स्त्री और पुरुष दोनों आश्चर्य में पड़ गये॥७-८॥ कोई कहने लगे कि इस चित्रपट में यह वर्ण से श्यामा कन्या चित्रित की गई है। मालूम होता है कि यह सुव्रता श्रीमती है॥९॥ वहाँ दूसरे छलियों को छलने वाले दुर्दान्त और वासव आदि भी आये थे जो उलट-सुलट बोल रहे थे किन्तु इस पण्डिता धाय ने उन्हें अनादृत कर दिया॥१०॥

इसके बाद सब के अन्त में अति पराक्रमी उस वज्रजंघ ने आकर जिनेन्द्र की तीन प्रदक्षिणा दीं और पीछे चित्रशाला में प्रवेश किया॥११॥ उस चित्रपट पर उसने पूर्व जन्मों की बातों को देखकर अपनी पूर्वजन्म की पत्नी का स्मरण किया और लम्बी श्वांस लेकर कहने लगा॥१२॥

मुझे खोजने के लिये ही स्वयंप्रभा के जीव ने निश्चय से यह चित्र खींचा है परन्तु अन्य चतुर दर्शकों से डरकर इस चित्र में कुछ बातें छिपा दी गई हैं॥१३॥ इस चित्र में किस स्थान में क्या-क्या गूढ़ है ऐसा प्रश्न करने पर तुम्हारे द्वारा बतलाये गये सभी संकेतों को "इस जगह यह गूढ़ है इस जगह यह गूढ़ है" कहते हुऐ ऐसे वज्रजंघ ने बतला दिया॥१४॥ और मुझ से पूछा कि यह किसकी लड़की

है। तब मैंने कह दिया कि यह तुम्हारे मामा की पुत्री है। यह सुनकर वह ललिताङ्ग का जीव उस चित्र को लेकर चला गया॥१५॥

वह उत्पलखेट नगर में श्रीप्रभ विमान से च्युत होकर वज्रवाहु राजा और महादेवी वसुन्धरी से वज्रजंघ नाम का पुत्र पैदा हुआ है और वह तुम्हारा फुफेरा भाई है, मैंने उसे देखा है। यह सुन श्रीमती प्रसन्न हुई और धाय का आलिंगन किया॥१६-१७॥ विवाह करने के लिए उत्सुक उसके पिता ने भी जामाता और बहिन को प्रसन्नता पूर्वक अपने नगर में लाकर उनका स्वागत किया॥१८॥ उस विद्वान राजा ने देवेन्द्रों से पूजित जिन भगवान् की पहिले अच्छी तरह पूजा की, फिर अपनी बहिन और भानजे का सम्मान किया और वज्रजंघ के लिए अपनी पुत्री विवाह दी। उस विवाह में अति सत्कार और दान से उस राजा ने देवताओं को भी चकित कर दिया था॥१९-२०॥ वे दोनों और बत्तीस हजार स्नेही मित्र मिलकर जिन पूजन करने से प्राप्त पुण्य का आनन्द लेने लगे॥२१॥

इसके बाद वज्रबाहु और वसुन्धरा सत्कार प्रतिष्ठा पाकर पुत्र और पुत्रवधु सहित अपने नगर में आये। फिर वज्रबाहु ने अपने राज्य पद पर वज्रजंघ को अभिषिक्त कर दिया॥२२॥ तथा विरक्त हो भोगों को छोड़कर यमधर मुनि के पास दीक्षा ले ली और घोर तपस्या द्वारा अष्ट कर्मों को नष्टकर मोक्ष पद पाया॥२३॥ इधर उन दोनों श्रीमती और वज्रजंघ के हजारों पूर्व वर्ष राज्य करते हुए क्षण के समान सुख से व्यतीत हो गये॥२४॥ उन दोनों के वीरबाहु, सुबाहु आदि नाम के ९८ पुत्र हुए और वे सब दीक्षित हो गये॥२५॥ एक समय वे दोनों महल की छत पर स्वेच्छा पूर्वक बैठे थे। उन्होंने आकाश से शीघ्रता पूर्वक आते हुए पिटारे सहित दो पुरुषों को देखा॥२६॥ उन दोनों ने आकर निवेदन किया कि हम गन्धर्व नगर के राजा मन्दरमाली विद्याधर और रानी वनमाला के पुत्र हैं॥२७॥

उन दोनों दूतों ने आकाश से नीचे उतरकर श्रीमती और वज्रजंघ के चरणों में नमस्कार किया और उठकर उन दोनों ने कुंकुम से लाल भुजाओं द्वारा वज्रजंघ और श्रीमती को वह पिटारा दे दिया॥२८॥ मुहर लगे हुए उस पिटारे को खोलकर उसमें उन दोनों ने एक पत्र देखा तथा दुःख और आनन्द से सजल नेत्र होकर उस पत्र को बांचा॥२९॥ मालूम हुआ कि वज्रदन्त चक्रवर्ती ने कमल में बन्द भौंरें को देख दशाङ्ग भोग वाले अपने राजपाट को दूसरों से भोगी गई नारी के समान छोड़ दिया है॥३०॥ दशाङ्ग भोगों के नाम क्रमशः ये हैं:- दिव्य नगर, दिव्य रत्न, दिव्य

निधि, दिव्य भाजन, दिव्य भोजन, दिव्य शय्या, दिव्य आसन, दिव्य भूषण, दिव्य वस्त्र और दिव्य नाटक ॥३१॥

अपने पौत्र पुण्डरीक को राजगद्दी पर बैठाकर वह चक्रवर्ती बहुत से क्षत्रियों के साथ दीक्षित हो गया। इतना ही नहीं चन्द्र और सूर्य जैसा तेज रखने वाले बीस हजार राजा और हजार राजपुत्र चक्रवर्ती के पीछे दीक्षित हो गये ॥३२-३३॥ तथा पण्डिता धाय के साथ साठ हजार रानियों ने भी ऐश्वर्य भोग को कुशाग्र के पानी समान छोड़कर दीक्षा ले ली ॥३४॥ अब आप दोनों आकर अनुन्धरी के पुत्र उस बालक पुण्डरीक का पालन करें ऐसा महादेवी लक्ष्मीमती पत्र द्वारा आप दोनों को निवेदन करती है ॥३५॥

चिन्तागति और मनोगति के द्वारा उस पत्र को सुनकर मतिवर मंत्री से सलाह लेकर वे दोनों सैन्य सहित शीघ्र चले ॥३६॥ महाशष्प नाम के वन में पहुँचकर शष्पसरोवर के किनारे आनन्द नामके सेठ और अकम्पन नाम के सेनापति की सलाह से सेना का पड़ाव डाल दिया ॥३७॥ वहाँ उनने और राजा-रानी ने सागरसेन और दमवर मुनि को दान दिया और दाता के नव पुण्यों का लाभ लेकर पुण्डरीकिणी नगरी को गये ॥३८॥ नव पुण्य इस प्रकार हैं:-(१) पड़िगाहना (२) ऊँचे स्थान में स्थापित करना (३) पैर धोना (४) पूजा करना (५) प्रणाम करना (६) वचन शुद्धि (७) काय शुद्धि (८) मनशुद्धि (९) ऐषणा शुद्धि। ये नव प्रकार के पुण्य हैं ॥३९॥ वहाँ महादेवी लक्ष्मीमती और कुमार पुण्डरीक को देखकर तथा मधुर वचनों से समझाकर, वे लोग वहाँ कुछ दिन तक रहे फिर अपने नगर को लौट आये ॥४०॥

एक समय अगुरु धूप के धुएं से व्याप्त शयनागार में सोते हुए दोनों मृत्यु को प्राप्त हुए और दान देने के माहात्म्य से वे दोनों उत्तरकुरु में भोगभूमियां हुए ॥४१॥ दस प्रकार के कल्पवृक्षों से निर्मित उस भोगभूमि में तीन पल्य की आयु पाकर उन्होंने दान के पुण्य-फल को भोगा ॥४२॥

वहाँ पर (१) मद्यांग (२) तूर्याङ्ग (३) विभूषणाङ्ग (४) ज्योतिरांग (५) गृहांग (६) भोजनांग (७) भाजनांग (८) प्रदीपांग (९) वस्त्रांग (१०) मालांग। ये दश जाति के कल्पवृक्ष हैं जो कि लोगों को मनोवांछित भोग- सामग्री देते हैं ॥४३॥

किसी समय सूर्यदेव के विमान को आकाश में जाता हुआ देखकर परस्पर

अति स्नेह वाले उन दोनों को जाति-स्मरण हो गया तथा वे मूर्च्छित हो गये ॥४४॥ फिर प्रबुद्ध होकर उन दोनों ने शिला तल पर आकर बैठे हुऐ दो चारण मुनियों को देखा। सिर से प्रणाम कर उनसे पूछा कि -हे प्रभु ! आप कौन हैं और कहां से आये हैं ॥४५॥ उनमें से ज्येष्ठ मुनि ने कहा कि मैं तुम्हारे 'महाबल' भव में स्वयम्बुद्ध नामका मंत्री था। संयम धारण कर सौधर्म स्वर्ग के स्वयम्प्रभ विमान में मणिचूल नामका देव हुआ ॥४६॥ वहाँ से च्युत होकर मैं पुण्डरीकिणी नगरी में रानी सुन्दरी और राजा प्रियसेन का ज्येष्ठ पुत्र प्रीतिंकर हुआ और यह मेरा छोटा भाई प्रीतिदेव है ॥४७॥ हम दोनों ने स्वयंप्रभ जिनराज के समीप दीक्षा लेकर तपबल से चारण ऋद्धि पाई है। अभी जिनप्रतिमाओं की वन्दना करके यहाँ तुम्हें सम्यक्त्वरूप रत्न देने को आये हैं ॥४८॥ इस रत्न से बढ़कर संसार में कोई वस्तु न है, और न हुई है और न होगी। उससे ही भव्य प्राणियों ने मुक्ति पाई है, तथा आगे पायेंगे, इसलिए सम्यक्त्व सबसे श्रेष्ठ है ॥४९॥ जिनेन्द्र द्वारा उपदिष्ट जीवादि पदार्थों का श्रद्धानरूप सम्यक्त्व ही तीन लोकों में सार है और उसे आप दोनों ग्रहण करें ॥५०॥ उन दोनों को इस तरह रत्नत्रय में आद्य रत्न सम्यक्त्व को देकर वे चारण मुनि चले गये। अन्त में सम्यग्दर्शन को धारण करके मृत्युपरांत वे युगलिया सौधर्म स्वर्ग गये ॥५१॥ वज्रजंघ का जीव श्रीप्रभ विमान में श्रीधर देव हुआ तथा सम्यक्त्व की महिमा से श्रीमती का जीव, स्त्री-पर्याय को छोड़कर स्वयम्प्रभ विमान में स्वयम्प्रभ देव हुआ ॥५२॥

एक समय श्रीप्रभ पर्वत पर प्रीतिंकर तीर्थंकर को केवल ज्ञान उत्पन्न हुआ उनकी पूजा करने के लिए मनुष्य, देव और असुर आये ॥५३॥ उस श्रीधर देव ने भी मुनिराज की वन्दना कर पूछा कि महाराज ! हमारे शेष तीन मिथ्यादृष्टि मंत्री कहाँ हैं? इस पर केवलीभगवान् ने उत्तर दिया ॥५४॥ कि वे संभिन्नमति और महामति नाम के मंत्री अनन्त भ्रमण वाले निगोद में पड़े हैं और शतबुद्धि मंत्री (दूसरे) नरक में घोर दु:ख सह रहा है ॥५५॥ यह सुनकर श्रीधर देव ने जाकर उस नारकी को समझाया और सम्यक्त्व धारण कराया। वह शतमति भी अपनी आयु समाप्त होने पर नरक से निकल कर पुष्करार्ध द्वीप में पूर्व विदेह के रत्न संचयपुर में चक्रवर्ती महीधर और महादेवी सुन्दरी के जयसेन नाम का पुत्र हुआ। वह अपने विवाह के समय ही श्रीधर देव द्वारा पुन: संबोधित हो विरक्त हुआ और यमधर मुनि के पास दीक्षा ले ली। पश्चात वह जयसेन तप करके ब्रह्म स्वर्ग का इन्द्र हुआ ॥५६-५९॥ सुधर्मा नाम की सभा में देवताओं को प्रसन्न करने वाली कथा

कहते हुए उस श्रीधर की ब्रह्मेन्द्र ने स्वर्ग में बड़ी पूजा की। यह देख सभी देव विस्मित हुए, तथा उन दोनों के सम्बन्ध को श्रवण कर अत्यन्त श्रद्धापूर्वक उनमें से बहुतों ने सम्यक्त्व धारण किया॥६०॥ इसके बाद एक सागर पर्यन्त भोगों को भोगकर श्रीधर देव वहाँ से च्युत हुआ, और जम्बूद्वीप में, पूर्व विदेह के वत्सकावती देश की सुसीमा नगरी में सदृष्टि राजा और रानी सुन्दर नन्दा के घर सुविधि नाम का पुत्र हुआ। तथा स्वयंप्रभ नामा देव, सुविधि की सुन्दरी स्त्री से केशव नाम का पुत्र हुआ॥६१-६२॥

एक समय उस सुविधिकुमार के श्वसुर चक्रवर्ती अभयघोष, धर्म-चक्रवर्ती विमलवाहन मुनिराज के पास गये। उसने सम्पूर्ण राज्य को विष-तुल्य छोड़कर अठारह हजार राजाओं के साथ दीक्षा ले ली। उस चक्रवर्ती के साथ पाँच हजार पुत्रों ने भी दीक्षा ले ली॥६३-६४॥ सुविधि ने अपने पुत्र केशव के स्नेह से दीक्षा न लेकर उत्कृष्ट श्रावक के व्रत धारण कर लिये। तथा बहुत समय तक विहार कर अन्त में सल्लेखना-पूर्वक शरीर त्याग किया, और अच्युत स्वर्ग में प्रतीन्द्र पदवी पाई। केशव भी श्रीधर मुनि के समीप देशव्रत (श्रावक व्रत) धारणकर, अन्त में समाधिमरण कर उसी स्वर्ग में सामानिक देव हुआ॥६५-६७॥ बाईस सागर पर्यन्त ऐश्वर्य कों भोगकर वे वहां से च्युत हुए, तथा जम्बूद्वीप के पूर्व विदेह में पुण्डरीकिणी नगरी के राजा वज्रसेन और श्रीकान्ता रानी से सुविधि का जीव देव तो वज्रनाभि नाम का पुत्र हुआ, तथा केशव का जीव इसी नगर में सेठ कुबेरदत्त और अनन्तमती के यहाँ धनदेव नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ॥६८-६९॥ वज्रजंघ के भव में जो मंत्री, पुरोहित, सेनापति और सेठ के जीव थे वे सब पीठ, महापीठ, सुबाहु और महाबाहु नाम के वज्रजंघ के भाई हुए॥७०॥ उस वज्रनाभि की तीस लाख पूर्व-प्रमाण कुमारावस्था थी। उसके पिता ने लौकान्तिक देवों से सम्बोधित होकर जिनदीक्षा ले ली॥७१॥ वज्रनाभि ने तीस लाख पूर्व-प्रमाण चक्रवर्ती पद भोगा। उसका मित्र धनदेव उसका गृहपति रत्न था॥७२॥

एक समय यथार्थ ज्ञान के उदय होने से राजा वज्रनाभि ने देवताओं द्वारा अभिलषणीय उस पुष्कलावती देश को कुम्हलाई माला के समान छोड़ दिया॥७३॥ वज्रदन्त नाम के पुत्र को राज्य देकर आठ भाइयों के साथ धनदेव मित्र के साथ अपने पिता के समीप दीक्षा ले ली॥७४॥ महान् तेजवाले ग्यारह हजार राजा और उसके सौ पुत्रों ने भी दीक्षा ले ली॥७५॥ निर्ग्रन्थ होकर उसने बड़ी श्रद्धा के साथ

बारह प्रकार के श्रुतज्ञान का अभ्यास किया और सिंहनिष्क्रीड़ित आदि महान् तपों को किया ॥७६॥ उस वज्रनाभि ने तीर्थंकर प्रकृति को बाँधने वाली उस सोलह भावनाओं की भावना की जो कि जगत् के श्रेष्ठ ऐश्वर्यों के लिए मूल्य-स्वरूप है और त्रैलोक्य में हलचल पैदा करने वाली हैं॥७७॥ उस चक्रवर्ती ने स्वकाल और स्वभावना के अनुसार तप किये और अन्त में अपने साथियों सहित श्रीप्रभ पर्वत के शिखर पर चढ़ चार प्रकार की आराधनाओं की आराधना की। एक मास का उपवास व्रत लेकर समाधिमरण कर सर्वार्थसिद्धि विमान में अहमिन्द्र हुए और वहाँ तैंतीस सागर की आयु पाई ॥७८-७९॥

इस प्रकार दामनन्दी आचार्य विरचित इस पुराणसार संग्रह के पुरूदेव चरित में सर्वार्थसिद्धि गमन नामक द्वितीय सर्ग समाप्त हुआ।

*****

तृतीय सर्ग

इस भारतवर्ष में विजयार्द्ध के दक्षिण में तीसरे काल सुषमादुषमा को बीतने के जब संख्यात वर्ष शेष रह गये थे तब क्रम से चौदह कुलकर हुए। उनमें से तेरह कुलकरों का काल बीत जाने के बाद देवों से पूजित नाभि नामका कुलकर हुआ ॥१-२॥

उसकी रानी मरुदेवी सभी श्री आदि छहकुमारिका देवियों से सेवित थी अर्थात् श्री आदि देवियाँ उसकी सेवा करती थीं। उसने एक समय हाथी, बैल आदि श्रेष्ठ सोलह स्वप्न देखे ॥३॥ तदनन्तर वह वज्रनाभि का जीव सभी इन्द्रों के आसनों को कँपाता हुआ सर्वार्थसिद्धि से च्युत हुआ तथा इस पृथ्वी मण्डल में आकर वृषभ रूप से, उस मरुदेवी के मुख में प्रवेश किया ॥४॥ तब मरुदेवी ने नाभिराजा से सब बातें कहीं और नाभिराजा ने उत्तर दिया कि हम दोनों त्रिभुवन-वन्द्य तीर्थंकर के माता-पिता होवेंगे ॥५॥

श्री, ह्री आदि कुमारियों से माता के गर्भ में रक्षित वे भगवान् त्रैलोक्य को कम्पाते हुए यथा समय पर उत्पन्न हुए ॥६॥ तब इन्द्र आदि ने शीघ्र आकर और भगवान् को सुमेरु पर्वत पर ले जाकर बड़े ठाठ-बाठ के साथ क्षीरसागर के जल से उनका अभिषेक किया। इसके बाद स्तुति करके उन्हें वापिस लाकर और माता की गोदी में विराजमान करके भगवान् की तथा उनके माता-पिता की पूजाकर वे सब देवगण अपने-अपने धाम को चले गये। पन्द्रह महीने अर्थात् गर्भ के छह मास पहले से लेकर भगवान् के जन्म होने तक प्रतिदिन स्वर्ग से साढ़े तीन करोड़ स्वर्ण-रत्नादि की वृष्टि होती रही ॥९॥ कुबेर ने भक्ति से और इन्द्र की आज्ञा से उत्साह पूर्वक काल तथा ऋतु के अनुसार सब प्रकार का प्रबंध कर दिया था ॥१०॥ उन भगवान् का शरीर स्वर्ण के समान कान्तियुक्त था। ऊँचाई पाँच सौ धनुष थी तथा शरीर एक हजार आठ शुभ लक्षण और व्यंजनों से युक्त था ॥११॥ तीनों जगत् में अति सुन्दरी यशस्वती और सुनन्दा से युक्त शोभित होते थे जैसे प्रभा और कान्ति से संयुक्त सूर्य शोभित होता है ॥१२॥ यशस्वती से भरत आदि निन्यानवें पुत्रों और ब्राह्मी पुत्री ने जन्म लिया। तथा सुनन्दा से बाहुबलि और सुन्दरी ने जन्म लिया ॥१३॥ भगवान् ने अपनी पुत्री ब्राह्मी को दक्षिण हाथ से अकारादि अक्षर सिखलाये और बायें हाथ से सुन्दरी को गणित विद्या सिखाई ॥१४॥

एक समय सुखपूर्वक बैठे हुए ऋषभ भगवान् के पास, नाभिराजा द्वारा भेजी गई सभी प्रजा, जीविका का उपाय जानने के लिए आई॥१५॥ हे नाथ, हम क्या करें? ऐसा पूछने पर दयाबुद्धि से भगवान् ने प्रजा के लिए, कृषि आदि कर्म तथा शिल्पादि कलाओं को सिखलाया॥१६॥ तदनन्तर देवगण इन्द्रों सहित ऋषभ भगवान् के राज्याभिषेक करने के लिए तथा प्रजा के कुशल-क्षेम की व्यवस्था के लिए आये॥१७॥

कुबेर ने शीघ्र ही आधे भरत क्षेत्र के बीच में विनीत जनता से परिपूर्ण साकेत नाम से प्रसिद्ध अयोध्या नगर को बसाया॥१८॥ इन्द्र की आज्ञा से देवों ने पृथ्वी का विभागकर उसे पुर, ग्राम, आकर, खेट, राष्ट्र पत्तन आदि से सुशोभित बनाया॥१९॥ उन कुशल देवों ने जगत् में कृषि आदि कर्म, जीवन निर्वाह के उपाय और कार्य करने के उपकरण-शस्त्रादि का बनाना सिखाकर लोक-व्यवहार को स्थापित किया॥२०॥ तदनन्तर वे देवगण भगवान् का राज्याभिषेक करके और तीन लोक में सारभूत दिव्य वस्त्रआभरण आदि को देकर स्वर्ग चले गये॥२१॥ पुनः भगवान् ने नाथवंशी, हरिवंशी, उग्रवंशी और कुरूवंशी आदि राजाओं को विभिन्न नगर, देश आदि देकर पृथ्वी का शासन किया॥२२॥ उन भगवान् ने देवों द्वारा किये गये अर्थात् लाये गये मनोहर भोगों को सोमप्रभादि राजाओं में बाँटते हुए चिरकाल तक सुख भोगा॥२३॥

एक समय नाना रस और अलंकारों से युक्त और नाना हावभावों से सहित एक नाटक, सभा के बीच में इन्द्र की आज्ञा से हो रहा था। वहाँ पर साक्षात्कामदेव के रूप के समान नीलांजना नामकी देवनर्तकी नृत्य कर रही थी। वह अचानक ही अदृश्य हो गई। यह देख प्रभु को वैराग्य हो गया॥२४-२५॥ उसी समय स्वर्ग से लौकान्तिक देवों ने आकर उन्हें सम्बोधा और कहा कि हे प्रभु! इस क्षेत्र में धर्मतीर्थ का काल चलाइये॥२६॥ तब सभी देवों के आसन कम्पित हुए और उन्होंने भगवान् के वैराग्य को जाना। सबने आकर भगवान् की बड़े वैभव से पूजा की॥२७॥ तब कुबेर ने शीघ्र एक सुन्दर पालकी बनवाकर उपस्थित की और इन्द्र ने भगवान् से निवेदन किया॥२८॥ उन भगवान् ने सौ पुत्रों को राज्य में प्रतिष्ठित कर सब परिग्रह को त्याग दिया तथा अपने अन्तःपुर से पूछकर सुदर्शना नामकी पालकी में चढ़े॥२९॥ सर्वप्रथम राजागण पालकी को उठाकर चले, फिर देवता लोग आकाश मार्ग में लेकर चले। उस समय वहाँ पर जय- जयकार के शब्द से

आकाश गूँज उठा ॥३० ॥ देवांगनाओं सहित, गीत, नृत्य और नाना प्रकार के उपहार भेंट करते हुए वे देवगण भगवान् को मनोहर सिद्धार्थ वन में ले गये ॥३१ ॥ यहाँ पालकी से उतरकर भगवान् ने वस्त्र-आभूषणों को तथा व्यभिचारिणी स्त्री के समान इस पृथ्वी को छोड़ दिया ॥३२ ॥ इसके बाद भगवान् ने अपने केशों को पाँच मुष्टि से लोंच कर चार-हजार राजाओं के साथ दिगम्बरी-दीक्षा धारण कर ली ॥३३ ॥ वस्त्र-रहितता, केश-लुंचिता, अंग-निःस्पृहता और मयूरपिच्छिका, इन स्वाभाविक चिन्हों को मुनियों में श्रेष्ठ उन ऋषभदेव ने ग्रहण किया ॥३४ ॥ इन्द्र, जिन भगवान् के केशों को एक पवित्र पिटारे में बन्द कर ले गया और अति सत्कार-पूर्वक क्षीर-सागर में उन्हें समर्पित किया ॥३५ ॥ इन्द्रों से पूजित वे भगवान् स्वतः चार निर्मल ज्ञानों से युक्त थे तो भी उन्होंने यथाविधि बारह प्रकार के उग्रतपों को किया ॥३६ ॥

छः माह बीतने के बाद भगवान् के साथ दीक्षित कच्छ, महाकच्छ आदि राजागण असह्य भूख, प्यास, गर्मी और सर्दी से पीड़ित होने लगे ॥३७ ॥ उनमें से कितने तो पके फल, पत्ते खाने वाले साधु हो गये। भगवान् का पौत्र मरीचि प्यास से पीड़ित हो मिथ्यामत का प्रचारक परिव्राजक साधु हो गया ॥३८ ॥ एक समय कच्छ, महाकच्छ के पुत्र नमि, विनमि भगवान् के पास याचना करने आये। तब धरणेन्द्र ने उन दोनों को विजयार्ध पर्वत की उत्तर-दक्षिण श्रेणी का स्वामी बना दिया ॥३९ ॥ भूख-प्यास सहने की शक्ति होते हुए भी वे भगवान् धर्म-स्थापना के निमित्त अर्थात् यतियों की चर्या प्रकट करने के लिए छः माह की तपस्या के बाद गोचरी के लिए निकले ॥४० ॥ वे भगवान् नृपों द्वारा, ग्रामीणों द्वारा, नगरों तथा राष्ट्रों द्वारा भक्ति-पूर्वक पूजे जाते हुए क्रम से एक वर्ष में हस्तिनागपुर पहुँचे ॥४१ ॥ वहाँ के राजा सोमप्रभ और उनके भाई श्रेयांस ने रात्रि में कुछ शुभ स्वप्न देखे और आपस में एक दूसरे से देखे हुए स्वप्नों को कहने लगे ॥४२ ॥ उन्होंने कहा कि हम लोगों ने स्वप्न में मेरु, कल्पवृक्ष, चन्द्रमा, रत्नद्वीप, देवध्वजा, विद्युन्माला तथा विमान और ब्रह्मा को रात्रि के अन्तिम प्रहर में देखा है, इनका क्या फल होगा? इस प्रकार उत्तम मंत्रियों वाले उन दोनों ने अपने-अपने मंत्रियों से स्वप्न कहे ॥४३-४४ ॥

हम लोगों का कोई इष्टबन्धु आवेगा, हम अपने तीन लोक में प्रसिद्ध श्रेष्ठ-बन्धु को देखेंगे, आज हमारा कल्याण होगा, ऐसा उन लोगों ने कहा ॥४५ ॥ वे दोनों, अपनी अभूतपूर्व विभूति को, राज-भवन की शोभा को तथा दिशाओं की स्वच्छता

को देख आश्चर्यचकित हो गए॥४६॥ जिस समय वे दोनों भगवान् ऋषभदेव की कथा कहते हुए बैठे थे कि प्रहरी लोगों ने भोजन करने के समय की सूचना दी॥४७॥ सुन्दर मणियों से निर्मित स्थल पर भोजन करने के लिए बैठे हुए उन दोनों को सिद्धार्थ नामक द्वारपाल ने भगवान् के आगमन का समाचार दिया॥४८॥ कि जिन भगवान् का नाम मात्र लेना, और जिनके नमस्कार के लिये कहे गये शब्द, भक्त लोगों को संसार से पार उतारने के लिए समुद्र में नौका के समान हैं, जिनके जन्माभिषेक के बाद रूप देखने में अतृप्त होकर इन्द्र ने हजार नेत्र बना लिए थे। जिनकी कथा आप लोग रात-दिन करते हैं वे जगत् के चन्द्र आज हमारे अतिथि बनकर यहाँ आये हुए हैं॥४९-५०॥ गज के समान मस्त गति से चलते हुए उन्होंने उत्तर दिशा के दरवाजे से हम लोगों के नगर में प्रवेश किया है। वे चान्द्री चर्या का अवलम्बन कर चार हाथ प्रमाण भूमि को देखते हुए चले आ रहे हैं॥५१-५२॥ नगर-निवासी नर-नारीजनों से चरणों में अर्घ्य-दान, आसन-प्रदान आदि के द्वारा आदर-सत्कार पाते स्तुति, वन्दना और पूजा को प्राप्त करते हुए, अञ्जलिबद्ध नमस्कार करने वाले नागरिकों से मिलते हुए, घर-घर विहार करते हुए वे भगवान् हमारे आंगन में प्रवेश कर रहे हैं॥५३-५४॥

इस तरह सिद्धार्थ से कही इन बातों को सुनकर परिवार सहित वे दोनों जिन भगवान् के स्वागत के लिये सन्मुख गये। जैसे कि चन्द्रमा के स्वागत के लिए बुध और शुक्र जाते हैं॥५५॥ उन दोनों ने, उगते सूर्य के समान कान्तिमान्, शरत् कालीन पूर्ण चन्द्रमा के समान सौम्य, पृथ्वी, दिशा और आकाश के भूषण-स्वरूप, उन जिन भगवान् के रूप को देखा॥५६॥ सुमेरु पर्वत की जैसे चन्द्र-सूर्य प्रदक्षिणा करते हैं उसी तरह इन दोनों ने भगवान् की परिक्रमा की, तथा शरत्-काल के समान स्वच्छ माला और कुण्डल वाले उन दोनों ने सिर नवाकर उनके चरणों में प्रणाम किया॥५७॥ सिरपर हाथ रखकर और उन मौनव्रती भगवान् से क्षेम-वार्ता पूछकर, भगवान् के सम्मुख उपस्थित वे प्रभु के योग्य काल में आगमन के विषय में सोचने लगे॥५८॥

अपनी सपत्नियों तथा पुत्री सहित उस लक्ष्मीमती रानी ने ग्रहों सहित चाँदनी के समान उन भगवान् की प्रदक्षिणा की॥५९॥ हर्ष से पुलकित नेत्रवाला श्रेयांस राजा भगवान् को निर्निमेष नयनों से देखता हुआ सोचने लगा कि मैंने पहले ऐसे रूप को कहीं देखा है? ॥६०॥

ऋषभदेव के उस उपशान्त मनोहर दीप्तिमान् सुन्दर अप्रतिहत तेजस्वी जितेन्द्रिय शरीर प्रभाव से प्रबोध को प्राप्त हुआ, अर्थात् उसे जातिस्मरण हो आया। अपने और भगवान् के पूर्व के दश भवों को जानकर भगवान् के चरणों से लिपट गया और सोचने लगा कि ये भगवान् हमारे स्नेह से ही यहाँ आये हैं॥६१-६२॥ उठकर आनन्द-अश्रुओं को पोंछकर तथा भगवान् के आने के कारण को जानकर प्रसन्न-मन हो कहने लगा कि ऐसे सत्पात्र को पा मैं धन्य हूँ॥६३॥ क्रिया विधि को जानने वाले उस श्रेयांस ने विधिपूर्वक उनका सत्कार और पूजा कर कलश में गन्ने के रस को लेकर जिन भगवान् से निवेदन किया॥६४॥ हे नाथ उद्गम, उत्पाद आदि दोषों से तथा अध: कर्म से रहित विशुद्ध इस प्रासुक रस को त्रैलोक्य की शान्ति के लिए लीजिए॥६५॥ भगवान् "यह आहार संशय को दूर करने वाला है, उद्गमादि दोषों से रहित है, व्रत और स्वाध्याय के विघ्न का नाशक है, स्वतंत्र है" 'ऐसा विचार कर उसे ग्रहण करने के लिए अपना पाणिपात्र बढ़ा दिया॥६६॥ श्रेयांस द्वारा प्रदत्त दान को जिनेन्द्र द्वारा ग्रहण करने पर सहसा आकाश में धन्य दान, अहो दान! ऐसा महान् शब्द हुआ॥६७॥ उस समय देवताओं की दुन्दुभियाँ बजने लगीं, सुगन्धित पवन चलने लगी और जगती तल को ढँकने वाली धनराशि स्वर्ग से बरसने लगी॥६८॥ सिर कँपाते हुए, अंगुलियों से शब्द करते, ताल ठोंकते और हाथ घुमाते हुए देवों ने "बहुत अच्छा, बहुत अच्छा" कहते हुए आकाश से पुष्पवृष्टि की॥६९॥ तप और संयम की रक्षा करने वाली भिक्षा को थोड़ी मात्रा में लेकर उन लोगों से पूजित वे भगवान् निकलकर उद्यान में आये॥७०॥ धर्म-तीर्थ को चलाने वाले के चले जाने पर दान-तीर्थ के प्रवर्तक उस श्रेयांस की देवों ने सत्पात्र-दान की महिमा को घोषित करते हुए पूजा की॥७१॥ इसके बाद उस महान् देव-घोषणा को सुनकर राजा लोगों ने आकर दान-धर्म प्रवर्तक श्रेयांस की पूजा की॥७२॥ उन लोगों ने श्रेयांस का राज्याभिषेक किया और पूछा तब राजा श्रेयांस ने पूर्व-जन्म में हुए वृतान्त को सुनाया॥७३॥

भगवान् आदिनाथ ने भी नाना प्रकार के अभिग्रहों से तप करते हुए एक हजार वर्ष बिताये। तथा विहार करते हुए क्रम से पूर्वतालपुर नगर पहुँचे॥७४॥ वहाँ ध्यान के साधन-स्वरूप शकट नाम के उपवन में वटवृक्ष के नीचे भगवान् शुक्ल ध्यान में लवलीन हो क्षपकश्रेणी में आरूढ़ हुए अर्थात् क्षपक श्रेणी पर चढ़े॥७५॥ मोहादिक चार घातिया कर्मों का नाशकर भगवान् ने त्रैलोक्य को हर्षित करने वाले परम ऐश्वर्यशाली अर्हन्त पद को प्राप्त किया॥७६॥ अपने आसन के काँपने से

इन्द्र लोगों ने भगवान् को "केवलज्ञान की उत्पत्ति हुई है" यह जाना। दूसरे भवन-वासी, व्यन्तर तथा ज्योतिषी देवों ने भी अपने भवनों में शंख, भेरी, मृदंग और घण्टादि के बजने से केवलज्ञान की उत्पत्ति को जाना। वे सब अपने-अपने अनीक जाति के देवों से रचित विमानों में खूब सज-धज कर आये और जिन भगवान् के तपोजनित विभूति को अर्थात् समवसरण के वैभव को देखकर आश्चर्यचकित हुए॥७७-७८॥ अष्ट प्रातिहार्यों की रचना करके देवाङ्गनाओं सहित प्रणाम करते हुए देव असुरों ने गीत, नृत्य, स्तोत्र और वाद्यों से भगवान् की पूजा की॥७९॥ भरत चक्रवर्ती ने एक काल में ही घर में पुत्र की, आयुधागार में चक्ररत्न की और भगवान् को केवलज्ञान की उत्पत्ति सुनी। तब सर्वप्रथम महाराज भरत राजाओं के साथ भगवान् की वन्दना करने के लिए गये॥८०॥ वहाँ आठ प्रातिहार्य और चौंतीस अतिशय से युक्त भगवान् की उन्होंने वन्दना की ॥८१॥ भरत के छोटे भाई वृषभसेन ने भगवान् के दर्शन कर उनके सामने ही दीक्षा ले ली, और नरेन्द्रों तथा देवेन्द्रों द्वारा अभिषिक्त हो गणधर पद पाया॥८२॥ कुरुवंशी श्रेयांस और सोमप्रभ दोनों भाइयों ने अपने राज्य को जयकुमार और उसके छोटे भाई को देकर और भगवान् की शरण में आकर दीक्षा धारण कर ली॥८३॥ सुन्दरी और ब्राह्मी ने भी अतिसन्तुष्ट हो आदिनाथ भगवान् की शरण ली और मनुष्य तथा देवों से अभिषिक्त होकर आर्यिकाओं में अग्रणी हुई॥८४॥ भगवान् आदिनाथ के समवशरण में इस प्रकार चार प्रकार का संघ बना और उन देव-असुरादि के तथा चतुर्विध संघ के बीच में भगवान् ज्योतिषियों से घिरे हुए कार्तिक मास के चन्द्रमा के समान सुशोभित हुए॥८५॥

इस प्रकार पुराणसार संग्रह के पुरुदेवचरित में केवलज्ञानोत्पति नाम का तृतीय सर्ग समाप्त हुआ।

*****

चतुर्थ सर्ग

देवताओं के साथ आठ दिन तक भगवान् की पूजा कर, सेना सहित वह भरत भारतवर्ष को जीतने को इच्छुक हुआ ॥१॥ पश्चात् उसने घर आकर चक्ररत्न की पूजा की और चक्र को आगेकर गंगा के किनारे- किनारे उसके दरवाजे तक गया और वहाँ उसने अष्टम् भक्त अर्थात् तेला या तीन दिन का उपवास किया ॥२॥ फिर उसने दरवाजे के खुलने पर पवन के समान वेग वाले घोड़ों से जुते हुए देव-रचित अजितंजय नाम के रथ में बैठकर प्रवेश किया। विशालबाहु वह भरत बारह योजन प्रमाण महासमुद्र को पारकर वैशाख नाम के आसन से स्थित हो उसने वज्रकाण्ड नामक धनुष को संभाला, अपने नाम से अंकित अमोघ बाण को उसने छोड़ा और उल्कापात् जैसे वेग वाला वह बाण १२ योजन पर जा गिरा ॥३-५॥ उस बाण के गिरने से मागध नाम का भवनवासी देव घबड़ा गया और बाण पर लिखा नाम बांचने से उसने जाना कि चक्रवर्ती संसार में उत्पन्न हो गया है ॥६॥ गलित मान होकर वह देव अपने अल्प पुण्य की निन्दा करता हुआ अपने योग्य तथा उत्तम-उत्तम मणियों को लेकर, पृथिवी में श्रेष्ठ हार को तथा कुण्डलों और मुकुट को लेकर, नाना वस्त्राभूषण और नाना तीर्थों के जल सहित भरत के सामने आ उपस्थित हुआ ॥७-८॥ "मैं क्या करूँ" इस प्रकार कहते हुए उस देव ने भरत का सत्कार किया तथा उनकी अनुज्ञा से विश्वस्त होकर वह अपने स्थान को चला गया। भरतराज ने भी वहाँ से प्रस्थान किया ॥९॥

तदनन्तर दक्षिणवासी राजाओं और व्यन्तरों को आज्ञा करता हुआ वह चक्रवर्ती समुद्र के किनारे-किनारे जाकर वैजयन्त द्वार के पास पहुँचा ॥१०॥ वहाँ वरतनु नामक देव को मागध देव के समान ही बुलाया। वह भी चूड़ामणि रत्न, ग्रैवेयक हार, वीरों के केयूर, कड़े तथा नंद्यावर्त नामकी करधनी को भेंट करता हुआ हाथ जोड़े सेवक के रूप में उपस्थित हुआ ॥११-१२॥ दक्षिण तरफ रहने वाले लोगों को अपने वश में करता हुआ जम्बूद्वीप की वेदिका के किनारे किनारे वह चक्रवर्ती चला और अनेकों देवों और राजाओं पर आज्ञा करता हुआ सिन्धु नदी के द्वार पर आ पहुँचा ॥१३॥ गंगाद्वार के विधान के समान उस चक्रवर्ती ने यहाँ प्रभास नाम के देव को वश में किया और उस देव ने सन्तानक आदि कल्पवृक्षों के पुष्पों की माला, मोतियों का ढेर, मुकुट, रत्नों से जटित स्वर्णमाला तथा तीर्थोदक भेंट में दिये

और इस प्रकार उससे पूजा-प्रतिष्ठा पाकर भरतराज उत्तर दिशा को गये ॥१४-१५॥

चक्ररत्न के पीछे-पीछे चलकर वह चक्रवर्ती विजयार्द्ध पर्वत की वेदिका के पास पहुँचा। वहाँ उस चक्रवर्ती ने उपवास किया। तब वहाँ के देव विजयार्द्धकुमार ने अपने अवधिज्ञान से चक्रवर्ती का आगमन जानकर उत्तम सिंहासन, अनुपम चमरों के युगल और झारी चक्रवर्ती को प्रदान किया तथा जल के घड़े लाकर उनका अभिषेक किया "मैं तुम्हारा ही दास हूँ" ऐसा निवेदन कर वह देव चला गया ॥१६-१७॥ इसके बाद चक्ररत्न की पूजा कर वह चक्रवर्ती विजयार्ध पर्वत की तिमिश्र गुफा के द्वार पर पहुँचे। वहाँ रहने वाले कृतमाल देव ने तिलक आदि चौदह प्रकार के आभूषण भेंट में दिये और "मैं तुम्हारा सेवक हूँ" ऐसा निवेदन कर चला गया। तदनन्तर चक्रवर्ती की आज्ञा से उस युद्ध-विशारद सेनापति ने हरे वर्ण वाले कुमुदावेलक नाम के अश्वरत्न पर चढ़कर दण्डरत्न से गुहा-द्वारका भेदन किया ॥१७-२१॥ तब दरवाजा खुलने पर, चक्रवर्ती ने लड़ाई की तैयारी कर सेना के साथ विजयपर्वत नाम के हाथी पर चढ़कर उसमें प्रवेश किया। काकणीरत्न और मणिरत्न की कान्ति से उस गुफा में रात-दिन का विभाग नहीं मालूम पड़ता था। उस गुफा के भीतर उन्मग्नजला और निमग्नजला नाम की दो नदियाँ थी। उनके किनारे सेना का पड़ाव पड़ा था। कामवृष्टि नाम के गृहपति और भद्रमुख नाम के स्थपति ने शीघ्र ही उन दोनों नदियों पर पुल बना दिया। जिसके द्वारा उन दोनों नदियों को पार कर वे सब उत्तर दरवाजे के पास गये और पूर्व के समान ही उस दरवाजे को भी खोला ॥२२-२५॥

भरत क्षेत्र के उत्तर द्वार पर आई हुई उस बड़ी सेना को देखकर बड़े पराक्रम वाले आवर्त और चिलात म्लेच्छ राजाओं ने उस पर चढ़ाई कर दी ॥२६॥ इसके बाद अलंघ्यबुद्धि उस सेनापति ने अश्वरत्न पर चढ़कर उन सबको शीघ्र ही, जैसे प्रबल वायु मेघों को भंग करता है, उसी तरह भंगकर दिया ॥२७॥ उनकी कुल परम्परा से आये हुए उन म्लेच्छों के मेघमुख और नागमुख नामक नागकुमार कुलदेवता थे। उनकी उन्होंने आराधना की और उस काल में वे कुशासन पर शयन करते थे ॥२८॥ तब मेघमुख नाम के देवों ने बड़े-बड़े बादलों से आकाश को ढँककर चक्रवर्ती की सेना पर मूसलाधार वर्षा की ॥२९॥ उस चक्रवर्ती ने तड़तड़ाती हुई बिजली सहित उस वृष्टि को देखकर ऊपर छत्ररत्न तथा नीचे चर्मरत्न बिछा दिया ॥३०॥ बारह योजन तक फैली हुई तथा पानी के बीच में तैरती

हुई वह सेना सात दिन तक समुद्र में डूबे हुए अण्डे के समान मालूम पड़ती थी॥३१॥ तब चक्रवर्ती अति क्रुद्ध हुआ। इस पर गण-देवताओं ने उन मेघमुख देवों को डरा कर भगा दिया और क्षणभर में वृष्टि बन्द हो गई॥३२॥ मेघमुख नामक उन नागकुमार देवों के कहने पर वे म्लेच्छ राजागण अपनी कन्याओं को भेंट लेकर चक्रवर्ती की शरण में गये॥३३॥ "हम लोग क्या आज्ञा पालें" इस प्रकार नम्रीभूत उन्हें देखकर चक्रवर्ती ने "डरो मत" ऐसा कह कर और अनुरागयुक्त हो वह सिन्धु नदी की वेदिका के किनारे-किनारे चला॥३४॥

तब सिन्धु नदी के कूट पर रहने वाली सिन्धुदेवी ने उस चक्रवर्ती को हजार स्वर्ण-कलशों से स्नान कराके उसके लिए पादपीठ से युक्त दो भद्र सिंहासन दिये। फिर इसके बाद उसने सेना को हिमवान् पर्वत के तट की ओर जाने की आज्ञा दी॥३५-३६॥

वहाँ कुशों की शय्या में शयन किया तथा अष्टोपवास धारणकर उस चक्रवर्ती ने तीर्थों से लाये गये जल से स्नान किया। फिर प्रसन्न चित्त हो मंगलविधि की और युद्ध के लिए तैयार हुआ। विधिपूर्वक सजे हुए उत्तम अश्वरथ में बैठकर वह चक्रवर्ती चक्ररत्न को आगे करके हाथ में वज्रकाण्ड नामक धनुष लेकर उस दिशा की ओर गया जिस ओर छोटा हिमवान् कूट था। और वहाँ उपयुक्त आसन से स्थित होकर चक्रवर्ती ने अपने तरकश से बाण को निकाला॥३७-३९॥ तथा "रे रे मेरे देश में निवास करने वाले सुवर्णकुमार और नागकुमारो सुनों" यह कहते हुए बाण छोड़ दिया॥४०॥ नाम से अंकित वह बाण बारह योजन जाकर गिरा। तब वहाँ रहने वाले देव ने चक्रवर्ती को आया हुआ जाना और औषधि माला तथा गोशीर्ष और चन्दन लाकर उसे भेंट चढ़ाई तथा पूजा की और उसके शासन को स्वीकार कर लिया॥४१-४२॥

अनन्तर हिमवत् कूट को छोड़कर वह चक्रवर्ती वृषभाचल पर आया। उस पर्वत के शिखर पर उसने काकणीरत्न से अपना नाम लिखा "मैं पुरुदेव का पुत्र चक्रवर्ती भरत हूँ" इस प्रकार घोषणा करता हुआ वह विजयार्द्ध पर्वत की वेदिका के पास गया॥४३-४४॥

वहाँ पर उसने उपवास किया। यह मालूम कर दोनों श्रेणियों में रहने वाले नमिकुमार और विनमिकुमार विद्याधरों ने गन्धार और पन्नग जाति के साथ शीघ्र आकर अनेक श्रेष्ठ रत्न तथा सुभद्रा नाम के स्त्रीरत्न को भी भेंट किया। अनन्तर

चक्रवर्ती ने सुभद्रा को स्वीकार कर उन दोनों का सत्कार किया ॥४५-४६॥

इस प्रकार विद्याधरों को वश में करके वह गंगा नदी की वेदिका की ओर चला और वहाँ कुश आसन पर सोते हुए उसने अष्टोपवास किये॥४७॥ गंगा के कूट में रहने वाली गंगादेवी ने यह जानकर उस चक्रवर्ती का हजार सोने के कलशों से अभिषेक किया तथा पादपीठ सहित रत्नजड़ित दो सिंहासन भेंट दिये तथा विजयार्द्ध की उत्तर श्रेणी में रहने वाले अन्य राजाओं की खबर दी॥४८-४९॥

इसके बाद चक्रवर्ती अठारह हजार म्लेच्छ राजाओं को वशकर उनसे भेंट में रत्न ले खण्डकाप्रपात (काण्डकप्रपात) नाम की गुफा के पास आया॥५०॥ वहाँ सेना का पड़ाव डालकर चक्रवर्ती ने अष्टोपवास किया। यह जानकर नाट्यमाल नाम के देव ने अंलकार का पिटारा, नागरूप दो मालाएँ तथा बिजली जैसी चमकवाले दो कुण्डल भेंटकर "स्वामिन्! प्रसन्न होइये, आज्ञा दीजिये।" इस प्रकार कहकर स्थित हो गया। फिर बिना युद्ध किये हुए ही वह चक्रवर्ती पूर्व की ओर बढ़ा और वहाँ की गुफा के दरवाजे को खोला। इसमें प्रवेश और निर्गमन सिन्धु नदी के समान ही हुआ॥५१-५३॥ उसने इस तरह गंगा नदी की गुफा के दक्षिण दरवाजे से निकल कर देव और मनुष्यों सहित सारे भरतवर्ष को जीत लिया। साठ हजार वर्षों के बाद वह अपनी राजधानी को आया पर फिर भी उसका सुदर्शन चक्र नगर में प्रवेश नहीं करता था॥५४-५५॥ तब उसने बुद्धिसागर नाम के अपने पुरोहित से पूछा कि यह हमारा चक्ररत्न नगर में प्रवेश क्यों नहीं कर रहा है॥५६॥ उसने कहा कि आपके भाई आपकी आज्ञा नहीं मानते हैं इसलिए यह चक्ररत्न नगरी में प्रवेश नहीं कर रहा है॥५७॥ यह सुनकर उसने पत्र सहित दूतों को अपने भाइयों के पास भेजा। यह देख सिंह के समान बलशाली आसन्न भव्य वे सब भाई उन पत्रों को पाकर विरक्त हो गये॥५८॥ वैभवशाली उन लोगों ने अपना राज्य, धन तथा सवारी इत्यादि सब त्याग दिये और भगवान् के पास जाकर मुनिधर्म धारण कर लिया॥५९॥

किन्तु यह सुनकर बाहुबली बहुत क्रुद्ध हुआ और अपने नगर पोदनपुर से शीघ्र ही युद्ध-प्रवीण वह वीर एक अक्षौहिणी सेना के साथ युद्ध करने की इच्छा से निकला॥६०॥ "मैं तुम्हारा सेवक नहीं हूँ" यह सन्देश दूत-द्वारा भेजकर वह चक्रवर्ती की ओर इस प्रकार चला मानो सुमेरु पर्वत की ओर ऐरावत हाथी ही चल

रहा हो॥६१॥ तब प्रतिद्वन्द्विता के लिए आई हुई विशाल नदी और समुद्र के समान उन दोनों की सेनाओं को देखकर दोनों तरफ के मंत्रियों ने विचारणा की॥६२॥ और निवेदन किया कि "आप दोनों का ही धर्म-संग्राम हो, व्यर्थ में सेना का नाश क्यों हो" इस प्रकार उनके द्वारा निवेदन करने पर दोनों धर्मयुद्ध करने के लिए तैयार हो गये। विद्याधरों के इन्द्र, यक्षगण और देवांगनाओं सहित देवगणों द्वारा युद्ध देखने की इच्छा से शीघ्र ही आकाश व्याप्त हो गया॥६३-६४॥ कमल जैसे नेत्र वाले उन दोनों भाईयों ने सर्वप्रथम निर्निमेष दृष्टिसंग्राम करना प्रारम्भ किया। किन्तु इस युद्ध में भरत पराजित हुआ॥६५॥ फिर सरोवर में हाथों से बड़ी तरंगों को उछालते हुए एक बड़ा घोर जलयुद्ध हुआ। इस युद्ध में भी भरत पराजित हो गया॥६६॥ इसके बाद पृथ्वी पर ताल ठोंकठोंक कर व्यक्त होने वाले तथा पकड़-छोड़वाला मल्लयुद्ध चिरकाल तक हुआ॥६७॥ इसके बाद दयालु बाहुबली हाथी की सूँड़ के समान मजबूत बाहुओं से एक पिता के पुत्र, महान् महाकान्ति और पराक्रम वाले, बड़े उत्साही और धैर्यवाले उस चक्रवर्ती को शीघ्र ही उठाकर खड़ा हो गया मानो सुमेरु पर्वत स्वर्ग को लेकर ही खड़ा हो॥६८-६९॥ फिर उसने चक्रवर्ती को धीरे से जमीन पर रख दिया। उसी समय उसकी सेना में जयवन्त होओ आदि समुद्र के समान शब्द करती हुई विजयानन्द-दुन्दुभि बजने लगी॥७०॥ आकाश और पृथिवी पर देवों, असुरों और मनुष्यों ने सुनन्दा के पुत्र बाहुबली की प्रशंसा करते हुए 'अहो धैर्य ! अहो पराक्रम ! बहुत ठीक ! बहुत ठीक' आदि शब्द कहे॥७१॥ तब क्रुद्ध होकर चक्रवर्ती ने चक्ररत्न का स्मरण किया और वह हजार धारवाला, यक्षों से रक्षित उसी क्षण आकाश में आ गया॥७२॥ उसी समय आज्ञा पाकर वह चक्र बाहुबलि के पास गया और उस बाहुबली राजा को भेदन करने में असमर्थ होता हुआ उनकी प्रदक्षिणा कर उनके दाहिने हाथ में आकर स्थित हो गया॥७३॥ एक ओर दूसरे सूर्य के समान चमकते हुए उस चक्र को देखकर तथा दूसरी ओर दयाशून्य उस भाई को देखकर सभी ने अपनी आँखे और कान बन्द कर लिये॥७४॥

बाहुबली ने भी 'धिक्कार हो धिक्कार हो' इस प्रकार ऐश्वर्य की निन्दा करते हुए भोगों को छोड़कर, कैलाश पर्वत पर जिन-दीक्षा ले ली॥७५॥ इसके बाद निश्चलांग और ध्यान में लवलीन वे योगी बाहुबली, लताओं और वामियों से वेष्टित होकर प्रतिमायोग धारण कर एक वर्ष तक खड़े तप करते रहे॥७६॥ तथा

घातिया कर्मों के नष्ट हो जाने से वे केवलज्ञान को प्राप्त हुए और कृतकृत्य होकर वे भगवान् के समवशरण में शामिल हो गये ॥७७॥

इधर भरत ने समस्त पृथिवी को अपने एकच्छत्र राज्य के अन्दर पाकर नगर में प्रवेश किया तथा देवता और राजाओं ने चक्रवर्ती का अभिषेक किया ॥७८॥ इसके बाद भरत ने कल्याणेच्छुक राजाओं को मनवांच्छित दान देकर बारह वर्ष तक उत्सव की घोषणा कर दी ॥७९॥ उस चक्रवर्ती के चौदह रत्नों में से दण्ड छत्र, चक्र और खड्गरत्न आयुधागार में उत्पन्न हुए। कोषागार में नवनिधियाँ, चूड़ामणिरत्न, कांकणी और चर्म रत्न उत्पन्न हुए तथा विद्याधरों की उत्तर श्रेणी में अश्वरत्न, हस्तिरत्न तथा स्त्रीरत्न हुए और अयोध्या में पुरोहितरत्न, गृहपतिरत्न, स्थपतिरत्न तथा सेनापतिरत्न उत्पन्न हुए ॥८०॥

इस प्रकार दामनन्दि आचार्य द्वारा विरचित पुराणसारसंग्रह के पुरुदेव चरित में भरत का दिग्विजय नाम का चौथा सर्ग समाप्त हुआ।

*****

पंचम सर्ग

कर्ममल रहित जिनेन्द्र आदिनाथ भगवान् भी प्रजा के लिए हितकारी धर्म का उपदेश करते हुए तथा बहुत से भव्यों को तारते हुए पृथ्वी पर विहार करने लगे॥१॥ उनके समवशरण में ८४ गण थे तथा चौरासी ही गणधर थे। आर्यिका भी तीन लाख पचास हजार थीं। और श्रावक तीन लाख प्रमाण थे। श्राविकाओं की संख्या पाँच लाख थी। भगवान् का बीस लाख पूर्व वर्ष कुमार काल में, तिरेसठ लाख पूर्व वर्ष राज्य-काल में तथा एक लाख पूर्व वर्ष संयम काल में बीता॥२-५॥ कहा भी है- सत्तर लाख छप्पन हजार कोड़ाकोड़ि वर्ष प्रमाण काल का एक पूर्व होता है ॥६॥ उत्तराषाढ़ नक्षत्र में तथा अभिजित् योग में सात मांगल्य युक्त भगवान् के निर्वाण पद की पूजा की गई॥७॥ कहा भी-(१) स्वर्गावतरण (२) जन्म कल्याणक (३) विवाह (४) राज्याभिषेक (५) तपकल्याणक (६) केवलज्ञान कल्याणक और (७) निर्वाण कल्याणक ये सात भगवान् ऋषभदेव के माङ्गल्य हैं॥८॥ देवेन्द्रों के द्वारा नाना प्रकार से पूजित वे भगवान् चार प्रकार के संघ सहित कैलाश पर्वत पर आरूढ़ हुए॥९॥ वहाँ दस हजार साधुओं के साथ उन्होनें समाधि लगाई। तथा चौदह दिनों के बाद चौदहवें गुणस्थान को प्राप्त हुए॥१०॥ उन्होंने प्रातःकाल ही शेष कर्मों का अन्तकर लोक को कंपाते हुए, अव्याबाध सुख वाले कल्याणकारी मोक्षपद को पाया॥११॥ तब अपनी देवियों सहित बत्तीस इन्द्रों ने परिवार सहित आकर बड़े ठाट-बाट से भगवान् का निर्वाण-कल्याणक मनाया॥१२॥

कहा भी है- भवनवासी देवों के दस इन्द्र, कल्पवासी देवों के बारह इन्द्र, व्यन्तर देवों के आठ इन्द्र तथा ज्योतिषियों के दो इन्द्र, इस प्रकार मिलकर बत्तीस इन्द्र होते हैं॥१३॥

चक्रवर्ती को अपने पुरोहित द्वारा स्वप्न के फलस्वरूप भगवान् के निर्वाण की सूचना मिली जिससे सैन्यसहित शीघ्र आकर उन्होंने निर्वाण-कल्याणक की पूजा की॥१४॥ तब अग्नि कुमार देवों के इन्द्र के मुकुट में लगे हुए चूड़ामणि रत्न की अग्नि से, सुगन्धित जल, पुष्प और अक्षतों से सिञ्चित उनकी देह का दाह संस्कार किया॥१५॥ ऋषभसेन आदि गणधरों की अग्नि को दक्षिण भाग में तथा अन्य मुनियों की अग्नि को वाम भाग में स्थापित कर गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि तथा

आहवनीय अग्नि की उन लोगों ने पूजा की॥१६॥ उसके बाद इन्द्रों ने चक्रवर्ती भरत को हाथ फैलाकर आश्वासन दिया तथा मधुरालापकर गणधरों को उन्हें सौंप दिया॥१७॥ तब वृषभसेन गणधर ने वियोग से विलाप करते हुए उस चक्रवर्ती को समझाया और तब लोगों का वृतान्त कहा॥१८॥

हे चक्रवर्ती, हम सबका और भगवान् आदिनाथ का सम्बन्ध सुनो। जो इस विचित्र संसार रूपी जंगल में अनेक भवों में घूमते हुए प्राप्त हुआ॥१९॥ जब आठ भव पहले भगवान् वज्रजंघ थे तब तुम उनके हितकारी मतिवर नाम के मंत्री थे। जो उनका अकम्पन नामका मंत्री था वह बाहुबली राजा हुआ है और उसकी जो अनुन्दरी नाम की बहिन थी वह तुम्हारी ब्राह्मी नाम की बहिन हुई है॥२०-२१॥ जो आनन्द नाम का पुरोहित था वह सुन्दरी नाम की बहिन हुई है और श्रीमती के जो वीरबाहु आदि पुत्र थे वे सब हम लोग हुए हैं॥२२॥ हम लोगों ने तपकर तथा चार आराधनाओं का आराधन कर आद्य ग्रैवेयक में अहमिन्द्र पद पाया था॥२३॥ जब तीसरे भव में भगवान् वज्रनाभि नाम के चक्रवर्ती हुए थे तब तुम लोग उनके पीठ आदि प्रिय भाई थे॥२४॥ ग्रैवेयक से अवतीर्ण होकर हम लोग उनके ही पुत्र हुए। तथा वज्रनाभि के साथ ही दीक्षा लेकर हम लोगों ने घोर तप किया॥२५॥ फिर श्रीप्रभ शैल पर तपस्या कर हम सबने सर्वार्थसिद्धि प्राप्त की थी और वहाँ से अवतीर्ण होकर यहाँ आदिनाथ भगवान् के पुत्र हुए॥२६॥

जो गृहपतिरत्न था वह यहाँ आकर कुरुवंश में श्रेष्ठ श्रेयांस राजा हुआ जिसने धर्मरथ के दूसरे चक्र को चलाया, अर्थात् दान-धर्म का प्रवर्तन किया॥२७॥ इस संबंध को जानकर हे भद्र! व्यर्थ में तुम शोक मत करो। उसके मूल मोह का त्याग करो क्योंकि यह शोक का महान् स्थान है॥२८॥

इस प्रकार गणधर के द्वारा दिये गये उपदेश को सुनकर आश्चर्ययुक्त हो इन्द्रों ने तथा चक्रवर्ती ने कैलाश पर्वत की प्रदक्षिणा की तथा अपने- अपने स्थान को गये॥२९॥ तब चक्रवर्ती ने देशव्रत धारणकर कण्ठ में सूत्र (जनेऊ) धारी श्रावकों की, जो कि संयम धारण किये हुए थे, पूजा की॥३०॥ सर्वज्ञ भगवान् आदिनाथ के मोक्ष चले जाने पर वे लोग अग्निहोत्र (यज्ञ) को पूजने लगे, जो पद्धति आज भी लोक में चल रही है॥३१॥ वह चक्रवर्ती, सदा सावधान हो साधु-संघ की पूजा तथा धर्म-श्रवण करता हुआ निरन्तर दान-सम्मान द्वारा श्रावकों की पूजा करता हुआ रहने लगा॥३२॥ तथा यह ऐश्वर्यधारी राजा सम्पूर्ण भारतवर्ष का पालन करता

हुआ, अर्हन्त-भक्ति का आचरण करता हुआ और सुधर्म को जानता हुआ, दिव्य भोगों को भोगने लगा ॥३३॥

किसी समय भरत को सहसा वैराग्य हो गया इसलिए उस धीर-वीर ने स्त्री के समान चक्रवर्ती की उस चञ्चल विभूति को त्याग दिया ॥३४॥ वह अर्ककीर्ति नामके अपने पुत्र को राज्य सौंपकर मुक्ति के लिए भावनाओं का ध्यान करता हुआ एक निमेष मात्र में केवलज्ञानी हो गया ॥३५॥ उस चक्रवर्ती के सतहत्तर लाख पूर्व वर्ष कुमारावस्था में, छह लाख पूर्व वर्ष साम्राज्यावस्था में और एक लाख पूर्व वर्ष संयम में बीते ॥३६॥ तथा अन्त में उसने वृषभसेनादि गणधरों के साथ कैलाश पर्वत पर आरूढ़ होकर और सम्पूर्ण कर्मों को क्षयकर कभी नाश न होने वाले अव्यय मोक्ष पद को प्राप्त किया ॥३७॥ जिनेन्द्र भगवान् के चरण-कमलों में मुकुट झुकाने वाले भरतादि राजाओं ने अपने अपने पुत्रों को राज्य दे और दीक्षा ले उनमें से चौदह लाख तो मोक्ष गये तथा कुछ नवग्रैवेयक आदि में अहमिन्द्र हुए ॥३८-३९॥ इस प्रकार अठारह गुणों का बार-बार पालन करते हुए कुछ तो मोक्ष गये और कुछ मध्य ग्रैवेयक में इन्द्र हुए ॥४०॥ इक्ष्वाकु-कुल-तिलक कुछ राजा तप कर केवल- ज्ञान की प्राप्ति कर मोक्ष गये ॥४१॥ साकेत (अयोध्या) में उत्पन्न सभी जो २१ परिवार वाले नरनारीगण थे-वे सब मोक्ष गये और शेष स्वर्ग गये ॥४२॥

भगवान् ऋषभनाथ का तीर्थ-प्रवर्तन काल एक पूर्वांग अधिक पचास लाख करोड़ सागरोपम प्रमाण कहा गया है ॥४३॥ इस प्रकार भगवान् आदिनाथ तीर्थंकर ने अपने तीर्थ को चलाया और इस मार्ग से असंख्येय भक्तों को मोक्ष भेजा ॥४४॥ उस अगण्य गुण वाले पुण्य स्वरूप, अनन्त ज्ञान-दर्शन वाले इक्ष्वाकु कुलोत्पन्न काश्यप भगवान् को मोक्ष की इच्छा से सिर नमाकर प्रणाम करता हूँ ॥४५॥ कुल और गोत्र का अन्तर इस प्रकार है:- अपने पितृ क्रम से आई हुई परम्परा को कुल कहते हैं। तथा अपनी स्वमाता के सम्बन्ध से आये हुए क्रम को गोत्र कहते हैं ॥४६॥

पवित्र यतिजनों द्वारा सदा माननीय, गुणनीय तथा कथनीय आदिनाथ भगवान् के इस चरित को जो पढ़ते हैं, पढ़ाते हैं, सुनते हैं और सुनाते हैं वे भय और पाप से मुक्त हो उत्तम गति को जाते हैं ॥४७-४८॥ यहाँ पर नामावलि आदि के लिखने में जो कुछ गलती हो गई हो उसे अर्हद्भक्ति समझकर ही पुराण-शास्त्र के विद्वानों को क्षमा करना चाहिये ॥४९॥

इस प्रकार ऋषभ भगवान् में अधिक भक्ति सम्पन्न बुद्धि वाले श्री विनयनन्दि आचार्य के शिष्य दामनन्दी ने भव्यों के हित के लिए दस भवों को लेकर चरित्र वर्णन किया ॥५०॥

इस प्रकार पुराणसार संग्रह के पुरुदेव चरित में भगवान् का निर्वाण गमन नामक पाँचवा सर्ग समाप्त हुआ।

कहा है-

आर्ष नाना प्रकार की कथाओं से युक्त देव और मुनियों के चरित का वर्णन करने वाला इतिहास है ऐसा वीर शासन में रहने वाले मुनियों ने कहा है ॥१॥ पाँच सर्गों में विभक्त, नाना अर्थ और कहानियों से युक्त ३५० श्लोकों प्रमाण यह संग्रह है॥२॥ क्षेत्र, द्रव्य, लोक, कालोत्पति, युग कुलकर और वंश का वर्णन जिसमें हो इस प्रकार सात लक्षण वाला पुराण होता है॥३॥

जिसने गुण-पर्यायों सहित समस्त जगत् को देखा है और जाना है उस अक्षय, अजेय और अनन्त सर्वज्ञ के लिए प्रणाम है॥४॥

सर्वप्रथम महाबल, दूसरा ललितांग, तीसरा वज्रजंघ, चौथा भोगभूमियाँ आर्य, फिर श्रीधरदेव, इसके बाद सुविधिकुमार, सातवाँ अच्युतेन्द्र, आठवाँ वज्रनाभि, नवम अहमिन्द्र तथा दशवाँ ऋषभ ये दस भव पुरुदेव आदिनाथ के हैं॥५॥

*****

श्री चन्द्रप्रभ-चरित

अपने स्वरूप में स्थित कल्पनातीत अनन्त ज्ञानादि अतिशय सम्पत्ति वाले तथा मनोरथदायक चन्द्रप्रभ भगवान् को भक्ति पूर्वक मैं उनकी नामावली गा कर स्तुति करता हूँ॥१॥

पुष्करार्ध द्वीप के पूर्व मेरु की पश्चिम दिशा में पूर्व विदेह के गन्धिल देश में श्रीपुर नाम का नगर था॥२॥ दैव तथा पुरुषार्थ से प्राप्त शोभा सम्पन्न वहाँ के राजा श्रीषेण की दूसरी लक्ष्मी के समान श्रीमती नाम की रानी थी। उसे पुत्र-प्राप्ति की तीव्र अभिलाषा थी॥३॥ एक समय शुभ दिन में अर्हन्त भगवान् की भक्तिपूर्वक पूजाकर, उपवास से म्लान शरीर वाली वह रानी सुखपूर्वक शय्या पर सोयी थी॥४॥ रात्रि के अन्तिम भाग में कमल के समान विशाल नेत्रवाली उस रानी ने स्वप्न में सिंह, ऐरावत हाथी, चन्द्रमा, सूर्य तथा लक्ष्मी देखे॥५॥ अनन्तर उसे श्रीवर्मा नाम का एक गुणवान् पुत्र उत्पन्न हुआ। मानो पुण्य सम्पत्ति से रमणीय महान् सम्पति ही प्राप्त हुई है॥६॥ जिस प्रकार निर्मल पूर्ण चन्द्र कुमुद-पुष्पों को विकसित करता है उसी तरह निजगुणों से मनुष्यों के चित्त को प्रसन्न करता हुआ वह वृद्धि को प्राप्त होने लगा॥७॥ मन और नेत्रों को प्रसन्न करने वाली उसके श्रीकान्ता नाम की रानी थी। उससे वह ऐसा सुशोभित होता था जैसे लता से कल्पवृक्ष सुशोभित होता है॥८॥ पूर्व पुण्योदय से उन दोनों को श्रीधर नामका पुत्र हुआ। मानो चिरकाल के मनोरथ मूर्तिमान रूप धारणकर ही आयें हों॥९॥ वहाँ पर प्राणी वर्ग के कल्याण के लिए श्रीधर नाम के मुनिवर आये। मानो तेज धूप से पीड़ित लोगों के लिए जल युक्त मेघ ही आ गया हो॥१०॥ राजा उनका प्रियंकर उद्यान में आगमन सुन उनके गुणों से खींचे हुए के समान ही शीघ्र सेना सहित उनकी वन्दना के लिए गया॥११॥ उसने विधिपूर्वक उनकी पूजा की। उनसे धर्म श्रवणकर मोक्ष की अभिलाषा से उस राजा ने प्रसन्न होकर श्रीवर्मा को मूल्यवान रत्न के समान राज्य सौंप दिया॥१२॥

पाँच सौ राजाओं के साथ उस राजा ने इस प्रकार निर्ग्रन्थ दीक्षा ले ली मानो दैव और पुरुषार्थ युक्त पुरुष लक्ष्मी को प्राप्त करता है॥१३॥ राज्य और सम्यक्त्व दोनों को पाकर श्रीवर्मा ने, देवियों के साथ देवताओं समान, अपनी रानियों के साथ बहुत से भोगों को भोगा॥१४॥

एक समय में आषाढ़ की पूर्णमासी के दिन सायंकाल वह अपनी रानियों के साथ महल की छत पर बैठा था जैसे इन्द्र कैलाश पर्वत पर बैठा हो॥१५॥ इस प्रकार चन्द्रिका रूपी श्वेत वस्त्र से सुशोभित, चन्द्रमा रूपी दर्पण से युक्त हो, तारा गण रूपी भूषणों को सजाती हुई शुभ गुण सम्पन्न निशा वधू को श्रृङ्गार करती हुई वधू के समान देखकर वह रमण करने लगा॥१६॥ उसी समय उसके पास ही आकाश से क्षीण प्रकाश वाला उल्कापात हुआ। मानो वह यह बतला रहा हो कि पदार्थों की स्थिरता अनिश्चित है॥१७॥ कान्ता, सेवक एवं परिग्रह आदि से युक्त राजा ने उस उल्कापात को देखकर यह विचार किया कि यह भोग-सम्पत्ति उल्का की भाँति ही क्षणभंगुर है और वे विराग को प्राप्त हो गये॥१८॥ राज्य के विशाल वैभव को अपने श्रीधर नाम के पुत्र को देकर सात सौ राजाओं के साथ उस राजा ने श्रीधर मुनिराज के पास दीक्षा ले ली॥१९॥ फिर बहुत समय तक, कर्मों को क्षय करने वाले तप को करके अन्त में श्रीप्रभ नाम के पर्वत पर आरूढ़ हो उसने एक मास का उपवास धारण किया और देह त्याग कर श्रीप्रभ विमान में श्रीधर नामक देव हुआ॥२०॥ वहाँ उस देव की दो सागर प्रमाण की आयु थी तथा वह बहुत सुखों को भोगकर स्वर्ग से च्युत हुआ॥२१॥

धातकी खण्डद्वीप के पूर्व सुमेरु की दक्षिण दिशा में भरत क्षेत्र के अलका नाम के देश में अयोध्या नाम की नगरी थी॥२२॥ वहाँ के राजा अजितंजय और रानी श्रीदत्ता से वह स्वर्ग से च्युत देव अजितसेन नाम का पुत्र हुआ मानो वह उनके किये हुए नित्यकर्मों का फल ही हो॥२३॥ फिर उस राजा ने अपने पुत्र को राज्य देकर अमितप्रभ जिनेन्द्र के समीप दीक्षा ले ली और तप-बल से केवलज्ञान प्राप्त कर निर्वाण पद पाया॥२४॥

अजितसेन की जयदा नाम की अत्यन्त सुन्दर पत्नी थी। उससे जितशत्रु नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। जिस प्रकार अरणी से अग्नि उत्पन्न होती है॥२५॥ उस अजितसेन ने एक समय अरिन्दम नाम के चारण मुनिराज को दान दिया। इससे रत्नों की वृष्टि कर देवताओं ने उसकी पूजा की॥२६॥ फिर उस अजितसेन को चक्ररत्न की प्राप्ति हुई। जिससे युद्ध-द्वारा दिग्विजय करते हुए उसने साम्राज्य प्राप्त कर देव और विद्याधरों से दी गई देव-सम्पत्ति को चिरकाल तक भोगा॥२७॥ इसके बाद उस बुद्धिमान चक्रवर्ती ने अपने योग्य पुत्र जितशत्रु को राज्यपद पर अभिषेक कर कुशतृण के अग्रभाग पर स्थित अमृत की भाँति साम्राज्य को छोड़

दिया ॥२८॥ वह अपने गुरु के समीप दीक्षा लेकर रागद्वेष से रहित हो तप करने लगा तथा शरीर त्याग कर अच्युत स्वर्ग में बाईस सागर की आयु वाला प्रतीन्द्र हुआ ॥२९॥ वहाँ पर प्रखर प्रताप वाला वह प्रतीन्द्र आनन्दामृत का पान कर आयु समाप्त होने पर वहाँ से च्युत हुआ ॥३०॥

धातकी खण्ड द्वीप के पूर्व मन्दराचल पर्वत के पूर्व विदेह क्षेत्र में स्वस्तिकावती देश की राजधानी रत्नसंचयपुर है ॥३१॥ वहाँ के राजा कनकाभ और रानी कनकमाला से वह देव पद्मनाभ नाम का पुत्र हुआ, जो कि बसन्त के समान मनोहर था ॥३२॥ उस पद्मनाभ के चाँदनी के समान मनोहर सोमप्रभा नाम की रानी थी। उसके सूर्य की कान्ति के समान प्रतापी सुवर्णनाभ नाम का एक पुत्र हुआ ॥३३॥ पद्मनाभ सर्वगुणसम्पन्न अपने पुत्र सुवर्णनाभ को राज्य सौंप कर मोक्ष-प्राप्ति की इच्छा से दीक्षा के लिए श्रीधर मुनिराज की शरण में गया ॥३४॥ इस प्रकार बहुत समय तक राज्य लक्ष्मी का भोग कर उसने वह सब वैभव पुत्र को सौंप दिया और श्रीधर मुनिराज के चरणों में दीक्षा ले ग्यारह अंग का ज्ञाता हुआ ॥३५॥ उसने शुद्ध रीति से सिंहनिष्क्रीड़ित नाम का महान् तप किया और निर्मल सोलह कारण भावनाओं की आराधना कर तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध किया ॥३६॥ अन्त में शास्त्रानुकूल आराधना का अभ्यास करते हुए वैजयन्त नाम के अनुत्तर विमान में तैंतीस सागर की आयु वाला अहमिन्द्र हुआ ॥३७॥ उस अहमिन्द्र का सम्पूर्ण शरीर कान्तिमय था। उसने वहाँ पूर्व पुण्योदय से अनुपम सुख भोगे ॥३८॥

शोभा के क्षेत्र इसी भारतवर्ष में चन्द्रपुर नाम का एक नगर है। वहाँ विनीत सामन्तों से युक्त महासेन नाम का राजा राज्य करता था ॥३९॥ श्री इत्यादि देवियों से सेवित उसकी शची के समान लक्ष्मणा नाम की रानी थी। उसने एक दिन रात्रि के अन्तिम भाग में हाथी आदि सोलह शुभ स्वप्न देखे ॥४०॥ तदनन्तर अपने पुण्य बल से संसार को कँपाते हुए सुरश्रेष्ठ ने श्वेत हाथी के रूप में उस रानी के मुख में प्रवेश किया ॥४१॥ प्रातःकाल रानी भूषण श्रृंगार आदि से सुसज्जित होकर राजा के पास गई और राजा से उन स्वप्नों का फल पूछा। राजा ने कहा कि हम दोनों के त्रिभुवन का स्वामी श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न होगा ॥४२॥ इस स्थिति में इन्द्र की आज्ञा से कुबेर ने साढ़े तीन करोड़ रत्नों को प्रतिदिन उनके घर में पन्द्रह महिने तक वर्षाया ॥४३॥ नव माह पूर्ण हो जाने पर रानी को पुत्र रत्न उत्पन्न हुआ जिस प्रकार कि पूर्व दिशा से चन्द्रमा का उदय होता है उस समय के निर्मल चन्द्रमा का

अनुराधा के समान योग था ॥४४॥ इन्द्रों ने अपने आसन काँपने से शीघ्र ही भगवान् के जन्म को जान लिया और सजधज कर देवों की सेनासहित उस नगर में आये ॥४५॥ इसके बाद देवों और असुरों सहित इन्द्रगण भगवान् को सुमेरु पर्वत पर ले गये और वहाँ पर क्षीरसागर के जल से भरे हुए रत्नमयी कलशों से भगवान् का अभिषेक किया ॥४६॥ फिर उन्होंने भगवान् को दिव्य आभूषणों से अलंकृत किया और नाना प्रकार की स्तुति कर उनका नाम चन्द्रप्रभ रखा तथा भगवान् की जन्मपुरी को लौट आये ॥४७॥ तत्पश्चात उन्होंने इन्द्राणी के द्वारा भगवान् को माता की गोद में रखवा कर आनन्द नाटक किया तथा भगवान् के माता-पिता की पूजाकर देवों सहित इन्द्र स्वर्ग चले गये ॥४८॥ बाल चन्द्रमा के समान वे भगवान् शोभा से जैसे-जैसे बढ़ते गये वैसे-वैसे ही चाँदनी के समान उनकी इक्ष्वाकु वंश-रूपी लक्ष्मी वृद्धि को प्राप्त करती गई ॥४९॥ भगवान् के शरीर की चमक दिन के प्रकाश में भी मन्द न पड़ने वाली थीं इसीलिए मानो उस कान्ति से लज्जित हो चन्द्रमा आकाश में धीरे-धीरे चढ़ रहा था ॥५०॥ उनका सद्गुण समूह निर्मल चित्त वाले लोगों के चित्त में इस तरह प्रविष्ट हो गया था जैसे चन्द्रमा की सम्पूर्ण कलाओं से भासमान निर्मल छाया ही हो ॥५१॥ राज्यलक्ष्मी ने उन भगवान् को पा अपने चंचल स्वभाव को छोड़ दिया था, और उनके गुणों में अनुरक्त हो चन्द्रमा में कान्ति के समान, रमण करने लगी थी ॥५२॥ उन पुण्यात्मा भगवान् ने उत्तरकुरु की भोगभूमि जैसी विपुल लक्ष्मी को धारण करने वाली भूमि का शासन किया जैसे इन्द्र स्वर्ग का शासन करता है ॥५३॥ उन भगवान् के चरण कमल राजाओं के मुकुटमणि की छाया रूपी जल से धोये गये थे। इस प्रकार उन भगवान् ने चिरकाल तक पूर्वोपार्जित भोगों को देवों के साथ भोगा ॥५४॥

एक समय जिनेन्द्र की, विषफल के समान विषयों को छोड़ने की इच्छा को जानकर लौकान्तिकदेव आये और उन्हें संबोधित कर स्वर्ग लौट गये ॥५५॥ तब देवों सहित इन्द्रों ने आकर उनको क्षीरसागर के जल से स्नान कराया तथा उत्तम वस्त्र और अलंकार और गंध आदि से विभूषित किया ॥५६॥ फिर भगवान् ने रवितेज नामक पुत्र का अभिषेक कर राज्य पद पर बैठाया तथा अन्तःपुर की रानियों को शान्त वचनों से समझाकर लौटाया ॥५७॥ तब वे भगवान् सुविशाला नाम की पालकी में बैठे और देवगण उसे उठाकर मनोहर सहस्राम्र नामक वन में ले गये ॥५८॥ वहाँ उस पालकी से उतर कर भगवान् ने वस्त्र और आभूषणों का त्याग

कर दिया तथा मुष्टि से पाँच बार में अपने सिर से बाल उखाड़ कर अलग कर दिये ॥५९॥ और दोपहर के समय अनुराधा नक्षत्र में देवों से पूजित उन भगवान ने हजार राजाओं के साथ षष्ठोपवास पूर्वक जन्मान्तर को नष्ट करने वाली जैनेश्वरी दीक्षा ले ली ॥६०॥ तदनन्तर इन्द्र ने रत्नों के पिटारे में केशों को रखकर क्षीरसागर में उनको विसर्जित कर दिया तथा भगवान् की स्तुति कर देवों के साथ वह स्वर्ग चला गया ॥६१॥ फिर तीसरे दिन आहार के लिए निकले हुए इन भगवान् को नलिन-खण्ड नाम के नगर में सोमदेव राजा ने क्षीरान्न की पारणा दी ॥६२॥ जिसके प्रभाव से उस राजा के यहाँ धनवृष्टि हुई अर्थात् उसने पंचाश्चर्य प्राप्त किये और देवताओं ने पात्रदान की विधि से प्रसन्न होकर उसकी मनुष्य दुर्लभ पूजा की ॥६३॥ फिर ज्ञान भावना में लवलीन हो तीन मास तक तप कर चन्द्र पुर नामके मनोहर उद्यान में ध्यान योग से स्थित हो गये ॥६४॥ तदनन्तर फाल्गुन महीने के कृष्ण-पक्ष की सप्तमी के दिन अनुराधा नक्षत्र में दोपहर के समय षष्ठोपवासपूर्वक शुक्लध्यान प्राप्त किया ॥६५॥ उस ध्यान योग के द्वारा चार घातिया कर्मों को नष्ट करके उन पुरुषश्रेष्ठ भगवान् ने अर्हन्त लक्ष्मी से विभूषित हो केवलज्ञान-साम्राज्य को प्राप्त किया ॥६६॥ तव जिनेन्द्र के महापुण्य प्रताप से शीघ्र ही इन्द्रों के आसन कम्पित हो गये और अवधिज्ञान के द्वारा भगवान् की कैवल्य-प्राप्ति को जानकर देवों सहित वे लोग शीघ्र ही उनके पास आये ॥६७॥ और उन सबने अपने मुकुटों को झुकाकर जिनेन्द्र देव की प्रदक्षिणा कर प्रणाम किया तथा आठ प्रातिहार्य पूर्वक अपूर्व पूजा की ॥६८॥ ज्ञान-किरण वाले उन जिनेन्द्र चन्द्र ने चार प्रकार के संघ का निर्माण कर अज्ञानता रूपी गर्मी से पीड़ित जनों को मोक्ष पहुँचाया ॥६९॥ उन जिनेन्द्र के दत्त आदि ९३ सप्त ऋद्धिधारी तथा देवताओं से पूज्य गणधर थे ॥७०॥ उनके समवसरण में दो हजार चौदह पूर्वधर मुनि थे तथा दिव्य अवधिज्ञानधारी मुनि आठ हजार थे ॥७१॥ दस हजार केवलज्ञानी थे और विक्रिया ऋद्धि वाले चौदह हजार मुनि थे ॥७२॥ मनःपर्ययज्ञान धारी मुनि आठ हजार थे तथा सात हजार छह सौ वादी मुनि थे ॥७३॥ दो लाख चार सौ शिक्षक (उपाध्याय) मुनि थे, इस प्रकार सब मुनि दो लाख पचास हजार थे ॥७४॥ उनके संघ में तीन लाख अस्सी हजार आर्यिकाएँ थीं और उनमें प्रधान सुलसा नाम की आर्यिका थीं ॥७५॥ तीन लाख विशिष्ट पुण्य लाभ करने वाले श्रावकों का प्रमाण था ॥७६॥ श्राविकाओं की संख्या, जो कि उत्तम शील और आचार से सम्पन्न थीं, जो चार लाख ९१ हजार थीं ॥७७॥ वे जिनेन्द्र प्राणियों के कल्याण के लिए तथा चित्त को प्रसन्न करते हुए

बहुत समय तक पृथ्वी पर विहार कर सम्मेदशिखर पर्वत के शिखर पर आरूढ़ हुए॥७८॥ एक मास तक विहार करना बन्द कर उन्होंने बाकी के चार अघातिया कर्मों का नाश किया तथा ज्येष्ठा नक्षत्र में चार हजार मुनियों के साथ निर्वाण पद को प्राप्त हुए॥७९॥ वहाँ वे जिन क्षायिक सम्यक्त्व, अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्तवीर्य, सूक्ष्मत्व, अवगाहनत्व, अगुरुलघुत्व, अव्याबाधत्व इन आठ सिद्धों के गुणों से सुशोभित थे॥८०॥ देवताओं सहित इन्द्रगण वहाँ शीघ्र ही निर्वाण कल्याणक मनाने आये और दीप, धूप, जल, पुष्प और चन्दन आदि से उन त्रिभुवनपति जिनभगवान् के शरीर की अद्भूत पूजा की तथा जिनेन्द्र की गुणकथा से अपने चित्त को आल्हादित करते हुए वे अपने स्थानों को लौट गये॥८१॥

इस प्रकार चपलमति से प्रेरित वाणी द्वारा ज्ञानज्योति से निश्चल मोहान्धकार को नाश करने वाले शान्तात्मा, जगत्पति, अनुपम, अनन्त, अक्षर और शंकर आदि नामावलि से स्तुत्य वे महान् चन्द्रप्रभ भगवान् हमारे कर्ममल को शीघ्र क्षय करें॥८२॥ जो कि अपने पूर्व भवों में श्रीवर्मा, स्वर्ग में श्रीधर, अजितसेन, फिर अच्युतेन्द्र, इसके बाद पद्मनाभ, फिर अहमिन्द्र हुए उन चन्द्रप्रभ को नमस्कार है॥८३॥ उन जिनेन्द्र की तीर्थ परम्परा ९० सागर कोटि प्रमाण थी, स्वच्छ चन्द्रमा की कान्ति वाले उन चन्द्रप्रभ को मैं सदा प्रणाम करता हूँ॥८४॥

इस प्रकार पुराण सार संग्रह नामक पुराण में
चन्द्रप्रभ चरित समाप्त हुआ।

*****

श्री शान्तिनाथ चरित्र

प्रथम सर्ग

संसार में अति शान्त और सर्व प्राणियों को शान्तिदायक श्रीशान्तिनाथ भगवान् को सिर झुका प्रणाम कर मैं तीन लोकों की शान्ति के लिए भगवान् शान्तिनाथ के चरित्र को कहता हूँ॥१॥ यह चरित्र सुधर्म नामके केवली ने अन्तिम केवली जम्बू स्वामी को उनके बारह भवों की नामावलि पूर्वक कहा था॥२॥ चक्रवर्तियों में पाँचवें तथा तीर्थंकरों में सोलहवें उन शान्तिनाथ भगवान् के पुण्यवर्धक, सुनने योग्य तथा आर्या छन्दों में निबद्ध इस चरित्र को आप सब भी सुनें॥३॥

इसी जम्बूद्वीप सम्बन्धी भारतवर्ष विजयार्द्ध पर्वत की दक्षिण श्रेणी में रथनूपुर चक्रवाल नाम के नगर में ज्वलनजटी नामक राजा था॥४॥ उसके वायुवेगा नाम की रानी थी तथा पुत्र का नाम अर्ककीर्ति और पुत्री का नाम स्वयंप्रभा था। अश्वग्रीव आदि कुछ विद्याधरों ने उस कन्या की मंगनी की थी॥५॥ किसी समय बसन्त महीने में राजा ने अन्तःपुर सहित वन में जगन्नन्दन और अभिनन्दन मुनि के पास जाकर और तत्व चर्चा कर सम्यग्दर्शन ग्रहण किया॥६॥ किसी अन्य समय में प्रोषधव्रत धारण कर उस कन्या स्वयम्प्रभा ने जिन भगवान् की पूजा कर और अपने पिता को शेषा प्रदान कर तथा उनसे आशीर्वाद प्राप्त कर घर में प्रवेश किया॥७॥ पिता ने भी उसे पूर्ण यौवना देख यह कन्या किसे देनी चाहिये ऐसा विचार कर मंत्रशाला में प्रवेश किया और मंत्रियों के समक्ष इसकी चर्चा की॥८॥ पुत्री के निमित्त की यह बात सुनकर एक मंत्री ने कहा कि-उत्तर श्रेणी की अलकापुरी में अश्वग्रीव नाम का विद्याधर और उसकी भार्या कनका (कनकचित्रा) रहते हैं॥९॥ उसके नीलरथ, नीलकण्ठ, वज्रकण्ठ और सुकण्ठ नामके चार भाई हैं तथा हरिश्मश्रु मंत्री है और शतबिन्दु नैमित्तिक हैं॥१०॥ वह दोनों श्रेणियों का राजा है और सभी विद्याधर उसके वश में हैं, तथा उसने इस कन्या के लिए कई बार याचना भी की है। हे स्वामी! यह कन्या उसे ही देनी चाहिये॥११॥

"अश्वग्रीव को कन्या देनी चाहिये" यह सुश्रुत का सुझाव सुनकर बहुश्रुत नाम के मंत्री ने कहा कि वह बहुत बड़ी आयु वाला है और यह कन्या अभी बाला ही है। इसलिए सुनिये, गगनवल्लभपुर में अति पराक्रमी सिंहध्वज तथा मेघपुर में

पद्मरथ और चित्रकूट में हेमाङ्ग, किन्नरगीतपुर में पवनञ्जय, अमृतवती में मेघस्वर, नरगीतपुर में हरिकम्प, त्रिपुरा में ललिताङ्गद, रत्नपुर में रत्नरथ, रत्नसंचयपुर में अरिञ्जय, श्रीनिलय में चित्ररथ तथा अश्वपुर में कनकचित्र ये सब राजा हैं॥१२-१५॥ ये सब विद्याधरों में सिंह हैं तथा इन्होंने विद्याओं को साधा है और इस कन्या के समान वयवाले हैं। इसलिए इनमें से जो श्रेष्ठ वर हो उसे देख हमें कन्या देनी चाहिये॥१६॥

तब श्रुतसागर नाम के मंत्री ने कहा कि स्वामिन्, उत्तर श्रेणी में सुरेन्द्रकान्तार नाम का नगर है। वहाँ मेघवाहन राजा और उसकी रानी मेघवती रहते हैं। उन दोनों के ज्योतिर्माला नाम की पुत्री और विद्युत्प्रभ नाम का पुत्र है। वह विद्युत्प्रभ पूर्वभव में प्रभाकरी नाम की नगरी में रानी जयसेना और राजा नन्दन का पुत्र यशोधर हुआ था, और उसने दमवर मुनि के पास चार हजार राजाओं के साथ युवा अवस्था में ही दीक्षा ले ली थी और शरीर छोड़ महेन्द्र स्वर्ग में देव हुआ था॥१७-१९॥ फिर वहाँ से च्युत होकर वह यहाँ चरम देहधारी हुआ है। यह मैंने वरधर्म नाम के मुनि से सुना था। इसलिए हम लोग यह राजकुमारी उसी को दें॥२०॥

इस पर सुमति नाम के राजमंत्री ने राजा से निवेदन किया "मैं किसी के विरुद्ध नहीं हूँ इसलिए मुझे 'स्वयंवरपद्धति' पसंद है"॥२१॥ मंत्री के इस वचन को सुन राजा ने अष्टांग महानिमित्त के ज्ञाता संभिन्नश्रोता से सत्कारपूर्वक पूछा॥२२॥ कि "मेरी पुत्री का पति कौन होगा" ऐसी बात सुन उस निमित्तज्ञ ने कहा कि इसी जम्बूद्वीप के भारत देश की दक्षिण दिशा में पोदनपुर का राजा प्रजापति और उसकी रानी जया व मृगावती रहते हैं। उन दोनों के क्रमशः विजय तथा त्रिपृष्ठ नाम के दो पुत्र हैं जो क्रमशः बलदेव तथा नारायण होने वाले हैं। वे इस पर्याय में रथनूपुर नगर के अपने प्रतिद्वन्दी विद्याधर-राजा अश्वग्रीव को रथावर्त पर्वत पर मारेंगे और फिर वे दोनों सर्व रत्नों को पाकर पृथिवी का भोग करेंगे॥२३-२५॥ तथा हे राजन्! उन दोनों के द्वारा तुम भी विद्याधरों के सम्राट पद को पाओगे। इसलिए शीघ्र ही कन्या को ले जाकर त्रिपृष्ठ को दे दीजिये॥२६॥

संभिन्नश्रोता की बात सुनकर राजा ने यह बात मान ली और दृढ़ निश्चय किया कि उसी को कन्या देंगे। फिर राजा ने उस निमितज्ञ का खूब आदर-सत्कार किया और इन्दु नाम के योग्य दूत को पोदनपुर भेजा॥२७॥ अपने दूत के लौट आने पर रथनूपुर में रक्षकों को रखकर तथा कन्या को ले जाकर राजा ने बहुत

विभूति के साथ उसे त्रिपृष्ट को विवाह दिया ॥२८॥ यह बात अपने दूत के मुँह से मंत्री तथा भाइयों सहित अश्वग्रीव ने सुनी और चतुरंगिणी सेना सहित युद्ध करने के लिए युद्ध भूमि में आ गया ॥२९॥ इधर प्रजापति राजा के उन दोनों पुत्रों-त्रिपृष्ठ और विजय ने उस ज्वलनजटी को राज्यतिलक कर विद्याधरों का चक्रवर्ती बनाया तथा उससे दी गई दो विद्याओं को उन्होंने सिद्ध किया ॥३०॥ उन दोनों को गरुड़वाहिनी दो महाविद्याएँ सिद्ध हो गई तथा सब मिल अपनी-अपनी सेना सहित रथावर्त पर्वत पर गये ॥३१॥ वहाँ पर विद्याधर और भूमिगोचरी राजाओं का हजारों प्रकार के छलों से भरा हुआ और नाना प्रकार के आयुधों से विध्वंसकारी घोर युद्ध हुआ और उसमें भीषण रक्तपात हुआ ॥३२॥ बलभद्र विजय ने शत्रु के पुत्र और भाइयों को तथा ज्वलनजटी के पुत्र ने अन्य शत्रु पक्षीय राजाओं को और त्रिपृष्ठ ने अश्वग्रीव प्रतिनारायण को मार डाला ॥३३॥

अश्वग्रीव को जीत लेने के बाद उस त्रिपृष्ठ को सप्त रत्न प्राप्त हुए और अर्द्धचक्रवर्ती पद भी मिला। वह ज्वलनजटी भी अर्धचक्रवर्ती त्रिपृष्ठ के साथ अपने नगर को लौट आया ॥३४॥

ज्वलनजटी के पुत्र अर्ककीर्ति की पत्नी सुरेन्द्रकान्तार देश के राजा की पुत्री थी। उन दोनों के अमिततेज पुत्र तथा सुतारा नाम की पुत्री हुई ॥३५॥ ज्वलनजटी ने अर्ककीर्ति का राज्यतिलक कर जगदभिनन्दन जिनेन्द्र के पास दीक्षा ले ली। तथा अच्छी तरह तप कर उसने मोक्ष पद प्राप्त किया ॥३६॥

त्रिपृष्ठ के स्वयंप्रभा से श्रीविजय और विजय नाम के दो पुत्र हुए तथा ज्योतिःप्रभा नाम की दोनों से छोटी पुत्री हुई ॥३७॥ त्रिपृष्ठ के पिता राजा प्रजापति ने पिहिताश्रव मुनि के समीप दीक्षा धारण कर घोर तपस्या की और परमपद-निर्वाण प्राप्त किया ॥३८॥ अनन्तर त्रिपृष्ठ ने अपनी कन्या के स्वयंवर के लिए विद्याधर और भूमिगोचरी राजाओं को बुलाया। यह सुनकर अर्ककीर्ति भी अपनी पुत्री सुतारा को लेकर वहाँ आया। वहाँ ज्योतिष्प्रभा ने अमिततेज को अपने पति के रूप में वरण किया तथा सुतारा ने श्रीविजय के गले अपनी माला प्रेमपूर्वक डाल दी ॥३९-४०॥ तब क्षत्रिय लोगों ने उस स्वयंवर को देखकर "साधु साधु" शब्दों से प्रशंसा की तथा बलभद्र और नारायण से पूछकर अपने-अपने नगरों को लौट गये ॥४१॥ त्रिपृष्ठ ने चौरासी लाख वर्षों तक दिव्य और मनुष्य सम्बन्धी भोगों को भोगा फिर भोगों से अतृप्त हो आयु पूरी होने पर नरक गया ॥४२॥

बलदेव ने श्रीविजय को राज्य पद पर और विजय को युवराज पद पर स्थापित कर दु:खित हो सुवर्णकुम्भ मुनि के पास दीक्षा ले ली॥४३॥ यह सुनकर अर्ककीर्ति विद्याधर भी अमिततेज नाम के पुत्र को राज्य देकर विरक्त हो गया उसने निर्मल बुद्धि वाले अमलबुद्धि मुनि के पास दीक्षा ले ली॥४४॥ श्री विजय और अमिततेज की एक दूसरे के पास आने-जाने, सन्देश भेजने और पत्र व्यवहार से पुष्ट हुई घनिष्ट मित्रता हो गई॥४५॥

इस प्रकार समय बीतता गया। एक समय एक निमितज्ञ श्रीविजय के पास आया और उच्च स्वर से 'जय हो' कहकर बोला कि हे राजन् ! सुनिये। पोदनपुर के राजा के ऊपर आज से सातवें दिन वज्रपात होगा इसलिए जो उपाय हो कीजिये॥४६-४७॥ यह सुनकर युवराज विजय ने कहा कि यदि उस दिन नरपति के ऊपर वज्र गिरेगा तो हे निमितज्ञ ! तुम्हारे शिर पर क्या गिरेगा, बतलाओ॥४८॥ निमितज्ञ ने उत्तर दिया कि उस दिन मेरे शिर पर १००८ कुम्भों से अभिषेक व पूजा होगी और रत्नवृष्टि भी होगी॥४९॥ यह बात सुनकर श्रीविजय ने उस ब्राह्मण को आसन पर बैठाया और मधुर शब्दों में पूछने लगा कि आपका नाम क्या है? आप कहाँ के रहने वाले हैं और कहाँ विद्या पढ़ी है॥५०॥ राजा के इन प्रश्नों पर ब्राह्मण ने अपने नाम, कुल और गोत्र को बतलाया और कहा कि मेरे पिता कुण्डलपुर के राजा सिंहरथ के निमितज्ञ थे। इनका गोत्र शौडिल्यायन था। वे सुरगुरु के शिष्य थे और विशारद उनका नाम था। हे राजन् ! मैं भी अमोघजिह्व नाम का उनका पुत्र हूँ॥५१-५२॥ जब बहुत से श्रेष्ठ राजाओं के साथ बलदेव ने दीक्षा ली थी तब मैं भी रागवश पिता के साथ दीक्षित हो गया था॥५३॥ पर ज्योतिष के ज्ञान में विशेष अनुराग होने से तथा परिषह न सह सकने के कारण मैं साधु संघ से अलग होकर पद्मिनीखेट नगर में पहुँचा॥५४॥ वहाँ मेरे मामा सोमार्य और मेरी मामी हिरण्यलोमा थी। उन्होंने चन्द्रानना नाम की अपनी पुत्री से मेरा विवाह कर दिया जिसका पहले से ही मेरे साथ विवाह करने का उन्होंने संकल्प कर लिया था। आजीविका के निमित लाभ देखकर मैं यहाँ आया हूँ"-यह सुन श्रीविजय ने अपने मंत्रियों से सलाह लेना प्रारम्भ किया, कि उस राजा की रक्षा के लिए क्या करना चाहिये॥५५-५६॥

सुमति नाम के मंत्री ने कहा कि निश्छिद्र लोहे की पेटी को समुद्र में रखकर उसमें राजा को बैठा देना चाहिए॥५७॥ सुबुद्धि मन्त्री ने कहा कि अतिदु:षमा काल

के अन्त में इस भारत वर्ष में अग्नि और मेघ की वर्षा होने पर विजयार्ध पर्वत की जिस महागुफा में रहकर कुछ जीव अपने प्राण बचावेंगे उस गुफा में ही हमें राजा को ले चलना चाहिये ॥५८-५९॥ उन दोनों की यह बात सुन बुद्धि सागर नाम के मंत्री ने कहा कि मैं एक उपाख्यान कहता हूँ सुनिये-

कुम्भकारपुर नामके ग्राम में चण्डकौशिक नामका ब्राह्मण और उसकी सोमश्री नाम की स्त्री रहती थी, जो निःसन्तान थी। उन्होंने चिरकाल तक भूतों की पूजा की जिससे उन्हें एक पुत्र हुआ। वह बन्दर- जैसे मुखवाला था तथा वृद्ध जैसा था। उसका नाम मौण्डकौशिक था। उसी नगर में मनुष्य खाने वाला कुम्भ नाम का राक्षस रहता था। वह बारी-बारी से पुरुषों को मार कर खाता था ॥६०-६२॥ जब कि ब्राह्मण के लड़के की बारी आई तो ब्राह्मण ने भूतों की शरण में जाकर निवेदन किया, तब भूतों ने कहा कि तुम राक्षस से निवेदन करो, हम लोग उससे तुम्हारे पुत्र को बचा लेवेंगे। तब ब्राह्मण ने अपने पुत्र को राक्षस को दे दिया पर भूतों ने उसके पुत्र को बचा कर एक पर्वत की गुफा में रख दिया वहाँ पर एक भूखे अजगर ने उस लड़के को खा लिया ॥६३-६४॥ इसलिए जो होना है वह कहीं पर रहो अवश्य होगा, अतएव शान्ति रखकर हम लोगों को चुप बैठना चाहिये ॥६५॥ तब मंत्रियों में श्रेष्ठ मतिसागर नामके चौथे मंत्री ने उन सब लोगों के कहे हुए को विचार कर अपनी बुद्धि से यों कहा कि- ज्योतिषी ने तो केवल यह कहा है कि पोदनपुर के राजा के शिर पर वज्र गिरेगा। उसने नाम लेकर तो यह नहीं कहा कि श्रीविजय के शिर पर वज्र गिरेगा ॥६६-६७॥ इसलिए इस नगर में किसी अन्य का राज्याभिषेक कर दिया जाय और श्रीविजय राज्य का परित्याग कर सात दिन तक चैत्यालय में निवास करें ॥६८॥ इस पर सब ने सहमति दे दी। फिर सभी प्रतिमागृह (मंदिर) में गये और वहाँ पर उन लोगों ने सोम, इन्द्र, वरुण, यम, रति और वैश्रवण की पूजा होती हुई देखी ॥६९॥ अनन्तर सब लक्षणों से सम्पन्न कुबेर की प्रतिमा को देखकर उन लोगों ने राजा के स्थान पर उसकी स्थापना की ॥७०॥

फिर मुकुट और चामरयुक्त वैश्रवण महाराज की सभी श्रेणी के लोग अपने-अपने नियोग के अनुसार सेवा करने लगे। राजा भी चार शरणों को प्राप्त होकर जिनमन्दिर में जा जिन भगवान् की पूजा करता हुआ रहने लगा, तथा नगर में भी पूजा आदि शान्ति कर्मों की घोषणा कर दी गई ॥७१-७२॥ उसकी भक्ति से नगर वासी जन भी श्री विजय की शुभ कामना के लिए दान तथा उपवास पूर्वक पूजा

करने लगे। छह दिन बीतने के बाद उपद्रवकारी मेघ आकाश में घिरने लगे, और बिजली की कड़कड़ाहट पूर्वक मूसलाधार वर्षा होने लगी। उस महावृष्टि के बाद भयंकर शब्द करता हुआ एक वज्र उस कुबेर की प्रतिमा पर गिरा जिससे वह सौ टुकड़े हो गई ॥७३-७५॥ उस मूर्ति के ऊपर वज्र को गिरा हुआ देखकर सन्तुष्ट मनुष्यों ने श्रीविजय की जय बोली। फिर उस मृतक प्रतिमा की सत्कार पूर्वक अन्त्येष्टि कर राजा ने नैमितिक को बुलाया और उसका एक हजार आठ कलशों से अभिषेक किया ॥७६-७७॥ तथा नाना प्रकार के वस्त्र, आभूषणों को प्रदान कर उसके शिर पर सुवर्ण, रत्न और पुष्पों की वृष्टि की ॥७८॥ तथा उसे सौ गाँव के साथ पद्मिनी खेट भेंट में दिया। वह विप्र भी युवराज, मंत्री और अमात्य तथा पुरवासी लोगों से पूजित हो वहाँ से चला गया। अनन्तर सब लोगों ने श्रीविजय का फिर से राज्याभिषेक किया और राजा ने भी अपने मन्त्रियों और प्रेमियों को खूब धन दान दिया ॥७९-८०॥

इस प्रकार पुराणसारसंग्रह के शान्तिनाथ चरित में श्रीविजयकाण्ड नामक प्रथम सर्ग समाप्त हुआ।

*****

द्वितीय सर्ग

एक समय माता का आदेश पाकर श्री विजय अपनी प्रिया सुतारा के साथ क्रीड़ा करने के लिए पूर्व परिचित ज्योतिर्वन में गया॥१॥ वहाँ पर विहार करती हुई वह सुतारा थककर एक शिला पर बैठ गई और वहाँ एक सुन्दर मृग को देखकर अपने प्रिय से कहने लगी कि देखो, उस मृग को देखो। राजा भी अपनी रानी की इच्छा जानकर उस मृग को पकड़ने के लिए चुपके-चुपके उसके पीछे दौड़ा। वह मृग भी एक ओर जाकर अदृश्य हो गया। राजा भी विफल हो लज्जा सहित लौट ही रहा था कि उसने एक करुण शब्द सुना कि हे नाथ ! तुम कहाँ चले गये हो, मुझे कुक्कुट सर्प ने डस लिया है॥२-४॥

यह सुन राजा बहुत शीघ्र वहाँ आया और स्त्री से कहने लगा कि डरो मत। उसने सर्प से डसी हुई उसे जानकर विष दूर करने वाले अनेक उपचार किये, किन्तु उसका विष मंत्र और औषधि से अवार्य था। वह लकड़ी के कुन्दे के समान राजा की गोद में आ पड़ी। राजा भी उसे मरी जान उसके साथ मरने को तैयार हो गया तथा रोकर कहने लगा, कि हे प्रिये ! मुझे छोड़ कहाँ जा रही हो, यह कह उसने वहाँ एक चिता बनायी और आग लगाकर उसके साथ चिता पर जा बैठा॥५-७॥ पोदनपुर में भी राजा के अनिष्ट सूचक बहुत से उत्पात हुए। यह देख तमाम रनवास और नगर क्षुभित हो गया। इससे ब्राह्मण भी तेज घोड़ों वाले रथ पर चढ़कर शीघ्र ही राजमहल में आया और विजय को, राजा की माँ को तथा पुरवासियों को भय मत करो इस प्रकार सान्त्वना देने लगा॥८-९॥ अमोघजिह्व निमित्तज्ञानी ने विनय पूर्वक यह पूछे जाने पर कि राजा का क्या हाल है तब - उत्तर में नम्रतापूर्वक कहा कि राजा को एक बड़ा भय उत्पन्न हो गया है। फिर उसके आरोग्य के विषय में तो कहना ही क्या पर शीघ्र ही उनकी राजी-खुशी का समाचार आवेगा। ऐसा कहते समय ही उन सब लोगों ने आकाश से उतरते हुए एक नवयुवक को देखा। आकाश से उतरकर उसने अभिवादन पूर्वक राजा की माता से कहा कि श्रीविजय के पास से उनका भेजा हुआ आ रहा हूँ। मेरे पिता का नाम संभिन्न और माता का नाम सर्वकल्याणी है ज्योतिःपुर निवासी, मैं उनका पुत्र दीपशिख हूँ॥१०-१३॥ रथनूपुर के राजा अमिततेज के साथ उनके आमन्त्रण पर हम दोनों पिता-पुत्र उद्यान में विहार करने के लिए शिखारितल नाम के प्रसिद्ध उद्यान में गये थे। वहाँ से जब हम लौट रहे थे तो आकाश में एक विमान में हा

अमिततेज, हा श्रीविजय इत्यादि करुणा भरे शब्द कहते हुए एक स्त्री के रोने की ध्वनि सुनी ॥१४-१५॥ इन नामों को सुनकर हम लोग वहाँ गये और उस विद्याधर से पूछा कि तुम कौन हो और किसको हरण किये जा रहे हो? तथा इसे कहाँ लिये जा रहे हो? इस तरह हम लोग उसके ऊपर खड्ग तान कर तर्जना करते हुए उसके सामने खड़े हो गये। इन शब्दों को सुन मैं इन्द्राशनि का पुत्र हूँ, ऐसा कहता हुआ वह खड़ा हो गया और बोला कि क्या तुम आसुरी के पुत्र मुझ अशनिघोष को नहीं जानते? मैं श्रीविजय की राज पत्नी सुतारा को हरण कर लिये जा रहा हूँ। जिसमें ताकत हो आवे छुड़ा ले। इस प्रकार कहता हुआ वह चमरचञ्चपुर का राजा हम लोगों के साथ आकाश में युद्ध करने के लिए तैयार हो गया ॥१६-१८॥ हे माताजी! हम लोगों को युद्ध करता हुआ देखकर विमान के भीतर बैठी हुई आपकी पुत्रवधु ने कहा कि अभी युद्ध मत कीजिए बल्कि ज्योतिर्वन में जाकर वेतालिनी विद्या से ठगे गये मेरे पति को मरने से बचाइये। मैं हाथ जोड़कर आपसे यही प्रार्थना करती हूँ॥९-२०॥

यह सुनकर हम लोग ज्योतिर्वन में शीघ्र आये और वहाँ जलती हुई चिता के बीच में बैठे हुए तथा मोहवश वैताली विद्या के बनावटी रूप में लिपटे हुए, विलाप करते हुए राजा को देखा ॥२१॥ मेरे पिता के मंत्र बल से वह विद्या नष्ट हो गई, तब राजा ने चकित हो आशीर्वाद पूर्वक हम लोगों का अभिनन्दन किया। हम लोगों ने भी राजा को सब वृतान्त सुनाया ॥२२॥ अशनिघोष के कृत्य को सुनकर राजा ने मुझे आप लोगों के पास खबर देने को भेजा, जिससे मैं राजा का सन्देश तथा सुतारा के हरण किये जाने का समाचार कहने के लिए आप लोगों के पास आया हूँ॥२३॥ यह सब सुन राजमाता, उस दूत और ज्योतिषी को बहुत सम्मानित कर युवराज और दूत सहित स्वयं ज्योतिर्वन में गई। माता को देख राजा ने हाथ जोड़ खड़े होकर प्रणाम किया। उस माता ने भी सजलनेत्र हो पुत्र का आलिंगन कर आशीर्वाद दिया और सुखवार्ता पूछी ॥२४-२५॥ तब सभी रथनूपुर गये और अमिततेज से सारा वृतान्त कहा। उसने अपनी बहिन का हरण सुन अशनिघोष पर अत्यन्त क्रोध किया, और मंत्रियों से सलाह कर चमरचञ्च नगर, अशनिघोष के पास एक दूत भेजा। अशनिघोष ने उसके दूत को अपमानित कर लौटा दिया ॥२६-२७॥ अमिततेज ने अपने दूत के वचनों को सुन तथा अशनिघोष के महात्म्य को जानकर श्री विजय को दो विद्याऐं साधने के लिये दीं। उसने सात दिन में प्रहरणवरणी और बन्धमोचनी

इन दोनों विद्याओं को साध लिया तथा अशनिघोष से युद्ध करने के लिये निकल पड़ा॥२८-२९॥

तथा भानु, अर्क, चन्द्र, रवि, शशि और मित है आदि में जिनके, तथा रथ, सेन, कीर्ति, गति, तेज और वेग है अन्त में जिनके ऐसे नाम वाले पाँच सौ पुत्र भी उनके साथ गये॥३०॥ इन सब को भेजकर अमिततेज स्वयं महाज्वाला नाम की विद्या को सिद्ध करने के लिये ह्रीमंत पर्वत पर सञ्जयन्त मुनि की प्रतिमा के पास गया। वह विद्या सर्व विद्याओं को नष्ट कर देने वाली थी। उसे यत्न पूर्वक सिद्ध करते समय ज्येष्ठ पुत्र सहस्ररश्मि सावधान हो उसकी रक्षा करने लगा॥३१-३२॥ इधर श्रीविजय अपनी विभूति के साथ उत्तर श्रेणि को प्राप्त हुआ। यह सुन अशनिघोष ने सेना सहित विद्युत्घोष, सहस्रघोष, शतघोष, मेघघोष, सिंहघोष आदि तीन सौ पुत्रों को युद्ध करने के लिए भेजा और वे सब एक साथ ही युद्ध के लिए निकल पड़े। वे अमिततेज और अशनिघोष के मायावी पुत्र आकाश में एक दूसरे पर विद्याओं का प्रयोग करते हुए एक पक्ष तक युद्ध करते रहे। इस बीच अमिततेज के पुत्रों द्वारा अशनिघोष के सभी पुत्र पराजित होकर छिन्न-भिन्न कर दिये गये। यह देख अतिक्रुद्ध अशनिघोष सेना सहित उनसे लड़ने के लिये निकल पड़ा॥३३-३६॥ तब उससे लड़ने के लिये श्रीविजय आगे आया और उसके दो टुकड़े करने ही चाहे थे पर वह मायावी विद्या के बल से स्वयं दो टुकड़े हो गया, फिर भी श्रीविजय ने दो टुकड़े करने चाहे इस पर वह अपना द्विगुणित रूप करता ही गया। इस तरह अशनिघोष ने चारों ओर दिशाओं में अपने हजारों रूप बनाकर श्रीविजय तथा अमिततेज के पुत्रों के साथ पन्द्रह दिन तक युद्ध किया। उसी समय विद्याओं को सिद्ध कर अमिततेज आ गया तो उसको देखते ही अशनिघोष भाग उठा। उसको भागता देख उसे पकड़ने के लिये अमिततेज ने अपनी विद्या भेजी। जिसका दबाव पड़ने के कारण वह कहीं भी शरण न पा सका॥३७-४०॥

उसी समय नाभेयसीम नाम के पर्वत पर श्री विजयभद्र तीर्थंकर को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ था जिससे चारों प्रकार के देव उनकी पूजा करने के लिये वहाँ आये थे॥४१॥ उस अशनिघोष ने भगवान् के समशरण में जाकर शरण पाई, और वहाँ निर्भय हो बैठा रहा। उसका पीछा करने वाले दूसरे लोग श्रीविजय आदि भी केवली की प्रदक्षिणा कर बैर विरोध त्याग चुपचाप समवशरण में बैठ गये। उसी समय आसुरी देवी भी शीलवती सुतारा को लेकर वहाँ आई और अर्पण कर

श्रीविजय तथा अमिततेज से प्रणत होकर कहने लगी कि आप दोनों को मेरे पुत्र का अपराध क्षमा कर देना चाहिये। इसके बाद वे सब गले मिले और सगे भाईयों के समान बैठ, संसार समुद्र से तारने वाले केवली के मुख से निकले सद्धर्म का उपदेश सुनने लगे॥४२-४५॥

इस कथा के प्रसंग में संशय उत्पन्न होने पर अमिततेज विद्याधर ने पूछा कि भगवन्! किस कारण से अशनिघोष ने सुतारा का हरण किया था। इस पर भगवान् ने उनके पूर्वजन्म के सम्बन्ध बतलाये। उन्होंने कहा कि :-

मगध देश के अचल ग्राम में धरणीजट नामका ब्राह्मण रहता था। उसके अग्निला नाम की भार्या से इन्द्रभूति और अग्निभूति नाम के दो पुत्र हुए। उसके पास कपिल नाम का एक दासी पुत्र था जो कि बहुत बड़ा बुद्धिमान था। जब वह धरणीजट अपने दोनों पुत्रों को वेद पढ़ाता था तब उसे सुनकर वह कपिल भी याद कर लेता था इस तरह वह अच्छा वेदज्ञ हो गया। एक दिन धरणीजट ने उसे वेदपाठ करते देख लिया तो उसे घर से निकाल दिया। वहाँ से निकल वह रत्नसञ्चयपुर चला गया। वहाँ एक सत्यक नाम का ब्राह्मण रहता था उसकी स्त्री जम्बू के एक सत्यभामा नाम की पुत्री थी। कपिल की विद्वता से खुश हो उसने अपनी पुत्री का विवाह उससे कर दिया। वेद पारंगत वह वहाँ अनेक शिष्यों का अध्यापक बनकर रहने लगा। यह सुन धरणीजट उसके पास आया और लोभबुद्धि से लोगों से यह मेरा पुत्र है कहकर वह भी उसके साथ रहने लगा॥४६-५१॥

सत्यभामा ने एक दिन अपने श्वसुर का बहुत सम्मान कर अपने पति का वृतान्त पूछा। धरणीजट भी उससे सब भेद कहकर धन ले घर चला गया॥५२॥ सत्यभामा कपिल को अकुलीन जान उससे विरक्त हो गई और राजा की शरण में गई। इस पर राजा ने कपिल को अपने राज्य से निकल जाने को कहा॥५३॥ उस समय उस नगर का राजा श्रीषेण था उसकी अनिन्दिता और सिंहनन्दिता नाम की दो रानियाँ थीं तथा इन्द्रसेन और उपेन्द्र सेन नाम के दो पुत्र थे। किसी एक दिन अपनी रानियों और सत्यभामा सहित राजा ने अमितगति एवं आदित्यगति नाम के मुनिराजों को दाता के सातों गुण सहित प्रासुक आहारदान दिया॥५४-५५॥

इस राजा के समय में कौशाम्बी में श्री महाबल नाम का एक राजा रहता था। उसकी रानी श्रीमती से श्रीकान्ता नाम की एक पुत्री हुई। उसे उसने इस राजा के पुत्र इन्द्रसेन से विवाह दी। उस पुत्री की सेविका अनन्तमती नाम की एक वेश्या

थी जो उसके साथ आई थी। किसी समय उसके निमित्त से उद्यान में दोनों भाइयों में युद्ध छिड़ गया। राजा दोनों पुत्रों के विरोध को देखकर उस युद्ध को बन्द करने गया पर बन्द न कर सका। इससे अतिदुखित हो दोनों स्त्रियों के साथ विष पुष्प को सूँघकर वहीं मर गया। सत्यभामा भी विष पुष्प सूँघकर मर गई॥५६-५८॥

जब कि युद्ध चल रहा था उसी बीच आकाश से एक विद्याधर ने कहा कि इस वेश्या के निमित्त तुम युद्ध मत करो यह तुम्हारी बहिन है॥५९॥ उन दोनों ने पूछा कि यह कैसे? तब वह विद्याधर कहने लगा कि धातकी खण्ड द्वीप के पूर्व भाग में पुष्कलावती देश के विजयार्द्ध पर्वत पर आदित्याभ नाम का नगर है। वहाँ का राजा सुकुण्डली और उसकी रानी मित्रसेना से मैं मणिकुण्डली नाम का पुत्र हुआ हूँ। किसी एक दिन मैं पुण्डरीकिणी नगरी गया था और वहाँ अमितयश जिनेन्द्र की वन्दना कर मैंने अपने पूर्व भव पूछे थे। इसके उत्तर में भगवान् ने कहा था कि पुष्करार्ध द्वीप के पश्चिम विदेह में वीतशोका नाम की नगरी है वहाँ चक्रध्वज नाम का राजा राज्य करता था। उसकी पहली रानी कनकश्री से कनकलता और पद्मलता नाम की दो कन्यायें तथा दूसरी रानी विद्युन्मती से पद्मावती नामकी कन्या थी॥६०-६३॥

किसी समय अमितसेना नाम की आर्यिका से कर्मगुण व्रत उपवासादि धारण कर आयु के अन्त में कनकश्री और तीनों कन्याएँ सौधर्म स्वर्ग गईं॥६४॥ वहाँ से च्युत हो कनकश्री का जीव तो मैं मणिकुण्डल हुआ। कनकलता और पद्मलता के जीव तुम दोनों भाई तथा पूर्वजन्म में खोटे निदान के कारण पद्मावती का जीव यह गणिका हुआ॥६५॥ इन वचनों को सुनकर वे दोनों राज्य का त्याग कर विरक्त हो गये और सुधर्म मुनि के पास दीक्षा ले, तप कर जीवन के अन्त में मोक्ष गये॥६६॥

श्रीषेण और सिंहनन्दिता ये पूर्व उत्तरकुरु में युगल हुए तथा अनिन्दिता और सत्यभामा ये देवकुरु में युगलिया हुए और उतम दान के प्रभाव से प्राप्त उपभोगों का तीन पल्य तक भोग किया। फिर वहाँ से च्युत हो सौधर्म स्वर्ग गये और वहाँ से यहाँ उत्पन्न हुए। श्रीषेण का जीव तो तुम अमिततेज विद्याधर हुए, अनिन्दिता देवी का जीव पुण्य से श्रीविजय हुआ। सिंहनन्दिता का जीव तुम्हारी पट्टरानी ज्योतिःप्रभा हुई और सत्यभामा का जीव यह तेरी बहिन सुतारा हुई है॥६७-७०॥

उस कपिल के जीव ने सत्यभामा के वियोग से अनेक दुख सहते हुए संसार में चक्कर लगाये फिर सम्भूतरमण नाम के वन में ऐरावती नदी के किनारे किसी

तापसियों के आश्रम में कौशिक तपसी और उसकी भार्या चपलवेगा से मृगश्रृङ्ग नाम का पुत्र हुआ। बाल तप करते हुए वह विद्याधरों की विभूति की चाह करता हुआ मरा और यहाँ यह अशनिघोष विद्याधर हुआ। यहाँ इसने भ्रामरी विद्या सिद्ध की और रास्ते में सुतारा को देख पूर्व स्नेह के कारण इसे हरण कर लिया ॥७१-७३ ॥

केवली द्वारा कही गई इन सब पूर्व जन्म के बैर सम्बन्धी बातों को सुनकर उनमें से अशनिघोष आदि कुछ लोगों ने मुनि दीक्षा ले ली। स्त्रियों में से स्वयं प्रभादि कुछ देवियाँ विरक्त हो दीक्षित हो गईं तथा कुछ लोगों ने सम्यक्त्व पूर्वक अणुव्रतों को धारण कर लिया। विद्याधरों के राजा अमिततेज ने और नराधिप श्रीविजय ने दृढ़ सम्यक्त्वी हो श्रावकधर्म धारण किया और अतिप्रसन्न हो केवली की वन्दना कर अपने अपने नगरों को लौट आये ॥७४-७६ ॥ और प्रतिवर्ष आषाढ़, कार्तिक और फाल्गुन के अष्टाह्निका के दिनों में तथा अन्य सब पर्वों में वे दोनों भक्तिपूर्वक जिनेन्द्र की पूजा अभिषेक करने लगे ॥७७ ॥ एक समय अमिततेज ने एक माह का उपवास धारण करने वाले दमवर नाम के मुनि को आहार दान दिया इससे उसे देवताओं द्वारा जगत् में प्रशंसनीय सम्मान प्रतिष्ठा मिली ॥७८ ॥

किसी समय प्रोषधव्रत धारण किये हुए राजा अमिततेज अपने मित्र श्रीविजय के साथ चैत्यालय में अन्य राजाओं के साथ धर्मचर्चा कर रहा था। उसी समय अमरगुरु और देवगुरु नाम के दो चारण ऋद्धिधारी मुनि वहाँ आए। उन दोनों ने चैत्यालय में विराजमान उन दोनों मुनिराजों की वन्दना की। इसके बाद श्रीविजय ने कौतूहलवश अपने पिता के पूर्व भव पूछे ॥७९-८० ॥ प्रथमानुयोग में प्रवीण साधु अमरगुरु ने कहा कि राजगृह में विश्वभूति और विशाखभूति नाम के दो राजा रहते थे ॥८१ ॥ राजा विश्वभूति की जैनी और विशाखभूति की लक्ष्मणा नाम की स्त्री थीं। उन दोनों को क्रमशः विश्वनन्दि और विशाखनन्दि नाम के दो पुत्र हुए। विश्वभूति ने अपने छोटे भाई विशाखभूति को राज्य दे तथा युवराज पद पर ज्येष्ठ पुत्र को रख, चार हजार राजाओं के साथ श्रीधर मुनि के पास दीक्षा ले ली ॥८२-८३ ॥

एक दिन आम्रवन नाम के उद्यान में विश्वनन्दी क्रीड़ा कर रहा था। पर छल पूर्वक राजा विशाखभूति ने उसे वहाँ से निकाल अपने पुत्र को वहाँ प्रवेश कराया। जब विश्वनन्दी को यह सब छल-कपट मालूम पड़ा तो वह देखने के लिए उद्यान में आया और विशाखभूति के पुत्र विशाखनन्दि को वहाँ से भगाकर युद्ध करने लगा और पत्थर के खम्भे को तोड़ डाला तथा कैंथ के वृक्ष को वेग से गिरा दिया।

इस पर उसकी माँ ने सम्बोधित किया और वह सम्भूताचार्य का शिष्य हो गया ॥८४-८६॥ तथा उग्र तपश्चर्या करता हुआ एक हजार वर्ष के बाद वह मथुरा में आया, वहाँ उसे गाय के धक्का से गिरा हुआ देखकर विशाखनन्दी उसकी हँसी करने लगा ॥८७॥ इससे वह निदान बंध कर मरा और महाशुक्र स्वर्ग में देव हुआ ॥८८॥ जो तुम्हारा पिता विश्वभूति था वह विजय नामका बलदेव हुआ है और जो विशाखनन्दी था वह अश्वग्रीव नाम का शत्रु हुआ है ॥८९॥ श्रीविजय के पिता की बड़ी भारी ऋद्धि को सुनकर तीन गारवों में आसक्त खगेन्द्र अमिततेज ने निदान किया और श्रीविजय के साथ चन्दन वन को देखने के लिए गया ॥९०॥ वहाँ विपुलमति और विमलमति नामके दो चारण ऋद्धिधारी मुनिराजों को देखकर प्रणाम किया और अपनी आयु के सम्बन्ध में पूछा। तब उन महा मुनि ने कहा कि तुम्हारी आयु अब केवल २६ दिन शेष रह गई है॥९१॥ इस पर दोनों ने अर्कतेज और श्रीदत्त को राज्य देकर निःशल्य हो विधि पूर्वक प्रायोपगमन सन्यास धारण किया तथा आनत स्वर्ग में देव हुए॥९२॥

इस प्रकार दामनन्दी आचार्य द्वारा रचित आर्यावद्ध शन्तिपुराण में सुतारा प्रत्यायन नामक द्वितीय सर्ग समाप्त हुआ।

*****

तृतीय सर्ग

वहाँ श्रीविजय का जीव स्वस्तिक विमान में मणिचूल नाम का देव हुआ तथा नन्द्यावर्त विमान में अमिततेज का जीव आदित्यचूल नाम का देव हुआ। वहाँ उन्होंने बीस सागर की आयु प्रमाण सुख भोगे। अनन्तर वहाँ से च्युत होकर जम्बूद्वीप के विदेह क्षेत्र में सीता नदी के किनारे वत्सकावती देश में प्रभंकरी नगरी के राजा स्तमित सागर की पहली रानी वसुन्धरा से अमिततेज का जीव अपराजित और दूसरी रानी अनुमती से श्रीविजय का जीव अनन्तवीर्य नाम के पुत्र हुए ॥१-३॥ पुत्रों के बड़े होने पर राजा स्तमित सागर पुत्रों को राज्य दे स्वयम्प्रभ जिनेन्द्र के पास दीक्षित हो गया और तप काल में नागेन्द्र की विभूति को देख निदान पूर्वक मरण कर धरणेन्द्र हुआ ॥४॥

एक समय वे दोनों भाई नारद ऋषि के आने पर उनका सत्कार न कर सके। इसलिए नारद ने रुष्ट होकर दमतारि विद्याधर से उनकी चुगली की। इस पर विद्याधर ने एक दूत उन दोनों भाइयों के पास भेजा। दूत ने आकर उनसे कहा कि आप वर्वरी और चिलातिका नाम की दोनों नर्तकियाँ हमारे राजा को भेंट कर दीजिये ॥५॥

दूत की बात सुन वे दोनों विचार करने लगे। उसी समय उनके पास पूर्व जन्म की विद्याएँ आ उपस्थित हुईं। उन विद्याओं के प्रभाव से वे दोनों भाई वर्वरी और चिलातिका का रूप धारण कर सुमन्दिर के राजा दमतारि के पास गये ॥६॥ दोनों नर्तकियों को देख और प्रसन्न हो उस मूर्ख दमतारि राजा ने उन्हें अपनी पुत्री कनकश्री के पास भेज दिया। वहाँ वे दोनों नाटक सन्धियों में बहुत बार अनन्तवीर्य की प्रशंसा करने लगे ॥७॥ अनन्तर कनकश्री उस पर अनुरक्त हो गई है ऐसा जानकर वे दोनों उसे विमान से ले भागे। यह सुन दमतारि अत्यन्त क्रुद्ध हुआ तथा सेना सहित युद्ध करने के लिए गया। अन्त में दमतारि ने चक्र लेकर अनन्तवीर्य पर चलाया परन्तु वह चक्र उसकी तीन प्रदक्षिणा देकर दाहिने हाथ के पास आ ठहरा। भावी नारायण अनन्तवीर्य ने उसी चक्र से दमितारि को मार गिराया। इस प्रकार युद्ध का अन्त कर वे दोनों भाई आकाश मार्ग से जा रहे थे कि उनका विमान आकाश मार्ग में रुक गया। वहाँ पर दमतारि के पिता कीर्तिधर को देवों के आसन को कपाने वाला केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है यह जान ॥८-१०॥ वे लोग विमान से उतर कर समवशरण में गये और उनको प्रणाम कर धर्मोपदेश सुना। वहाँ पिता की मृत्यु से दुखित कनकश्री ने अपने पूर्वभव पूछे ॥११॥ केवली ने उत्तर में कहा कि तुम पिछले तीसरे भव में धातकी खण्ड द्वीप की पूर्व दिशा में ऐरावत क्षेत्र के

शंखपुर नगर में एक वैश्य की श्रीदत्ता नाम की बड़ी पुत्री थीं। तुम्हारी और भी छोटी बहिने थीं जो कुण्टी, कुणिनि, पंगु, काणी, कुष्ठिनी तथा कुब्जा थीं जिनकी बड़ी दुर्गति थी। इन सब माँ विहीन बहिनों की ज्येष्ठा होने के कारण तुम्हीं पोषिका थीं॥१२-१३॥ एक समय सर्वशैल नामके पर्वत पर सर्वयश नाम के मुनि से धर्मोपदेश सुनकर तुमने धर्मचक्र व्रतोपवास किया। तथा विद्याधर राजा की ऋद्धि को देखकर उसकी कामना की। जिससे मर कर तू सौधर्म इन्द्र की बिजली की कान्ति के समान कान्तिवाली देवी हुई। मैं भी सुमन्दिरापुर में राजा कनकपुंज और रानी जयदेव से कीर्तिधर नाम का पुत्र हुआ। मेरी पत्नी का नाम पवनवेगा था तथा तेरा पिता दमतारि मेरा पुत्र है और उसकी पत्नी का नाम मन्दिरा है॥१४-१६॥

मैंने शान्तिकर मुनिराज के पास दीक्षा ले एक वर्ष तक प्रतिमा योग धारण कर चार घातिया कर्मों का नाश किया और केवल ज्ञान प्राप्त किया है॥१७॥ तुमने पूर्व जन्म में सुव्रता नाम की आर्यिका को प्राप्त कर उनके प्रति ग्लानि की थी इसलिए तुम्हें अपने बन्धुओं का बड़े कष्ट के साथ वियोग सहना पड़ा॥१८॥

यह सब सुन लोगों ने केवली की प्रदक्षिणा की और उदासीन हो उस कनकश्री के साथ अपने नगर को लौट आये। लौटते समय उन लोगों ने देखा कि नगर में मेरा पुत्र अनन्तसेन विद्याधरों के साथ युद्ध कर रहा है। तब उन्होंने उनके मुखिया दमतारि के पुत्र विद्युद्दंष्ट्र और अनन्तवीर्य हलधर और चक्रधर का पद पा आनन्द करने लगे। कनकश्री ने चार हजार कन्याओं के साथ स्वयंप्रभ जिनेन्द्र की शरण में जा कर आर्यिका दीक्षा ले ली और तप करके प्रथम स्वर्ग में देव हुई॥१९-२१॥

एक समय बलदेव की पत्नी विजया और पुत्री सुमति ने जिन चैत्य की पूजाकर दमवर मुनिराज को आहार दान दिया इससे उसके फ़लस्वरूप पञ्चाश्चर्य की वृष्टि हुई॥२२॥ एक दिन बलभद्र और नारायण अत्यन्त प्रसन्न थे यह देख आनन्द मंत्री ने उनसे निवेदन किया। तब उन्होंने कन्या के स्वयंवर के हेतु सभी राजाओं को आमन्त्रित किया॥२३॥ सौ सखियों से घिरी हुई उस कन्या ने पालकी पर आरूढ़ हो सिद्धसेन प्रतिहारी के साथ स्वयंवर-मण्डप में प्रवेश किया। उसी समय वहाँ एक विमान आया जिसमें एक देवी बैठी थी और उसका नाम नवमिका था। आकाश में ठहर कर ही उसने कहा कि तुम अपने को धनश्री समझो। हम दोनों पुष्करार्ध द्वीप के भरत क्षेत्र में नन्दन नगर के राजा अमित विक्रम और रानी अनन्तमती के अनन्तश्री और धनश्री नाम की दो पुत्रियाँ थी। किसी दिन हम दोनों सिद्धकूट चैत्यालय में गई थीं, और वहाँ नन्दन नाम के ऋषि से प्रोषधव्रत लिये थे॥२४-२६॥ उस समय त्रिपुर नगर के राजा वज्रांगद ने अशोक वाटिका में हम

दोनों को हरण किया, किन्तु उसकी स्त्री वज्रमालिनी के भय से उसने हम दोनों को आकाश में छोड़ दिया और साथ ही उसने पर्णलघ्वी विद्या भी दी जिससे हम दोनों भीम अटवी में तालाब के किनारे बाँसों के वन में धीरे-धीरे आ उतरीं ॥२७-२८॥ वहाँ हम दोनों ने समाधिमरण धारण किया। मरकर मैं तो सौधर्म इन्द्र की नवमिका देवी हुई हूँ और तू कुबेर की रति नाम की मुख्य देवी हुई ॥२९॥ एक समय हम दोनों नन्दीश्वरद्वीप की यात्रा करने गयी थीं। वहाँ पर मार्ग में धृतिवर नाम के चारण मुनि से पूछने पर कि हम लोगों की मुक्ति कब होगी, उन्होंने कहा था कि इस भव के बाद चौथे भव में अवश्य मुक्ति होगी। यह बतलाने के लिए ही मैं यहाँ आई हुई हूँ। यह कथन सुन कन्या को जातिस्मरण हो आया और वह मूर्च्छित हो गई। अनन्तर उसके द्वारा नृप-समूह को वैराग्य की सूचना देने पर वह देवांगनाओं के द्वारा पूजी गई। तत्पश्चात वह सात सौ कन्याओं के साथ सुव्रता आर्यिका के पास दीक्षित हो गई और उग्र तपकर अन्त में आनत कल्प में देव हुई ॥३०-३२॥

कुछ काल बाद अर्धचक्री अनन्तविजय की मृत्यु के बाद बलदेव अपराजित ने राज्यपद पर अनन्त सेन का अभिषेक कर सोलह हजार राजाओं के साथ यशोधर मुनिराज के पास दीक्षा ले ली और अवधिज्ञान को प्राप्त कर उन्होंने रत्नावली नामक उग्र तप किया और सिद्धकूट पर्वत पर अन्त में आराधना पूर्वक मरण कर अच्युतेन्द्र पद पाया ॥३३-३४॥ पहले किये गये निदान बंध के कारण अनन्तवीर्य नरक गया और वहाँ ७६ हजार वर्ष तक दुख भोग कर वहाँ से निकला। उसे उसके पिता के जीव धरणेन्द्र ने नरक में जाकर संबोधा था। इसलिए वहाँ से निकल कर इसी भरत क्षेत्र के विजयार्ध पर्वत की गगनवल्लभपुरी में राजा मेघवाहन और रानी मेघमालिनी से मेघनाद नाम का पुत्र हुआ ॥३५-३६॥ विद्याधरों का स्वामी होने के बाद एक समय वह मेरु की वन्दना करने गया था उसी समय अपराजित का जीव अच्युतेन्द्र भी जिनालय की वन्दना करने के लिए आया था। तब उसने हे नरेन्द्र ! 'तुम प्रबुद्ध हो जाओ' यह कहकर सम्बोधित किया। तब वह देवगुरु के समीप दीक्षा लेकर उग्र तप में स्थित हो रत्नावली नाम के तप को तपने लगा। एक समय वह नन्दननामरु पर्वत पर प्रतिमा योग से खड़ा था कि सुकण्ठ ने उसके ऊपर उपसर्ग किये। इससे अन्त में वह समाधि मरण से देह त्याग कर अच्युत स्वर्ग का प्रतीन्द्र हुआ ॥३७-३९॥

इस प्रकार पुराणसारसंग्रह नाम के महापुराणान्तर्गत शान्तिनाथ चरित में अनन्तवीर्यकाण्ड नामक तृतीय सर्ग समाप्त हुआ।

*****

चतुर्थ सर्ग

अपराजित का जीव जो कि इन्द्र हुआ था, २२ सागर की आयु भोग कर वहाँ से च्युत हुआ और जम्बूद्वीप के पूर्व विदेह क्षेत्र में सीता नदी के किनारे पर स्थित मंगलावती देश के रत्नसंचयपुर नगर में राजा क्षेमंकर और रानी कनकचित्रा से वज्रायुध नाम का पुत्र हुआ। उसकी भार्या का नाम लक्ष्मीमती था। तथा उन्हीं दोनों के अनन्तवीर्य प्रतीन्द्र का जीव सहस्रायुध नाम का पुत्र हुआ। उसकी पत्नी श्रीषेणा थी जिससे कनकशान्त नाम का एक पुत्र हुआ॥१-३॥

एक समय क्षेमंकर अपने पुत्र और पौत्रों के साथ राज्य सभा में बैठा था कि उसी समय ईशान स्वर्ग का एक देव राज्य सभा में विवाद करने के लिए आया। वाद-विवाद में नयी शैली जानने वाले वज्रायुध ने उस नास्तिक देव को पराजित कर दिया। तब शान्त हो उस विचित्रचूल देव ने उस राजा की पूजा की और सम्यग्दर्शन ग्रहण कर लिया॥४-५॥

किसी दूसरे समय बसन्त ऋतु में उसकी धारणी आदि रानियों के सन्देश वश सुदर्शना ने वज्रायुध कुमार को सुररमण उद्यान में चलने के लिए सूचना दी। वज्रायुध उस उद्यान में स्थित प्रियदर्शन वापी में अपनी सात सौ रानियों के साथ क्रीड़ा करने लगा। इतने में ही पूर्व जन्म के बैरी विद्युद्दंष्ट्र विद्याधर ने उसे देखकर एक पत्थर की शिला से उस वापी को ढक लिया और नागपाश से उस राजा को बाँध दिया। तब वज्रायुध ने रुष्ट होकर उस शिला का भेदन कर दिया नागपाश को काट डाला॥६-८॥

वज्रायुध के पिता क्षेमंकर ने भी लौकान्तिक देवों के द्वारा सम्बोधे जाने से विरक्त होकर और पुत्र का राज्याभिषेक करके उग्र तप करते हुए अतिपूज्य अरिहन्त पद प्राप्त किया॥९॥ इसके बाद वज्रायुध ने छह खण्डों का समस्त राज्य पाकर चक्रवर्ती पद पाया और उसके पुत्र सहस्रायुध ने भी पिता की आज्ञा से युवराज पद प्राप्त किया॥१०॥

एक समय भय से काँपता हुआ एक विद्याधर रत्नचित्रा नाम की सभा में बैठे हुए वज्रायुध की शरण में आया॥११॥ उसके पीछे दोनों हाथों में चमकती तलवार लिये एक विद्याधरी आई। और राजा से बोली कि इस अभिमानी को छोड़िए। उस विद्याधरी के पीछे हाथ में गदा लिये एक बूढ़ा विद्याधर भी आया और यह कहते

हुए कि हे राजन् ! इस दुष्ट की रक्षा मत कीजिए, उसके अपराध कहने लगा ॥१२-१३॥ इसी जम्बूद्वीप के पूर्व विदेह क्षेत्र में कच्छ नाम का देश है। उसमें विजयार्द्ध पर्वत की उत्तर श्रेणी में शुक्रप्रभ नाम का नगर है। वहाँ के राजा सुदत्त और रानी यशोधरा से हे राजन्! मैं पवन वेग नाम का पुत्र हुआ हूँ। मेरी पत्नी का नाम सुकान्ता है। यह शान्तिमति मेरी पुत्री है। यह विद्या सिद्ध करने के लिए मुनिसागर नाम के पर्वत पर गई थी। इस पापी ने भाई जैसा मानने वाली उसका परिहास कर विघ्न किया पर उसी समय शान्तिमति को प्रज्ञप्ति नाम की विद्या सिद्ध हो गयी जिससे भयभीत हो वह यहाँ आया है। उसी समय मैं उसकी पूजा की सामग्री लेकर वहाँ पहुँचा था। किन्तु वहाँ इसे न देख उसको ढूँढता हुआ यहाँ आया हूँ। इस दुष्ट व्यर्थ साहस करने वाले को छोड़ दो, मैं इसे दण्ड दूंगा ॥१४-१७॥

यह सुन राजा अवधिज्ञान से उनका पूर्वभव जानकर विद्याधर से कहने लगा कि इनके पूर्वभव को सुनो ॥१८॥

इसी जम्बूद्वीप के ऐरावत क्षेत्र में विन्ध्यपुर के राजा विन्ध्यसेन और रानी सुलक्षणा के नलिन केतु नाम का एक पुत्र था ॥१९॥ उसी नगर में एक धनमित्र नाम का सेठ रहता था। उसकी पत्नी श्रीदत्ता से सुदत्त नाम का पुत्र हुआ तथा उसकी पत्नी का नाम प्रीतिंकरा था। रूपवती वह एक दिन किसी वन में विहार कर रही थी। उसे देख राजपुत्र नलिनकेतु ने उसे हरण कर लिया। सुदत्त भी उसके वियोग से दुखी हो सुव्रत जिनेन्द्र के पास दीक्षा ले साधु हो गया ॥२०-२१॥ उसी समय उन मुनि के केवलज्ञान उत्पन्न होने पर देवतागण उनकी पूजा करने आये, यह देख शान्तपरिणामी सुदत्त को तीव्र वैराग्य हो गया और आयु के अन्त में मरकर क्रम से इसी जम्बूद्वीप के सुकच्छ देश के विजयार्द्ध की उत्तर श्रेणी में कांचनतिलक नगर के राजा महेन्द्रविक्रम विद्याधर के यहाँ रानी अनिल वेगा से सुदत्त का जीव अजितसेन नाम का यह पुत्र हुआ। यह अत्यन्त मन्दकषायी था। इसकी पत्नी का नाम कमला था ॥२२-२४॥

इधर नलिनकेतु को एक दिन मेघनाश देख आत्मज्ञान प्राप्त हुआ और सीमङ्कर मुनि के पास दीक्षा ले ली। और तपकर अनुक्रम से केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष गया ॥२५॥

प्रीतिंकरा भी सुव्रता आर्या के पास चन्द्रायण तप करने लगी और अन्त में देह त्याग कर क्रम से तुम्हारे शान्तिमति नाम की पुत्री हुई ॥२६॥ इसी कारण से इसने

तुम्हारी पुत्री को स्नेह वश हरण करना चाहा था। इस प्रकार राजा के द्वारा कहे गये पूर्वभव के सम्बन्ध को सुनकर उन सबने वैर-भाव छोड़ दिया और क्षेमंकर जिनराज की शरण में गये। इसके बाद शान्तिमति विरक्त हो आर्यापद की दीक्षा ले मुक्तावली तप कर ईशान स्वर्ग में देव हो अपने पूर्व शरीर की पूजा करने आवेगी। उसी समय उसके पिता और अतिजसेन को केवल ज्ञान उत्पन्न होगा। तब वह बड़ी ऋद्धि के साथ उनके केवलज्ञान की पूजा कर अपने स्थान जावेगी और वहाँ से च्युत हो वह निर्वाण पद प्राप्त करेगी ॥२७-३०॥

वज्रायुध ने अपने अवधिज्ञान के बल से जान यह बात राजाओं से कही। इससे सन्तोष पूर्वक उन सबका चित्त आश्चर्ययुक्त हो गया और उन्होंने नृपेन्द्र की पूजा की ॥३१॥

एक समय विजयार्द्ध के शिवमन्दिर नगर में राजा मेघमाली तथा उसकी रानी विमला रहते थे। उनकी पुत्री का नाम कनकमाला था। उसका विवाह कनकशान्ति नाम के राजकुमार से हुआ था ॥३२॥ विजयार्ध के दूसरे नगर वस्त्वोकसार में समुद्रसेन राजा तथा उसकी रानी जयसेना रहते थे। उनके वसन्त सेना नाम की पुत्री थी। वह भी कनकशान्ति से विवाही गई थी। पर उसका एक भाई हिमचूल कनकशान्ति के ऊपर पूर्वभव के बैर के कारण रुष्ट रहने लगा। एक समय अपनी दोनों रानियों के साथ कनकशान्ति हिमवान् गिरि पर आया और वहाँ विमलप्रभ मुनि के पास धर्मोपदेश सुन दीक्षित हो गया। तथा उसकी दोनों रानियाँ भी विमलमति आर्यिका के पास दीक्षित हो गईं ॥३३-३५॥

एक समय कनकशान्ति मुनि प्रतिमायोग धारण कर स्थित थे कि उसी समय दुष्ट हिमचूल ने पूर्वबद्ध बैर के कारण उपसर्ग करना प्रारम्भ किया, पर मर्यादा का अतिक्रमण देख सभी विद्याधर राजा, बहुत क्षुब्ध हुए इससे वह वहाँ से भाग गया। किसी दूसरे समय रत्नपुर नगर के सुरनिपात उद्यान में वे ही मुनिराज प्रतिमा योग धारण कर बैठे थे कि दुष्ट ने पुनः उपसर्ग करना प्रारम्भ किया। किन्तु उन उपसर्गों को जीतने के कारण उन्हें केवलज्ञान उत्पन्न हो गया ॥३६-३७॥

उस समय देवों का आगमन देखकर वह हिमचूल डर गया और उन मुनिराज की शरण में आया। अथानन्तर नाती के केवलज्ञान की पूजा कर वज्रायुध चक्रवर्ती ने अपने संशय पूछा ॥३८॥ और अपने पुत्र सहस्रायुध को राज्य दे, सात सौ पुत्रों व सात हजार राजाओं के साथ अपने पिता की शरण में गया ॥३९॥ अनन्तर वे धीर

वीर मुनिराज सिद्धगिरि पर्वत पर एक वर्ष के लिए प्रतिमा योग धारण कर स्थित हो गये। उस समय लताओं और वामियों से घिरे हुए वे मुनिराज ऐसे मालूम पड़ते थे जैसे अचल वृक्ष ही हों॥४०॥

इधर अश्वग्रीव के रत्नग्रीव और रत्नायुध नाम के दो पुत्र थे जो अपने पाप कर्म के उदय से संसार में परिभ्रमण कर अतिबल और महाबल नाम के असुर हुए। वे दोनों असुर पूर्व वैर के कारण उन पर उपसर्ग करने लगे। उसी समय रम्भा और तिलोत्तमा नाम की दो देवियाँ आई, किन्तु उन्हें देखकर वे दोनों भाग गये॥४१-४२॥

फिर वे मुनिराज अच्छी तरह तप की आराधना कर अन्त में ऊर्ध्व ग्रैवेयक के सोमनस नाम के अधो विमान में २९ सागर की आयु वाले अहमिन्द्र हुए॥४३॥

सहस्रायुध ने भी अपने पुत्र शतबली को राज्य दे पिहिताश्रव मुनि के समीप दीक्षा ले ली और उग्र तप किया तथा वे वैभार पर्वत पर एक माह का उपवास कर और चार प्रकार की आराधनाओं की आराधना कर सोमनस विमान में अहमिन्द्र हुए॥४४-४५॥

इस प्रकार दामनन्दि विरचित आर्याबद्ध शान्तिचरित में
वज्रायुध काण्ड नामक चौथा सर्ग समाप्त हुआ।

*****

पंचम सर्ग

वहाँ से च्युत हो वज्रायुध और सहस्रायुध के जीव इसी द्वीप के पूर्व विदेह क्षेत्र की पुण्डरीकिणी नगरी में राजा घनरथ के यहाँ रानी मनोहरा और मनोरमा से मेघरथ और दृढ़रथ नाम के पुत्र हुए। उनमें से प्रथम मेघरथ की प्रियमित्रा और मनोरमा ये दो स्त्रियाँ थीं और दूसरे दृढ़रथ की सुमति नाम की भार्या थी॥१-२॥

एक समय वे घनरथ पुत्र, पौत्र तथा रानियों सहित सुख पूर्वक बैठे थे कि उसी समय सुषेणा नाम की गणिका मुर्गों का युद्ध कराने के लिए आई और मनोरमा को देखकर एक लाख की शर्त कराने वाली उसकी काञ्चना नाम की दासी से कहने लगी कि तुम अपने वज्रतुण्ड नामक मुर्गे को लाओ और जैसा तुम चाहो हमारी शर्त रहेगी। इसके बाद दोनों मुर्गे युद्ध करने लगे पर कोई मुर्गा नहीं जीता। इस पर घनरथ ने अपने पुत्र मेघरथ से कहा कि हे कुमार, यह क्या बात है? इस प्रकार राजा के पूछने पर कुमार मेघरथ पक्षियों के पूर्वजन्म कहने लगा॥३-५॥ इसी जम्बूद्वीप के ऐरावत क्षेत्र के रत्नपुर नगर में धन्य और भद्र नाम के दो गाड़ीवान् रहते थे। एक समय श्रीनदी के किनारे एक बैल के निमित्त से वे दोनों लड़ने लगे और एक दूसरे को मारकर श्वेतकर्ण और ताम्रकर्ण नाम के गजपति हुए। फिर सुवर्ण नदी के किनारे एक दूसरे को देखकर आपस में लड़ मरे और जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में, अयोध्या नगरी में नन्दिमित्र ग्वाला के यूथ में भैंसे हुए। उस नगर के राजपुत्र वरसेन और शक्तिसेन ने उन दोनों को खूब खिलाकर मोटा किया॥६-८॥ तत्पश्चात दोनों आपस में लड़ मरे और उन्हीं दोनों राजपुत्रों के यहाँ मेंढ़े हुए। फिर उन्हीं राज पुत्रों से उकसाये गये वे लड़े और आपस में शिर से एक दूसरे को मार डाला॥९॥ पुनः इस जन्म में दोनों ये मुर्गे हुए हैं। हे तात! बिना परिश्रम के ही वे दोनों लड़ रहे हैं॥१०॥ यह सुनकर राजा ने कहा कि ये दोनों मुर्गे विद्याधरों से रक्षित हैं यह क्या बात है, तथा कौतुक को उत्पन्न करने वाले दोनों कौन हैं यहाँ किस कारण से आये हैं। यह सब हमें बतलाओ॥११॥

इस पर पुत्र ने बतलाया कि इसी जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में विजयार्ध की उत्तर श्रेणी के सुवर्णपुर में गरुड़वेग नाम का राजा राज्य करता था॥१२॥ उसकी रानी धृतिषेणा से चन्द्रतिलक और दिवितिलक नाम के दो पुत्र थे। वे दोनों भाई एक समय मेरु पर्वत पर गये और वहाँ नन्दन वन में दो चारण ऋद्धिधारी मुनियों की

वन्दना करके अपने पूर्वभव पूछे। इस पर सागर चन्द्र मुनिराज ने इस प्रकार कहा कि धातकीखण्ड द्वीप के ऐरावत क्षेत्र के पृथिवी तिलक पुर में राजा अभयघोष रहता था। उसकी पट्टरानी का नाम कनकतिलका था। उन दोनों के विजय और जयन्त नाम के दो पुत्र हुए॥१३-१५॥

उसी देश के मन्दारपुर में राजा शंख राज्य करता था। उसकी रानी का नाम जया था। उन दोनों के पृथिवीतिलका नाम की पुत्री थी। यह भी अभयघोष की पत्नी थी॥१६॥ एक समय बड़ी रानी ने अपनी दासी चञ्चतिलका को राजा के पास भेजा। उसने निवेदन किया कि महारानी आपके साथ छह ऋतु की शोभा युक्त उद्यान में विहार करना चाहती हैं॥१७॥ तब उसी समय छोटी रानी ने अपनी विद्या से वहीं पर सब ऋतुओं के बहुमूल्य फल पुष्पों से भरा हुआ बाग बनाकर दिखला दिया। जिससे राजा उद्यान में नहीं गया। इससे सुवर्णतिलका उद्यान में विहार करने में असमर्थ रही और पृथिवीतिलका के द्वारा किये गये अपमान से विरक्त हो सुमति नामक आर्यिका के पास धर्मोपदेश सुनकर दीक्षित हो गई॥१८-१९॥

किसी एक दिन राजा ने दमवर मुनि को अति भक्ति से दान दिया। इससे देवों ने उसकी पूजा की तथा पञ्चाश्चर्य हुए। इसके बाद अभयघोष अपने दोनों पुत्रों के साथ अनन्तसेन मुनिराज के पास दीक्षित हो गया और सोलह कारण भावनाओं की आराधना करके अच्युत स्वर्ग में देव हुआ। वहाँ से च्युत हो वह तुम दोनों का पूर्वजन्म का पिता हेमाङ्गद राजा की रानी मेघमालिनी से घनरथ नाम का यह पुत्र हुआ है जो पुण्डरीकणी नगरी का राजा है। जो विजय तथा जयन्त के जीव थे वे तुम दोनों यहाँ चन्द्रतिलक और दिवितिलक नाम के विद्याधर हुए हो। इस प्रकार मुनिराज द्वारा कही गई कथा सुनकर स्नेहवश वे दोनों विद्याधर आप सबको देखने यहाँ आये हैं। मुर्गों के युद्ध देखने में अनुरक्त आप सबको देख इन विद्याधरों ने पक्षी का रूप धारण कर लिया है। इस प्रकार मेघरथ से सब समाचार सुनकर उन दोनों ने अपना असली रूप प्रकट किया॥२०-२४॥ और घनरथ तथा मेघरथ को नमस्कार कर अपने नगर में जाकर गोवर्धन मुनि के पास दीक्षा ले अन्त में निर्वाण को प्राप्त हुए॥२५॥

उन दोनों मुर्गों ने भी मेघरथ से अपने पूर्वभवों को सुनकर वैर-भाव त्याग दिया और प्रत्याख्यान पूर्वक मरकर भूतरमण वन में ताम्रचूल और सुवर्णचूल नामके अनेक रूपधारी भूत जाति के देव हुए तथा मेघरथ कुमार को विमान में बिठलाकर

मनुष्य लोक का पर्यटन कराया ॥२६-२७॥ कुछ काल बाद लौकान्तिक देवों से सम्बोधित हो घनरथ ने अपने ज्येष्ठ पुत्र मेघरथ को राज्य पर अभिषिक्त कर तथा दूसरे पुत्र को युवराज पद दे दीक्षित हो अर्हन्तपद पाया ॥२८॥

एक समय मेघरथ देवरमण उद्यान में अशोक वृक्ष के नीचे एक शिला पर बैठे थे। वह शिला अकस्मात् हिलने लगी तब प्रियमित्रा नाम की रानी यह देख पूछने लगी ॥२९॥ कि यह कौन है विद्याधर है या देव है? रानी के इस प्रकार पूछने पर राजा ने कहा कि यह दोनों श्रेणियों का राजा विद्याधर है और अलकापुरी में रहता है और इसका नाम सिंहरथ है। यह अपनी पत्नी मदनवेगा के साथ अमितवाहन तीर्थंकर की वन्दना कर विमान से लौटते समय प्रतिरुद्धगति हो गया ॥३०-३१॥ तदनन्तर मुझे देखकर क्रोधित हो मेरे साथ इस शिला को उठाने का प्रयत्न करने लगा। तब मेरे हाथ से अभिभूत हो वह करुणा भरे ऊँचे स्वर से रोने लगा। अब इसे छुड़ाने के लिए इसकी स्त्री और ये सब विद्याधर मेरी शरण में आये हैं। मेघरथ के ऐसा कहने पर प्रियमित्रा ने पूर्वभवों को पूछा ॥३२-३३॥ राजा ने कहा कि पुष्करार्ध द्वीप के भरत क्षेत्र में शंखपुर नाम का नगर है। वहाँ राजगुप्त नाम का राजा राज्य करता था। उसकी रानी का नाम शंखिका था। एक दिन वे दोनों शंखगिरि पर्वत पर सर्वगुप्त मुनि की वन्दना करने के लिए गये और वहाँ जिनेन्द्रगुण संपत्ति (द्वात्रिंशत्कल्याण) व्रत को सुना और उसका पालन कर एक समय धृतिषेण नाम के मुनि को आहार दान दिया। फिर समाधिगुप्त मुनि के समीप जिन दीक्षा ले ली, तथा आचाम्ल वर्धन तप का आराधन कर वेणुवन में समाधिपूर्वक मरण कर ब्रह्मलोक स्वर्ग में दश सागर की आयुवाला देव हुआ। फिर वहाँ से च्युत हो रानी अनिलवेगा और राजा विद्युद्रथ का यह पुत्र हुआ है। पूर्वभव में जो इसकी शंखिका नाम की पत्नी थी वह यह मदनवेगा हुई है ॥३४-३७॥ इस प्रकार मेघरथ के कहने पर उस विद्याधर ने मेघरथ की पूजा की और घर जाकर अपने पुत्र कनकतिलक को राज्य दे अनेक विद्याधरों के साथ घनरथ तीर्थंकर के पास दीक्षित हो गया ॥३८॥

एक समय अष्ठम भक्त उपवास पूर्वक बड़ी भक्ति से जिनेन्द्र भगवान् की पूजा करके मेघरथ राजा चाँदनी रात में सबको आमन्त्रित कर गृहमण्डप में सभी राजाओं को धर्म का उपदेश देते हुए बैठे थे कि उसी समय एक कबूतर राजा की शरण में आया। तब राजा ने भयभीत उसे "तुम डरो मत" कहकर अभयदान दिया। उसका पीछा करते हुए आहार का इच्छुक एक बाज पक्षी आकर राजा से

बोला कि-यह मेरा आहार है, मैं भूखा हूँ, इस पक्षी को छोड़ दीजिये। बाज के इन वचनों को सुनकर दृढ़रथ बोला कि-हे पूज्य! यह बाज पक्षी बोलता है इससे मेरे मन में बड़ा आश्चर्य हो रहा है, कृपया इन दोनों पक्षियों के पूर्व वृतान्त मुझसे कहिये ॥३९-४३॥

तब मेघरथ ने कहा कि इसी जम्बूद्वीप के ऐरावत क्षेत्र में पद्मिनीखेट नाम का एक नगर है। उसमें सागरसेन नाम का वैश्य और उसकी पत्नी अमितमती रहते थे। उनके धनमित्र और नन्दिषेण नाम के दो वैश्य पुत्र थे। एक समय वे ऋण लेकर व्यापार करने निकले और नागपुर निवासी भट्टिमित्र के पास से रत्नों को लेकर शंख नदी के किनारे उन्हीं रत्नों के निमित्त झगड़ने लगे और एक तालाब में गिरकर मर गये। मरकर वे दोनों मालोद्यान में ये पक्षी हुए ॥४४-४६॥

पूर्वभव में बाँधे गये क्रोध के कारण इस कबूतर का पीछा करते हुए गृद्ध को देखकर कोई एक देव इसके शरीर में प्रवेश कर गया ॥४७॥ मेघरथ ने उसके सम्बन्ध में बतलाया कि यह देव पहले संजयंत नगरी में हेमरथ नाम का राजा था। तूने इसे दमितारि के साथ युद्ध करते हुए मारा था। पुनः वह संसार में परिभ्रमण करता हुआ कैलाश पर्वत के पास निर्वृति नदी के किनारे स्थित मनोहर काश्यपाश्रम में तपस्वी सोम और उसकी पत्नी श्रीदत्ता से चन्द्र नाम का पुत्र हुआ ॥४८-४९॥ वहाँ उसने उग्र बाल तप कर मरण किया और सुरूप नाम का यक्ष हुआ। एक समय इन्द्र ने अपनी सभा में कहा कि दाताओं में अग्रणी-मेघरथ नाम के राजा को नमस्कार है ॥५०॥

इन्द्र की यह बात सुनकर यह देव ईर्ष्या के कारण दोनों पक्षियों के साथ यहाँ आया है। इस प्रसङ्ग में मैं दानादि का लक्षण कहता हूँ ध्यान पूर्वक सुनो-दाता पात्र और देय पदार्थ की विशेषता से दान फल में भी विशेषता होती है। लोक में हिंसा आदि दोषों से विरत और सब प्राणियों पर दयाबुद्धि रखने वाला दाता कहलाता है। दाता की रक्षा करने वाला पात्र कहलाता है। तथा दाता और पात्र दोनों के सुख का उपायभूत पदार्थ देय कहलाता है ॥५१-५२॥

यहाँ यह गृद्ध मांस का अभिलाषी है अतः यह दान योग्य नहीं है। राजा के ऐसा कहने पर वह यक्ष मेघरथ की पूजा कर अपने स्थान चला गया। वे दोनों पक्षी भी मेघरथ से प्रत्याख्यान ग्रहण कर और क्रम से मरकर भवनवासी देव हुए और वहाँ से आकर उन दोनों ने मेघरथ को नमस्कार किया ॥५३-५४॥

एक समय एक मास का उपवास किये हुए दमवर नाम के मुनि पारणा करने के लिए मेघरथ के घर आये। प्रोषध उपवास वाले उस राजा ने उन्हें योग्य समय में विधिपूर्वक दान दिया इससे उसके यहाँ पञ्चाश्चर्य हुए तथा देवताओं ने उसकी पूजा की ॥५५॥

एक समय वसन्त के महीने में अष्टोपवास के साथ आष्टाह्निक पूजा करके प्रतिमायोग से चैत्यालय में बैठे हुए राजा को अवधिज्ञान से देखकर ऐशान इन्द्र ने हाथ जोड़कर नमस्कार किया। यह देख अरजा और विरजा नाम की दो देवियों ने इन्द्र से पूछा कि हे स्वामिन्, आप किसे प्रणाम कर रहे हो। तब इन्द्र ने कहा कि मैं आगामी तीर्थंकर चरमशरीरी एवं शरीर से मोह रहित तथा उपसर्ग सहने में समर्थ इन मेघरथ राजा को नमस्कार कर रहा हूँ॥५७-५८॥ इन्द्र के मुख से यह बात सुनकर उसकी परीक्षा करने के लिए अतिरूपा और सुरूपा नामकी देवियाँ आई। उन्होंने उस पर विचित्र उपसर्ग किये पर वे अडोल और अकम्प ही बने रहे। तब उनकी पूजा कर वे अपने-अपने स्थान पर चली गईं॥५९॥

एक समय मेघरथ की रानी प्रियमित्रा स्नान कर रही थी। उसके रूप को देखने के लिए दो देवियाँ वैश्य कन्या का रूप बनाकर आईं तथा उसके लिए भेंट भी लाईं। तब प्रियमित्रा ने उन्हें देखकर कुछ देर ठहरने को कहा और स्नान कर अलंकार-आभूषणों से सुसज्जित हो उसने अपना रूप दिखाया। नहाने के समय रूप को देखकर और फिर बाद के रूप को देखकर 'अहो यह शरीर की शोभा अनित्य है' ऐसा उन देवियों के कहने पर प्रियमित्रा उदास हो गई। फिर प्रियमित्रा रनवास में सुखपूर्वक बैठे राजा के पास आकर पूछने लगी कि क्या मैं शोभाहीन हो गई हूँ॥६०-६३॥

राजा ने 'हाँ' ऐसा कहा और बताया कि इन्द्र ने अपनी सभा में घोषित किया था कि प्रियमित्रा के समान इस समय किसी का रूप नहीं है। यह सुन ये दोनों देवियाँ वैश्य-कन्या का रूप धारण कर यहाँ तुम्हें देखने आई हैं। इस प्रकार राजा के कहने पर वे देवियाँ देवी (प्रियमित्रा) की प्रशंसा कर चली गईं॥६४-६५॥

कुछ दिनों के बाद राजा मेघरथ अपने पुत्र मेघसेन को राज्य देकर अपने छोटे भाई और सात हजार राजाओं के साथ अपने पिता घनरथ तीर्थंकर के पास दीक्षित हो गये। फिर उन्होंने सोलह कारण भावनाओं का चिन्तवन कर त्रैलोक्य में कम्प

पैदा करने वाले विशेष पुण्य गुणरूप दर्शन विशुद्धि मूलक तीर्थंकर नाम गोत्र (कर्म) का बन्ध किया। एकादश अङ्ग के पाठी वे मुनिराज सिंहनिष्क्रीड़ित तप को करने लगे। वे अपने भाई दृढ़रथ के साथ नभस्तिलक पर्वत पर आरूढ़ हुए, वहाँ एक मास तक उपवास कर शरीर त्यागा तथा सर्वसुख के निधान सर्वार्थसिद्धि विमान में गये। वहाँ उन्हें तेतीस सागर की आयु मिली ॥६६-६९॥

इस प्रकार दामनन्दि विरचित आर्याबद्ध शान्तिनाथ चरित में पञ्चम सर्ग समाप्त हुआ।

*****

षष्ठ सर्ग

इसी भारत वर्ष में कुरुजांगल नाम का देश है। वहाँ अति शोभायमान एक हस्तिनापुर नाम का नगर है। वहाँ का राजा विश्वसेन था॥१॥ उनकी महारानी का नाम ऐरा था। जिसकी श्री इत्यादि देवियाँ सेवा करती थीं। एक समय उत्तम शय्या में सोई हुई उस रानी ने रात्रि के पिछले प्रहर में इन स्वप्नों को देखा॥२॥ ऐरावत हाथी, वृषभ, सिंह, लक्ष्मी का अभिषेक, पुष्पों की माला, चन्द्र, सूर्य, मीनयुगल, दो कलश, कमलों का सरोवर, समुद्र, सिंहासन, देवविमान, धरणेन्द्र भवन, रत्नराशि और धूमरहित अग्नि। मेघरथ के जीव ने पहले ही माता को ये सोलह स्वप्न दिखाये। फिर सभी इन्द्रों के आसनों को कँपाते हुए देव अवस्था को प्राप्त उस मेघरथ ने स्वर्ग से पृथ्वी पर अवतीर्ण हो ऐरावत हाथी का रूप धारणकर माता ऐरा के मुख से गर्भ में प्रवेश किया ऐसा उसे दिखाया॥३-५॥ अनन्तर जिन माता के जागने पर देव-कन्याओं ने उसकी देह को स्नान-अलंकार आदि से सजाया। फिर उसने राजा से स्वप्न कहे और राजा ने उनका फल कहा कि तुम्हें हिमवान् पर्वत से लेकर लवण सुमुद्र तक शासन करने वाला पुत्र उत्पन्न होगा और हम दोनों उस त्रैलोक्यगुरु के माता पिता पद को पायेंगे॥६-७॥ नव मास का समय पूर्ण होने पर एक साथ तीनों लोकों को कम्पायमान करते हुए भगवान् ने जन्म लिया। इसके पूर्व गर्भ काल में देव-कुमारियाँ जिनेन्द्र का प्रयत्न पूर्वक पालन करती थी॥८॥ इन्द्रों ने अपने आसनों के कम्पायमान होने से अवधिज्ञान द्वारा भगवान् के जन्म को जाना तथा शेष देवों ने घण्टानाद, सिंहनाद, भेरीनाद तथा शंखनाद से भगवान् के जन्म को जाना॥९॥ यह जानकर उन सबने सम्मान पूर्वक अपने आभूषण धारण किये और अपनी-अपनी देवाङ्गनाओं से युक्त विमानों से आकाश को ढँक लिया॥१०॥ फिर क्रमशः हस्तिनापुर पहुँचकर उन देवों ने हाथ जोड़ कर सिर झुकाकर कुरुवंश के तिलक भगवान् को तथा माता पिता को भक्ति पूर्वक नमस्कार किया। फिर इन्द्राणी ने माता को मोहनिन्द्रा में सुलाकर उसके पास एक मायामयी शिशु लिटा दिया और भगवान् को ले जाकर अपने पति इन्द्र को सौंप दिया। ऐरावत रूपी गिरिशिखर पर बैठे हुए नवजात वे भगवान् ऐसे मालूम पड़ते थे मानो शिशिर काल में उदयाचल की शिखर पर नव उदित सूर्य ही हो॥११-१३॥ उस समय 'हे जिननाथ हे स्वामिन्! आपकी जय हो, जय हो, आप ऐश्वर्यशाली हों' इस प्रकार देव और

देवियों के अञ्जलिमाला और नमस्कारमय युक्त शब्द हो रहा था॥१४॥ ईशानादि स्वर्गों के इन्द्र, चन्द्रमा, हंस और सूर्य के समान चमकीले उत्तम चामर और व्यंजनों से भगवान् की भक्ति पूर्वक सेवा कर रहे थे॥१५॥ देवांगनाएँ रात्रि में चमकने वाले ताराओं की भांति भृंगार, कलश, पालिकपात्रि, पिटारी और करण्डक आदि अष्ट मंगल द्रव्यों को धारण किये हुए थी॥१६॥ वहाँ क्षुब्ध हुए समुद्र की गर्जना के समान नगाड़े आदि बाजे बज रहे थे, तथा देवगण सिंह निनाद से युक्त गीत गा रहे थे॥१७॥

इस प्रकार महाविभूति के साथ भगवान् को लेकर वे सब आकाशमार्ग से तीन लोक के मध्य विराजित सुमेरु पर्वत की शिखर पर पहुँचे। वहाँ उन्होंने भगवान को पाण्डुकशिला के ऊपर सिंहासन पर बैठाया तथा क्षीर सागर के जल से भरे कलशों से जिन भगवान् का अभिषेक किया॥१८-१९॥ वे सुवर्ण घटरूपी मेघ, इन्द्र रूपी वायु के द्वारा गर्जते हुए भगवान् के सिर पर बरसते हुए ऐसे मालूम पड़ते थे मानो कि मेरु पर्वत पर ही बादल वरस रहे हों॥२०॥ उसी समय शरद् कालीन मेघ के समान शब्द करती हुई देवदुन्दुभियाँ और दूसरे बाजे बजने लगे तथा वीणाएँ तालसहित मधुर और मनोहर शब्द करने लगीं वहाँ रम्भा अप्सराऐं बार-बार नृत्य करने लगीं। तथा इन्द्राणियाँ मनोज्ञ जिनेन्द्र गुणों का कीर्तन करती हुई नाच करने लगीं॥२१-२२॥ अन्य देवांगनाएँ भी सङ्गीत तथा नाटक करने लगीं। किन्नरियाँ भी मनोहर गान कर रहीं थी तथा भूतगण प्रमोद से नृत्य कर रहे थे॥२३॥ कोई भगवान् के पास नाना प्रकार के नैवेद्य, उपहार द्रव्य तथा अनेक प्रकार के पूजा द्रव्य भेंट में ला रहे थे और कोई धूप जला रहे थे। कोई स्थानों को सजा रहे थे, कोई जिनेन्द्र भगवान् के गुणों में लवलीन हो पवित्र मन्त्रों से जाप कर रहे थे, तो कोई नाना छन्दों से भगवान् की स्तुति कर रहे थे॥२४-२५॥ कोई जिन पुण्य का जोरों से गान कर रहे थे, कोई प्रसन्न हो रहे थे, अतृप्त नेत्रों से भगवान को देख रहे थे तो कोई उन्मत हो होकर जोर जोर से हँस रहे थे और चिल्ला रहे थे। उस समय इन्द्र की आज्ञा से अनेक आयुध और गदाधारी पराक्रमी देवगण विघ्न करने वाले और दूसरे अयोग्य देवों को सावधान करते हुए रक्षा कर रहे थे। अन्य देव जिन पूजा को देख शान्त परिणामी हो गये और बहुतों ने सम्यक्त्व धारण कर लिया, और कुछ तो यह जानकर कि इससे बड़ी कोई महान् विभूति नहीं है, सम्यक्त्व में दृढ़ हो गये॥२६-२८॥ इस प्रकार इन्द्रों ने स्नान कराकर तथा अवस्थानुकूल अलंकारों से

भगवान् को विभूषित कर प्रदक्षिणा की और हाथ जोड़कर इस प्रकार स्तुति करने लगे॥२९॥

हे नाथ ! आप कर्मरूपी घने जङ्गल को नाश करने वाले हो, संसार रूपी महासमुद्र के तारक हो, धर्मरूपी श्रेष्ठ तीर्थ के प्रवर्तक हो इसलिए हे भावि अर्हन्त! तुम्हें नमस्कार है॥३०॥

इस प्रकार स्तुति कर वे लोग बड़ी ऋद्धि के साथ भगवान् को शीघ्र ही नगर में लाये तथा इन्द्र के हाथ से इन्द्राणी ने जिन-बालक को लेकर माता के समीप रख दिया॥३१॥

फिर वहाँ जिन भगवान् के माता पिता से कुशल-प्रश्नों को पूछकर तथा उनकी उत्तम पूजाकर इन्द्र और देवियों ने आनन्द नाम का नाटक किया और इसके बाद अपने परिवारों सहित अपने-अपने निवास-स्थानों को लौट गये॥३२॥ भगवान् के माता-पिता के प्रांगण में प्रतिदिन जन्म के पहिले १५ माह से ही साढ़े तीन करोड़ रत्न बरसने लगे थे॥३३॥ माता ऐरा तीन लोक में पूज्य पुत्र को पा इतनी सन्तुष्ट हुई जैसे भव्य लोग सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान सहित सम्यक्चारित्र को प्राप्त कर सन्तुष्ट होते हैं। वह विचारने लगी कि॥३४॥ इन्द्राणियों के द्वारा अभिलषणीय भगवान् के जिस मातृपद को पाकर स्त्री अपने जन्म को सफल मानती है वह मातृपद मैंने आज बड़े भाग्य से प्राप्त किया है॥३५॥ चूँकि भगवान् के उत्पन्न होने से इस भारतवर्ष में शान्ति हो गई थी इसलिए इन्द्र और माता-पिता ने मिलकर उस बालक का "शान्ति" यह नाम रखा॥३६॥ दृढ़रथ का जीव भी स्वर्ग से उतर कर उन्हीं महाराज विश्वसेन की यशस्वती देवी से चक्रायुध नाम का पुत्र हुआ॥३७॥ कुरुकुल के तिलक, सुन्दर और मनुष्यों के मन और नेत्रों को आनन्द देने वाले वे भगवान् कभी अस्त को प्राप्त न होने वाले तीन ज्ञान रूपी सूर्य को धारण किये हुए ऐसे बढ़ने लगे जैसे लोक में सूर्य बढ़ता है॥३८॥ इन्द्र की आज्ञा से कुबेर भगवान् के लिए ऋतुकाल और अवस्था के अनुरूप राजाओं के योग्य दिव्य आभूषण आदि से उनका योग-क्षेम करने लगे॥३९॥

भगवान की क्रमशः बाल्यावस्था व्यतीत होती गई और वे सोलहवें वर्ष में पहुँच कर ऐसे सुशोभित होने लगे जैसे शरत् काल में चन्द्रमा अपनी निर्मल सोलह कलाओं से सुशोभित होता है॥४०॥ उनके शरीर में १००८ शुभ व्यञ्जन और

लक्षण चिन्ह व्यक्त हो गये थे तथा ४० धनुष ऊँचा उनका शरीर सुवर्ण के समान सुशोभित होता था। बन्धुओं के साथ यौवन रूपी धान्यपाक को प्राप्त करने वाले भगवान् शान्तिनाथ के कुमार अवस्था में २५ हजार वर्ष व्यतीत हुए॥४१-४२॥

तब राजा विश्वसेन ने भगवान् शान्तिनाथ का राज्याभिषेक किया और उसी समय अपने लघुपुत्र चक्रायुध को युवराज पद भी प्रदान किया। उन भगवान् शान्तिनाथ को चक्रादि सात अचेतन रत्न और स्त्री आदि सात सचेतन रत्न तथा नवनिधियाँ और देव गण प्राप्त हुए॥४३-४४॥ तथा उन्हें बत्तीस-बत्तीस हजार, राजा, राज कन्याएँ नाटक, देश तथा नगर प्राप्त हुए॥४५॥ भगवान् ने हिमवान् गिरि से लेकर समुद्र पर्यन्त देव तिर्यञ्च और मनुष्यों से भरी हुई तथा अनेक विद्याधरों के श्रेष्ठ नगरों से व्याप्त इस पृथिवी को अकेले ही भोगा। विद्याधर देव और नरेन्द्रों ने मिलकर उनका अभिषेक कर उन्हें चक्रवर्ती पद दिया और उस पद का कुमारकाल के बराबर काल तक उन्होंने भोग किया। भगवान् ने अपने दीक्षा कल्याण के पूर्व वर्ष पर्यन्त आभरण, वस्त्र, भोजन, सुवर्ण मणि, रत्न तथा अन्य अभिलषित धन-धान्य जगत् के लोगों के लिए दान में दिया॥४६-४८॥

एक समय भगवान् अलङ्कार पहने हुए श्रृंगार-गृह में सुख पूर्वक बैठे हुए थे कि वहाँ उन्हें एक दम से वैराग्य हो गया। तब दूसरों के पूछने पर वे कहने लगे कि देखो मैं दिव्य भोगों से तो तृप्त नहीं हुआ पर इन थोड़े से मनुष्य सम्बन्धी भोगों में रत हो रहा हूँ। क्या सागर के जल से अतृप्त आदमी एक तिनके की बिन्दु बराबर जल से तृप्त हो सकता है? उसी समय क्षीरसागर के जल के समान गौर वर्णवाले लौकान्तिक देव धर्मतीर्थ के प्रवर्तक भगवान् शान्तिनाथ को सम्बोधित करने के लिए वहाँ आये॥४९-५१॥ निर्मल लेश्यावाले, स्वयम्बुद्ध होते हुए भी वे भगवान् उन देवों से सम्बोधित हुए ऐसे मालूम पड़ते थे मानो शरद् काल में चन्द्रमा की किरणों से खिले हुए कुमुदों वाला तालाब ही हो॥५२॥ उसी समय भगवान् के दीक्षा कल्याणक को सूचित करने वाले इन्द्रों की आज्ञा से देवगण मेरु से लेकर लोकान्त तक जो जहाँ थे वहाँ से अपने-अपने स्थान पर आये॥५३-५४॥ कल्पवासी देवों को घण्टों से, ज्योतिषी देवों को सिंहनाद से, व्यन्तरों को पटह के शब्दों से और भवनवासियों को शंख के शब्दों से भगवान् के दीक्षा-कल्याणक का ज्ञान कराया गया॥५५॥ इन्द्रों की घोषणा सुनकर जो नाना प्रकार की सेनाओं और विमानों से युक्त हैं, जो श्रेष्ठ हाथियों की सवारी कर रहे हैं, जो अपरिमित हैं, जो

नाना प्रकार के सैनिक चिन्हों से विभूषित हैं और जो कामदेव के मन्दिर समान अङ्गनाओं की सेना से युक्त हैं ऐसे चारों प्रकार के देवसमूह सादर जल्दी ही हर्ष के साथ आभूषण पहन कर हस्तिनापुर आ गये और देदीप्यमान मुकुट मणिवाले उन देव समूहों ने आकाश को अपने यान-विमानों से व्याप्त कर लिया। उस जगह की भूमि संवर्तक नामक वायु द्वारा परिशोधित की गई तथा गन्धोदक की वर्षा से शान्त और पवित्र की गई और देव समूह ने नाना प्रकार के दिग्पाल, आत्मरक्ष और परिषत्क देवों सहित विमानों से उतरे और अलकापुरी के समान शोभा को धारण करने वाली उस नगरी में मानों स्वर्ग में ही प्रवेश कर रहे हों, इस प्रकार प्रविष्ट हुए॥६०॥

उस समय अपने ज्येष्ठ पुत्र नारायण का राज्याभिषेक कर हजारों राजाओं से घिरे हुए तथा रत्नसिंहासन पर सुख पूर्वक बैठे हुए उन चक्रवर्ती भगवान् शान्तिनाथ को देखकर देवेन्द्रों ने हाथ जोड़कर प्रणाम किया और सूचना देकर राजाओं के आंगण में दिव्य अभिषेक मण्डप तैयार किया॥६१-६२॥ क्षीर सागर के जल से भरे हुए एक हजार आठ सोने के कलशों से इन्द्रों ने अनेक नृत्य गीत वादित्र आदि के साथ विभूति से भगवान् का अभिषेक किया। फिर गोशीर्ष चन्दन आदि से लेप कर उन्हें गाय के दूध के फेन के समान दो धवल वस्त्र पहनाये और कल्पवृक्ष की मालाएँ पहनाईं तथा मनोहर मुकुट, दो कुण्डल, श्रेष्ठ हार आदि आभूषणों से इन्द्रों ने भगवान् को सजाया। इसके बाद इन्द्रों से स्तुत वे भगवान् सभा के बीच सिंहासन पर सुखपूर्वक बैठे॥६३-६५॥ इधर कुबेर ने एक अत्यन्त दर्शनीय सुन्दर शोभावाली सर्वार्थसिद्धि नाम की पालकी बनाकर उपस्थित की॥६६॥ उस पालकी की वेदी सोने की थी, उसके खम्भे तपाये गये सोने के बने थे, उसका नीचे का फर्श चाँदी का बना था, उसके तोरण मूँगा और मणियों के बने थे। उसकी भित्तियाँ सोने की थीं और बीच-बीच में वैडूर्य मणि से खचित थी। उसके दरवाजे शस्य के समान मरकत मणियों के बीच चमकते हुए पद्मराग मणियों से बनाये गये थे जिसमें स्वर्ण से बने हुए कंगूरों में नाना मणियों से खचित कपोताली बनी थी। तथा जिनका तट भाग प्रकट रूप से कङ्कण के समान स्वर्णकलशों से व्याप्त था॥६७-६९॥ उस पालकी के स्फटिक से खचित चाँदी के बने अतएव सफेद दूध के समान पाँच कूटों पर मणियों के दण्ड पर एक एक पताका लगी हुई थी॥७०॥ उसकी दीवालों पर हाथी, उष्ट्र, अष्टापद, चमरीमृग, मनुष्य, अश्व, रुरु, मकर, हरिण, आदि जीवों

के तथा कमल हेन्ताल, तिलक, तलताल, बकुल आदि पुष्पों के चित्र थे॥७१॥

वह अभिनय सहित अपने रूप-समूहों से भगवान् को सम्बोधित करने के लिए ही मानों श्वांस ले रही हो, सिन्दुवार, कुन्द मुकुल, मल्लिका आदि की मालाओं से मानों वह हँस रही हो, तथा हिलती हुई मणि और सोने की मालाओं से वह मानों हर्षित हो रही हो ॥७२॥ मणियों के जाल से मानों शब्द कर रही हो तथा कमल-समूहों से ऐसी मालूम पड़ती थी कि मानों वह हँस रही हो॥७३॥ उसमें लगे हुए मनोहर घण्टे-घण्टिओं से वह ऐसी मालूम पड़ती थी कि मानों तेजी से मंत्रों को बार बार जप रही हो। कमलों के समूह रूपी आँखों से वह मानों सबको देख-सी रही हो। उसमें लगे लाल मणियों के समूह से वह ऐसी मालूम पड़ती थी जैसे हेमन्त की रात्रि बिजली सहित सन्ध्या से सुशोभित होती है तथा लटकती हुई मुक्तामालाओं से वह ऐसी मालूम पड़ती थी कि मानों पृथिवी तल पर दूध की वर्षा कर रही हो॥७४-७५॥ वह पालकी शोभायमान कदली के समान काँपती हुई मालूम पड़ती थी तथा लताओं से ऐसी मालूम पड़ती थी मानों आकाश में नाच रही हो तथा हंस, वृषभ, हाथी और सिंह के द्वारा वहन की गई वह ऐसी मालूम पड़ती थी मानों वह आकाश में उड़ना ही चाह रही हो॥७६॥ स्तम्भों से सुशोभित उस पालकी का बीच का भाग पादासन और सिंहासन से सुशोभित था वह राजांगण में रखी हुई ऐसी मालूम पड़ती थी मानों स्वर्ग से उतर कर वहाँ आई हो॥७७॥

उस समय कुबेर ने इन्द्र को उस पालकी की सूचना दी। इन्द्र ने भगवान् से निवेदन किया कि "हे नाथ! अब प्रस्थान का समय है " तब भगवान् अपने अन्तःपुर, पुत्रों, बन्धुओं और चौदह रत्न तथा निधिरक्षक देवों से पूछकर तथा आपस में मिलकर और कुल परम्परा के अनुरूप योग्य कार्य कहकर दीक्षा के लिए भूतल पर ३२ पग चले। इन्द्रगण उनके ऊपर सफेद छत्र लगाये तथा चामर ढोर रहे थे। उस समय लोकान्तव्यापी जयघोष तथा मंगल शब्द हो रहे थे। इसी समय भगवान् ने पालकी में ऐसे प्रवेश किया मानों सूर्य मन्दराचल की गुफा में प्रवेश कर रहा हो॥७८-८१॥ उस पालकी को सबसे पहिले राजा लोग प्रसन्न होकर सात पैंड़ तक बगीचे तक ले चले। मानों इन्द्र लोग भगवान् को सुमेरु की ओर ले जा रहे हों। फिर उनसे इन्द्रों ने लेकर पालकी ढोना प्रारम्भ किया॥८२॥ वर्षा काल में मेघ गर्जना के समान ही वहाँ बाजों के शब्द सुनाई पड़ने लगे। वायु कुमार देवों ने दुन्दुभि, शंख और श्रृंग बाजे बजाना प्रारंभ किये। अन्य देवों ने

सिंहनाद से सर्वत्र क्षोभ फैलाने वाले, क्षुब्ध समुद्र के समान ध्वनि वाले जयघोष किये॥८३-८४॥ पालकी के सब ओर आठों दिशाओं में देवाङ्गनाओं ने वीणा, मृदंग, पणव आदि बाजों के साथ ताण्डव नृत्य करना शुरू कर दिया। वहाँ अनेक रूप विलासवाली विद्याधरियाँ तथा किन्नरियाँ उत्तम बाजों के साथ आकाश में नाच करने लगी। रूप में देवांगनाओं के समान अन्य नर वधुएँ पृथिवीतल पर एक स्वर से, पालकी के चारों ओर मनोज्ञ नृत्य करने लगीं॥८५-८७॥ अन्य देवाङ्गनाएँ आलेपन विभूषण कर आठों दिशाओं में भृंगार आदि आठ तथा एक सौ आठ मंगल द्रव्यों को लेकर जा रही थीं॥८८॥

भगवान् का पुत्र नारायण भी विजय हाथी पर चढ़कर छत्र, चामर और ध्वजाओं से सुशोभित होता हुआ ३२ हजार राजाओं के साथ चला। उसके साथ निधिरक्षक देव थे तथा चतुरंगिणी सेना थी। उन सबके साथ पालकी के पीछे-पीछे आकाश में चलता हुआ वह ऐसा मालूम पड़ता था कि स्वर्ग को जाने वाला दूसरा इन्द्र ही हो॥८९-९०॥

भगवान् के चले जाने पर उनकी कुछ रानियाँ विविध चीत्कार, विलाप करती हुई और वियोग दु:ख से छाती एवं शिर कूटती हुई रोने लगीं। कई तो शोक से मूर्च्छित हो गईं और उनके वस्त्र तथा भूषण भी बिखर गये। वे उस समय मणिनिर्मित भूतल पर यत्न पूर्वक चित्रलिखित के समान सुशोभित हो रही थीं। "अरे अरे, ये बालाऐं मुर्च्छित हो गईं हैं। अरी भामिनी, पानी लाओ" ऐसा कहती हुई कितनी ही उनकी चन्दन और मुक्तामणियों से मूर्च्छा दूर करने का प्रयत्न करने लगीं॥९१-९३॥

'हे कुब्जे क्या उलझ रही हो। अरी चेटिके, तुम शीघ्र ही मेरी साड़ी दो। अरी भट्टारिके, दोनों हाथ नचाना छोड़ो। देखती नहीं हो कि मेरी करधनी भी गिर गई है'॥९४॥ इस प्रकार अनेक प्रकार के वस्त्र और आभूषणों को लेकर व पहन कर तथा नुपूर व करधनी आदि के मुधर शब्दों से झंकृत चरणवाली कुलवधुएँ अपने घर से निकल कर उस दीक्षा कल्याणक की अद्भूत विभूति को देखने लगीं॥९५॥ उस समय सात प्रकार के अनीक जाति के देव विमानों से आकाश व्याप्त हो रहा था तथा भूतल राजाओं की सेना से व्याप्त था और मध्य भाग में सब दिशाऐं विद्याधरों की सेनाओं से व्याप्त थीं॥९६॥ उस समय आकाश में देवों की कल-कल

ध्वनि, दुन्दुभि के शब्दों से मिश्रित हो रही थी और बीच बीच में दया उत्पन्न करने वाला क्रन्दन और विलाप हो रहा था ॥९७॥ ऊपर उठे सफेद छत्रों से आकाश ऐसा मालूम पड़ता था मानों अनेक पूर्णचन्द्रों से भरा हो, अनेक उत्तम चामरों से ऐसा मालूम पड़ता था मानों हंसों से व्याप्त हो ॥९८॥ भगवान् के दीक्षा कल्याणक काल में सूर्य का प्रखर तेज अभिभूत होकर उसका देवमय प्रकाश सौम्य होता हुआ दृष्टि, मन और शरीर के लिए सुखकारी हो गया ॥९९॥ किन्हीं ने आकाश से पंचवर्ण के फूल, चूर्ण और वस्त्रों को छोड़ा और किन्हीं ने उन्हें गगनाङ्गण में यत्र-तत्र बिखेर दिया ॥१००॥ वहाँ अग्नि कुमार देवों ने कालागुरु चन्दन का अति सुगंधित धूप जलाना प्रारम्भ किया, तथा कुछ देवों ने शोभा युक्त नाना रंगों की पताकाऐं उठा रखी थीं। कुछ लोग जोरदार शब्दों में कह रहे थे कि "इससे बड़ा और क्या त्याग हो सकता है" और कोई उत्तम पूजा करते थे ॥१०१-१०२॥ अन्य देवगण नाना चित्रात्मक तथा दण्डक, गीतिका आदि छन्दों से तथा अनेक जिन गुणों का कीर्तन करने वाले स्तोत्रों से भगवान् की स्तुति कर रहे थे ॥१०३॥ विचित्र प्रकार के बाजे हाथ में लेकर, ऊँचे मुकुट और विचित्र नासिका वाले नर्तन में चतुर भूत गण यहाँ-वहाँ विचित्र नाच कर रहे थे ॥१०४॥

कहीं पर तुम्बरु, नारद और उत्कृष्ट जंघावाले गन्धर्व देव यहाँ-वहाँ वीणा, बाँसुरी आदि हाथ में लेकर गाते हुए अपनी देवियों के साथ नाचने लगे ॥१०५॥ अन्यत्र गीत, वाद्य, नाटक, इन चारों के योग से संतुष्ट हुए दूसरे देव उनका सत्कार करते हुए प्रयोक्ताओं के प्रति चारों ओर से साधुकार शब्द कहने लगे ॥१०६॥

इस प्रकार देवों और मनुष्यों के द्वारा पूजे गये भगवान् नगर से निकले, तथा नन्दन वन के समान सहस्राम्र वन में आकर पहुँचे। वहाँ एक वृक्ष के किनारे इन्द्रों से प्रार्थित भगवान् पालकी से सीढ़ियों-द्वारा उतरे मानों कि आकाश से पूर्ण चन्द्रमा पृथिवीतल पर उतर रहा हो ॥१०७-१०८॥ फिर इन्द्र की आज्ञा से जयघोष का महान् शब्द हुआ और भगवान् "नमः सिद्धेभ्यः" कहते हुए पूर्वमुख स्थित हुए। वहाँ भगवान् ने करधनी, कटक, केयूर, मुकुट, हार और कुण्डलादि तथा वस्त्र भी त्याग दिये तथा पृथिवी पर पर्यंकासन लगाकर बैठ गये ॥१०९-११०॥ फिर भगवान् ने अपने घुंघराले बालों को पंचमुष्टि से उपाटकर हजार राजाओं के साथ दिगम्बरी दीक्षा ले ली। इन्द्र ने भगवान् के केशों को एक रत्न के पिटारे में रखा और उनकी पूजा की। तदनन्तर भक्तिपूर्वक शीघ्र ही ले जाकर क्षीर सागर में क्षेप

दिया ॥१११-११२॥ भगवान् १६ हजार गण देवताओं से सेवित उस चक्रवर्ती पद को छोड़कर तथा सब परिग्रह छोड़ चौथे संयम में प्रतिष्ठित हो गये। वे पुरुष-हस्ती, हावभाव लीलामयी, उद्धत तथा स्नेह, मोह और पुरुष रेखावाली, नारी रूपी वारी को भेदनकर तपोवन में आ गये ॥११३-११४॥ वे जिनसिंह पुत्र स्त्री आदि स्नेहरूपी लोहे से बने हुए निश्चल लोभकारक और दुश्छेद्य गृहवासरूपी पिंजर को तोड़कर शीघ्र ही बाहर चले आये ॥११५॥ उन धीर भगवान् ने शोभायमान सागर रूपी वस्त्रवाली, वेलारूपी, गंगा सिन्धु रूपी साड़ी पहने हुए, पर्वत रूपी मनोहर कुचों वाली, हिमवान्पर्वत के कूट रूपी चमकीले मुकुटों वाली, उद्यान रूपी रोमराजिवाली, ग्राम, आकर और पतन रूपी भूषण वाली, हर्षयुक्त नगररूपी मुखवाली तथा निरन्तर होने वाले उत्सव पर्व आदि रूपी शब्दों वाली ऐसी पृथिवी रूपी वनिता को सदोष स्त्री के समान छोड़ दिया था ॥११६-११८॥ इस प्रकार भगवान् शान्तिनाथ दिन के दूसरे भाग में षष्ठोपवास ले अपने भाई चक्रायुध तथा अन्य मुनियों के साथ संयम रूपी राज्य में स्थित हो गये ॥११९॥ इस समय देवों ने भगवान् के दीक्षा कल्याणक की सैकड़ों स्तुतियों से पूजा की तथा नमस्कार प्रदक्षिणा कर अपने-अपने स्थान पर चले गये ॥१२०॥ भगवान् का पुत्र नारायण भी सजल नेत्र हो, भगवान् और मुनियों की वन्दना कर अपनी सेना, निधि और रत्नों सहित अपने नगर वापिस लौट आया ॥१२१॥ चार ज्ञानों के धारक वे भगवान् देव और मनुष्यों की भीड़ से मुक्त हो, मुक्ति सुख का अनुभव करते हुए ऐसे मालूम पड़ते थे मानों बादलों से मुक्त ग्रह नक्षत्र सहित पूर्ण चन्द्र ही विराजमान हो ॥१२२॥ उनका संयम राज्य ही सुकोश था, शासन की श्रेष्ठता ही कोष्ठागार था, कभी नहीं छीजने वाला भाण्डागार था और प्रतिग्रहवृति ही महानस था ॥१२३॥

जिस मार्ग के शुद्ध होने पर यति, यम, संयम और भावनाओं में शुद्ध होता है उस आहार मार्ग को प्रवर्तन करने में भगवान् ने उद्योग किया। यद्यपि भगवान् बहुत काल तक अनशन कर सकते थे तो भी धर्म मर्यादा चलाने के लिए देवों से पूजनीय वे दो दिन के बाद पारणा के लिए मन्दरपुर नाम की ओर चल पड़े ॥१२४-१२५॥

वह नगर हाथी, मनुष्य तथा घोड़ों से भरा था। वहाँ बड़े ऊँचे परकोटे तथा अट्टालिकाएँ थीं। नगर के प्रधान दरवाजों के श्रृंग इतने ऊँचे थे मानों वे शरत्कालीन मेघों का आलिंगन कर रहे हों ॥१२६॥ वह नगर क्षुब्ध समुद्र के समान शब्द पूर्ण था, तथा अनेक रङ्ग-बिरङ्गे महलों की पताकाओं से सुशोभित था, और वह शत्रु

सेना के मद को शोषण करने वाला तथा अनेक महिमापूर्ण उत्सवों से भरा हुआ था। वहाँ की गलियाँ गजमद से समतल हो गई थीं तथा वहाँ के मार्ग पूजा की सामग्री से पुष्ट हुए भौरों से भरे हुए थे, इस तरह वह नगर इतना सुन्दर था कि कवियों के वर्णन से भी परे था॥१२७-१२८॥ उस नगर में देवों से पूज्य उन जिनेन्द्र ने एक हजार मुनियों के साथ प्रवेश किया। नगरवासी समस्त जनता ने हाथ जोड़कर भक्तिपूर्वक उन्हें नमस्कार किया॥१२९॥ नगर में भगवान् को आया हुआ सुन वहाँ का राजा सुमित्र अपनी पत्नी सहित हाथ में पात्र ले कर और पवित्र व तुष्ट हो घर से आदर सहित निकला॥१३०॥ मुनियों के साथ राजाङ्गण में खड़े हुए शील, व्रत और गुणों में श्रेष्ठ वे जिनराज ऐसे मालूम पड़ते थे मानों आकाश में नक्षत्र व ताराओं से घिरा हुआ चन्द्रमा हो। उन्हें देखकर राजा सुमित्र ने अपनी पत्नी सहित भगवान् की तीन प्रदक्षिणा की। सुन्दर हार से सुशोभित और विकसित मुखचन्द्र वाला वह राजा प्रदक्षिणा करता हुआ ऐसा मालूम पड़ता था जैसे सुमेरु पर्वत की प्रदक्षिणा करता हुआ ज्योतिषी देवों का इन्द्र ही हो॥१३१-१३२॥ उसने अपने एक घुटने को आकुंचित कर और दाहिने घुटने को जमीन पर टेककर सिर पर हाथ लगा भगवान् के दोनों चरणों में प्रणाम किया। फिर उठकर उनसे विनयपूर्वक सब कुशल पूछी। और शेष ऋषियों को विनयपूर्वक नमस्कार किया। भगवान् को पारणा के लिए आया हुआ जानकर वह अपने को धन्य मानने लगा। उसने ३२ उद्गम, उत्पाद व १० एषणा दोषों से रहित, तथा १४ मल दोष रहित और नवकोटि परिशुद्ध उत्तम आहार को उत्कृष्ट पात्र में लेकर उत्तम भावों से मोक्ष प्राप्ति की इच्छा से उन महान् ऋषि शान्तिनाथ को परम भक्ति से दिया॥१३३-१३६॥

उसी समय वहाँ पर पाँच आश्चर्य हुए और साथ ही आकाश में देवताओं ने 'अहो दान, अहो दान, दान योग्य पात्र में दिया गया है' इस प्रकार जयघोष किया। आकाश 'साधु साधु' कहने वाले देवगणों से भर गया, दुन्दुभि बाजे बजने लगे तथा गन्धोदक की वृष्टि होने लगी॥१३७-१३८॥ वहाँ आकाश से सुवर्ण चाँदी तथा रत्न आदि धनकी बहुत बड़ी वृष्टि हो रही थी मानों वह पृथिवी भर रही हो। वहाँ सबसे बड़े आश्चर्य की बात यह थी कि जिस घर में भगवान् ने आहार किया था उस घर में यदि करोड़ों व्यक्ति भी भोजन करते तो भी आहार समाप्त न होता॥१३९-१४०॥ भगवान् ने शरीरयात्रा चलाने योग्य तप्त अर्जुन पिण्ड के समान थोड़ा आहार लिया। बाद में नरेन्द्र और इन्द्र से पूजित हो वे भगवान् नगर से

विहार कर गये। राजा सुमित्र भी अपनी पत्नी सहित देवताओं द्वारा पूजा गया और इस मानुषी विभूति को छोड़ देवताओं जैसी विभूति भोगने लगा ॥१४१-१४२॥

भगवान् ने नाना प्रकार के अभिग्रहों के साथ उग्र तप करना प्रारंभ किया और इस प्रकार सूर्य और सिंह के समान पराक्रम वाले उन भगवान् ने छद्मस्थ अवस्था में सोलह वर्ष बिताये। एक समय वे भगवान् नन्दि वृक्ष के नीचे अपने ही नगर के बगीचे में बैठे थे। उस समय वे क्षपकश्रेणी पर आरूढ़ हुए और उन्नत शुक्लध्यान का चिंतवन करने लगे। तब उन्होंने मोहनीय आदि ६३ प्रकृतियों को क्षण भर में नष्ट कर दिया। इससे उन्हें केवलज्ञान के साथ ही साथ अर्हन्त पद प्राप्त हुआ ॥१४३-१४५॥ उसी समय स्वर्ग में देवेन्द्रों के सिंहासन काँपने लगे। उन्होंने अपने अवधिज्ञान से भगवान् की केवलज्ञानोत्पति जानी। फिर चारों प्रकार के देव देवांगनाओं और अनेक प्रकार की सेना सहित वहाँ आये और भगवान् की तपोविभूति देखने लगे ॥१४६-१४७॥

भगवान् के समवशरण में अशोकवृक्ष, देवदुन्दुभि, सिंहासन, चामर, श्वेतछत्र, एक योजन तक ध्वनि, भामण्डल तथा पुष्पवृष्टि ये आठ प्रातिहार्य थे ॥१४८॥ पूर्व आदि दिशाओं में अश्व, हाथी, वृषभ, कमल, अम्बर, सिंह, गरुड़ और इन्द्र से चिह्नित छत्र सहित देवकृत ध्वजाएँ यहाँ वहाँ फहरा रहीं थी ॥१४९॥ इन्द्रों ने इस प्रकार की शोभा से युक्त भगवान् को देख तीन प्रदक्षिणाऐं दीं तथा सामने खड़े होकर हाथ जोड़ करोड़ों स्तुतियों से भगवान् की स्तुति करने लगे ॥१५०॥

हे भगवान् ! यह पूरा संसार राग, द्वेष और मोह इन तीन से जीता गया है और आपने इन तीनों को जीत लिया है इसलिए आप त्रिलोकपति हैं, आपको नमस्कार हो ॥१५१॥ इस प्रकार इन्द्रों ने भगवान् की स्तुति की और फिर भक्ति पूर्वक प्रदक्षिणा कर जिन भगवान् के समीप अपने अपने योग्य स्थान पर बैठ गये ॥१५२॥

भगवान् का पुत्र नारायण देवों का आगमन देख तथा अपने पिता को अर्हन्त पद प्राप्त हुआ है यह सुन एक विशाल सेना सहित शीघ्र ही समवशरण में आया ॥१५३॥ और देवताओं द्वारा रचे गये तीन लोक के रंग-स्थल रूप उस समवशरण में विशाल और सुखदायक छाया में बैठे हुए भगवान् की वन्दना तथा प्रदक्षिणा कर बैठ गया ॥१५४॥ भगवान् के समवशरण में चक्रायुध आदि ३६ गणधर थे। ग्यारह अङ्ग और चौदह पूर्व के पाठी श्रुतकेवली ८०० थे। अवधिज्ञानी मुनि तीन सहस्र

थे। ध्यान और अध्ययन में लगे हुए शिक्षकों की संख्या इकतालीस हजार आठ सौ थी, तथा केवलज्ञानियों की संख्या चार हजार थी ॥१५५-१५६॥ विक्रिया ऋद्धिधारी मुनि छह हजार थे तथा मनःपर्ययज्ञानियों की संख्या चार हजार थी। वादी मुनियों की संख्या दो हजार चार सौ थी। इस प्रकार सब मुनियों की संख्या बासठ हजार थी ॥१५७॥ हरिषेणा आदि साठ हजार तीन सौ आर्यिकाएँ थीं तथा सुरकीर्ति आदि दो लाख श्रावक भगवान् के चरण-कमलों की पूजा करते थे। सम्यग्दर्शन और शीलव्रतादि गुण रूपी रत्नाभरणों से भूषित अर्हद्दासी आदि चार लाख श्राविकाएँ उस समवशरण में थीं ॥१५८-१६०॥

उन जिन रूपी सूर्य ने अपनी ज्ञान रूपी किरणों से मुनियों, गणधरों, राजाओं और देवेन्द्रों आदि के सन्देह रूपी अन्धकार को ठीक वैसे ही नष्ट किया जैसे कि सहस्र किरणवाला सूर्य संसार के अन्धकार को नष्ट करता है ॥१६१॥ उन शान्ति जिनेन्द्र ने अज्ञानरूपी घाम (धूप) से पीड़ित संसारी प्राणियों को ज्ञानामृत रूपी उत्कृष्ट किरणों से ऐसे शान्त कर दिया जैसे सूर्य की किरणों से तप्त जीवों को चन्द्रमा अपनी किरणों से शान्त कर देता है ॥१६२॥ उन जिन रूपी मेघ ने दुःखरूपी सूर्य से तप्त लोक के लिए बिना किसी अपेक्षा के धर्मकथा रूपी जल वृष्टि की जैसे कि सूर्य तप्त प्राणियों को बिना किसी अपेक्षा के मेघ जल बरसाता है ॥१६३॥

भगवान् ने भव्य जीवों को पार लगाते हुए सोलह वर्ष कम पच्चीस हजार वर्ष तक मध्य के अनेक देशों में विहार किया और एक माह की आयु शेष रहने पर सम्मेदशिखर पर आ विराजमान हुए तथा वहाँ कायोत्सर्ग आसन से परम शुक्ल ध्यान में लीन हो गये ॥१६४-१६५॥

फिर ज्येष्ठ कृष्णा चतुर्दशी को रात्रि के पहिले प्रहर में शेष चार अघातिया कर्मों को नष्ट कर नव सौ केवली मुनियों के साथ मोक्ष पधारे ॥१६६॥ भगवान् के मोक्ष चले जाने पर इन्द्रों सहित देवगण वहाँ आये और उन्होंने दिव्य अग्नि से तथा सुगन्धित पदार्थों और मालाओं से भगवान् का अन्तिम संस्कार किया ॥१६७॥ भगवान् के स्वर्गावतरण से लेकर निर्वाण कल्याणक तक सभी कल्याणकों में भरणी नाम का नक्षत्र था ॥१६८॥ जिस भगवान् ने अपने पूर्व भवों में विद्याधर के राजा, बलदेव, इन्द्र तथा चक्रवर्ती पद के साथ अर्हन्त पद पाया ऐसे जगत् को शान्ति प्रदान करने वाले शान्ति जिन को प्रणाम है ॥१६९॥

जिन्होंने पूर्वभवों में सम्राट् पद, देव, नारायण, विद्याधरों का राजा, इन्द्र तथा गणधर पद पाया उन चक्रायुध की मैं भक्ति पूर्वक वन्दना करता हूँ। उन दोनों भाइयों ने देवों और मनुष्यों में जो भी श्रेष्ठ पद व स्थान थे उन सबका सुख अनुभव किया और अन्त में मोक्ष पधारे। मैं उन दोनों अर्हन्त और गणधरों को शिर से प्रणाम करता हूँ॥१७०-१७१॥

इस प्रकार भगवान् के मैंने बारह भवों का वर्णन कर उनकी स्तुति की है। वे भगवान् शान्तिनाथ मेरे लिए और संघ के लिए परम शान्ति प्रदान करें॥१७२॥

इस प्रकार श्रीदामनन्दी मुनि की कृति आर्याबद्ध शान्तिचरित में निर्वाणगमन नाम का छठवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

*****

प्रशस्ति

जो आचार्य दामनन्दी कुरुवंश के तिलक भगवान् शान्तिनाथ के सम्बन्ध में सदा ही एकाग्रचित्त हैं और जिन्होंने सर्व संघ के कल्याण के लिए शान्तिनाथ भगवान् के स्वर्ग और भूतल में प्रचलित विशेष अर्थाख्यान को लिये हुए शाखाओं व उपशाखाओं से युक्त विशाल कथा को आर्या छन्दों में नम्र भाव से कहा है। उन दामनन्दी आचार्य को भगवान् शान्ति जिन अपने चरणों के समीप मोक्ष में स्थान देवें॥१॥ इस शान्तिचरित के इन छह सर्गों में ५११ आर्या छन्द हैं॥२॥

इस प्रसङ्ग में यह कह देना चाहते हैं कि निर्ग्रन्थ साधुओं में ऋद्धि प्राप्त मुनि ऋषि कहलाते हैं, कषाय नष्ट करने वाले मुनि यति कहे जाते हैं॥३॥

*****

नेमिनाथ चरित्र

प्रथम सर्ग

मैं यदुवंश रूपी विशाल चक्के (चक्र) की धुरी के समान जिनवर अरिष्टनेमि को नमस्कार कर, पूर्वभवों की नामावली के साथ उनके चरित्र का वर्णन करता हूँ। श्रुतकेवली सुधर्म स्वामी ने जम्बूस्वामी को यह चरित्र सुनाया था। पुराणों में कहे गये इस उत्तम और निर्दोष इतिहास (चरित्र) को आप सब सुनें ॥१-५॥

श्रेष्ठ जम्बूवृक्ष से उपलक्षित इस जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में कुशाग्रपुर नामका एक मनोहर देश था जहाँ शौरीपुर नाम का नगर था। वहाँ अत्यन्त बलवान् तथा अपने शत्रुओं के मद को नष्ट करने वाला एक बड़ा राजा था। वह 'शूर' नाम से विख्यात था। उसकी रानी का नाम धारिणी था ॥३-४॥

उससे दो पुत्र हुए। ज्येष्ठ पुत्र अन्धकवृष्णि अति बुद्धिमान् था। दूसरे का नाम नरपतिवृष्णि था। इस भूतल पर वे दोनों ऐसे मालूम पड़ते थे, मानों सूर्य और चन्द्रमा ही हों। राजा शूर ने अपने ज्येष्ठ पुत्र को अधिराज पद तथा छोटे लड़के को युवराज पद देकर सुप्रतिष्ठित मुनिराज के चरणों में जिन दीक्षा ले ली। रानी धारिणी के वे दोनों पुत्र संगठित हो, अविरोध भाव से अपने राज्य की धुरी को ढो रहे थे। जैसे कि बड़ी धुरा को दो धुर्य अर्थात् बैल परस्पर ईर्ष्याभाव से रहित होकर ढोते हैं॥५-७॥

अन्धकवृष्णि के सुभद्रा नाम की एक प्रिय रानी थी। उससे कुन्ती और माद्री नाम की दो पुत्रियाँ उत्पन्न हुई जो कि स्त्रियों के श्रेष्ठ गुणों की मंजूषा अर्थात् पिटारी थीं। तथा उनके दश सुन्दर पुत्र हुए जिनका नाम समुद्रविजय, अक्षोभ्य, स्तिमितसागर, हिमवान्, विजय, अचल, धारण, पूरण, अभिनन्दन और वसुदेव था। वे सब अपने विपुल पराक्रम के लिए विख्यात तथा यथार्थ नाम वाले थे ॥८-१०॥ नरपतिवृष्णि के पद्मावती नामकी एक अति रूपवती रानी थी। उससे राजा को उग्रसेन, महासेन और सुरसेन नामके तीन पुत्र हुए ॥११॥

एक समय उस नगर के गन्धमादन नामके उद्यान में सुप्रतिष्ठित नाम के मुनिराज आये और वहाँ प्रतिमायोग धारण कर बैठे। उनको देखकर सुदर्शन नाम

का यक्ष अत्यन्त क्रुद्ध हुआ और उनके ऊपर अनेक प्रकार के घोर उपसर्ग किये। पर मुनिराज ध्यान से न डिगे और उन्होंने अन्त में केवलज्ञान प्राप्त किया॥१२-१३॥ उनकी पूजा के लिए, कल्पवृक्ष की माला से सुशोभित मुकुट पहने हुए तथा अनेक देव और देवियों से घिरे हुए सभी इन्द्र वहाँ आये। उनको आया हुआ देखकर राजा अन्धकवृष्णि भी स्वयं अपनी रानी और पुत्रों के साथ प्रसन्न होता हुआ नगर से निकला और देवों के बीच में बैठे हुए उन मुनिराज की वन्दना कर इन्द्रों के साथ बैठ गया। उन विगतसंशय मुनिराज से उसने प्रश्न पूछा कि हे भगवान्! हमारा वंश हरिवंश नाम से क्यों कहलाता है॥१४-१६॥

तब मुनिराज ने उससे कहा कि यहाँ वत्स देश की राजधानी कौशाम्बी में विजय नाम से विख्यात एक राजा था उसके एक रानी थी जिसका नाम तारा था॥१७॥ उसी नगर में सुमुख नाम का एक सेठ रहता था, वह अपने आश्रित वीरक सेठ की पत्नी वनमाला को देखकर मोहित हो गया। उसने कुछ उपायों से वनमाला को वश में कर लिया॥१८॥ इधर वनमाला के पति वीरक ने अपनी पत्नी के वियोग-दुख से तथा घोर अपमान से दुखी हो, भगवान् शीतलनाथ के तीर्थकाल में विद्यमान प्रोष्ठिलाचार्य के समीप मुनिव्रत ले लिया और बाह्यसिद्धि वाले, तथा काय को क्लेश (कष्ट) देने वाले तप को करने लगा, जिससे वह सौधर्म स्वर्ग में तीन पल्य की आयु वाला देव हुआ॥१९-२०॥

किसी समय सेठ सुमुख और वनमाला ने वरधर्म नाम के मुनिराज की अच्छी तरह पूजा कर पापों को नाश करने वाला उत्तम-आहारदान दिया। एक दिन की बात है कि वे दोनों शयनागार में सुखपूर्वक सोये हुए थे कि उनके ऊपर आकाश से बिजली गिरी और दोनों मरकर हरिवर्ष देश में पति-पत्नी के रूप में हुए॥२१-२२॥

किसी समय वीरक के जीव देव ने आकाश-मार्ग से जाते हुए उन दोनों को देखा और पूर्वभव के स्मरण से उन दोनों को बलपूर्वक उठा ले गया॥२३॥

इधर भारतवर्ष में चम्पा नगरी के राजा चन्द्रकीर्ति का स्वर्गवास हो गया था, इसलिए वह नगरी राजा रहित थी। उस देव ने सुमुख के जीव को वहाँ मार्कण्ड नाम का राजा बना दिया तथा अपने स्थान पर चला गया। उस राजा ने पृथ्वी पर बहुत समय तक शासन किया और मांस-सेवन के कारण मरकर नरक गया। उसके सिंह के समान पराक्रमी हरि नामका पुत्र हुआ॥२४-२५॥ उसके बाद

उसका पुत्र महागिरि तथा महागिरि से हिमगिरि तथा क्रम से नरपति, वसुगिरि आदि राजा उस कुल में हुए॥२६॥ इस तरह बहुत काल बीत जाने के बाद इसी कुल में तुम्हारा पिता राजा हुआ, जिसने कि शौरीपुर नाम का नगर बसाया और वहाँ बारह वर्ष तक राज्य किया॥२७॥ क्योंकि तुम्हारा पूर्वज पहले हरिवर्ष देश से आया था, इसलिए तुम्हारा वंश इस लोक में हरिवंश नाम से विख्यात हुआ॥२८॥

ऐसा कहने पर राजा ने मुनिराज से अपने पूर्व-भव पूछे। तब उन केवलज्ञानी मुनिराज ने इस प्रकार कहा:-भगवान् ऋषभदेव के तीर्थकाल में एक समय अयोध्या नगरी में अनन्तवीर्य नामका राजा राज्य करता था। वहीं बत्तीस करोड़ दीनार का स्वामी सुरेन्द्रदत्त नाम का एक जैन सेठ भी रहता था। उस सेठ का मित्र रुद्रदत्त नामका एक ब्राह्मण था॥२९-३०॥ वह सेठ तिथि पर्व-महोत्सवों के दिनों में जिन-पूजा के निमित्त बारह वर्ष के लिए उस ब्राह्मण को एक, दो और आठ के हिसाब से दीनार देकर व्यापार करने विदेश चला गया पर उस ब्राह्मण ने वह सब धन वेश्या व्यसन तथा जुए में नष्ट कर दिया और वहीं चोरी करने लगा॥३१-३२॥ किसी समय नगर के रक्षक सिपाहियों ने उसे पकड़ लिया पर सेठ के ख्याल से उसे छोड़ दिया। उसके बाद वह उल्कामुख वन में जाकर चोरी करता हुआ, भीलों के साथ घूमने लगा। ऐसा कर्म करते हुए श्रेणिक नामक सेनापति-द्वारा मारा गया तथा रौरव नामके नरक में जन्म लिया। देवद्रव्य को नष्ट करने के कारण उसने नरक में बहुत दु:ख भोगे। उस नरक में तैंतीस सागर तक पापफल भोगकर वहाँ से निकला और बहुत काल तक पशुगति तथा नरकों में चक्कर लगाता फिरा॥३३-३५॥

इसके बाद पापकर्मों के उपशम होने से वह धनञ्जय राजा के हस्तिनापुर नगर में कापिष्ठलायन ब्राह्मण तथा अनुन्दरी ब्राह्मणी का पुत्र हुआ॥३६॥ उसका नाम गौतम था और वह निर्धन था। उसके माता-पिता मर गये थे। एक समय भिक्षा के लिए घूमते हुए उसने वैश्रवण सेठ के घर में भोजन करते हुए समुद्रदत्त नाम के मुनि को देखा। वह उनके पीछे-पीछे उनके ठहरने के स्थान को गया और कहने लगा कि मुझे किसी तरह भिक्षा नहीं मिलती है इसलिए आप मुझे अपने वर्ग में मिला लीजिए॥३७-३८॥ उन मुनिराज ने उसे भव्य जीव जानकर दीक्षित कर लिया। उसने भी एक हजार वर्ष तक तपस्याकर विघ्नकारी कर्मों को नष्ट किया। जिससे उस तपस्वी को अक्षीण महानस, देवऋद्धि, बीजबुद्धि तथा पदानुसारिणी ये चार लब्धियां (ऋद्धियाँ) प्राप्त हुई। अब वह गौतम ऋद्धि सम्पन्न हो गया। गुरु ने

भी उसे आचार्य पद प्रदान किया और जिन कल्प को ग्रहण कर तथा चार आराधनाओं का आराधन कर सुविशाल नाम के विमान में अहमिन्द्र हुए॥३९-४१॥

उन गौतम ने भी पचास हजार वर्ष तक उत्तम तप कर के उसी सुविशाल विमान में अहमिन्द्र पद पाया। मानो वे अपने गुरु का अनुगमन सा कर रहे हों। वहाँ छठवें ग्रैवेयक में २८ (अट्ठाईस) सागर तक अनुपम अहमिन्द्र के सुखों को सतत् भोगकर वहाँ से च्युत हो गौतम का जीव तुम अन्धकवृष्णि हुए हो और तुम्हारा गुरु मैं भी वहाँ से च्युत हो केवली हुआ हूँ॥४२-४४॥

फिर राजा ने अपनी दोनों पुत्रियों और पुत्रों के पूर्वजन्म कहने के लिए मुनिराज से निवेदन किया। तब मुनिराज ने इस प्रकार कहा- इस भरत क्षेत्र में मलय देश के भद्रिलनगर में मेघरथ नाम का राजा था। उसकी रानी सुभद्रा तथा पुत्र का नाम दृढ़रथ था। वहीं धनदत्त नाम का सेठ रहता था उसकी सेठानी का नन्दयशा था। उन दोनों के सुदर्शना और सुज्येष्ठा नाम की दो पुत्रियाँ थीं तथा धनपाल, जिनपाल, देवपाल, अर्हद्दास, जिनदास, अर्हदत्त, जिनदत्त, प्रियमित्र और धर्मरुचि नाम के नव पुत्र थे॥४५-४७॥

मेघरथ राजा ने सुदर्शन उद्यान में आचार्य सुमन्दिर से धर्मोपदेश सुनकर अपने पुत्र को राज्य देकर जिन दीक्षा ले ली॥४९॥ राजा के साथ सेठ ने भी अपने पुत्रों के साथ मुनि-दीक्षा ले ली तथा रानी सुभद्रा भी सेठ की पुत्रियों के साथ सुदर्शना आर्यिका के पास आर्यिका हो गई॥५०॥ भ्रमण करते हुए धनदत्त सेठ, सुमन्दिर गुरु और राजा को बनारस के गोषण्डवन में चार आराधनाओं का आराधन करते हुए अभीष्ट केवलज्ञान उत्पन्न हो गया तथा वे तीनों धीर वीर विहार करने लगे। अन्त में राजगृह नगर के सिद्ध पर्वत पर से क्रमशः सात, पांच और बारह वर्ष के अन्तराल से मोक्ष प्राप्त किया। इधर सेठ की पत्नी नन्दयशा अपने गर्भ के कारण दीक्षा न ले सकी थी। उसने अपनी पुत्रियों के उपदेश से अपने उदार पुत्र धनमित्र को छोड़कर, दीक्षा ले ली और (भ्रमण करती हुई) राजगृह आई॥५१-५३॥ वहाँ सिद्ध पर्वत पर प्रायोपगमन संन्यास धारण कर बैठे हुए अपने पुत्रों की वन्दना कर उनके स्नेह संबंध से अगले जन्म में भी उनकी माता बनने की इच्छा की। तथा सुदर्शना और सुज्येष्ठा उन दोनों बहिनों ने तप से कृश शरीर अपने भाइयों को देखकर अगले भव में उनकी सहोदरा (बहिनें) होने का निदान किया॥५४-५५॥

उन सबने आराधनाओं की आराधना कर देह त्याग कर अच्युत स्वर्ग में २२ सागर तक देवसुलभ सुख का भोग किया और वहाँ से च्युत होकर हे राजन्, वे सब तुम्हारी रानी, दोनों पुत्रियाँ और नव पुत्रों के रूप में हुए हैं॥५६॥ (वसुदेव का पूर्वभव इस प्रकार है) पलाश ग्राम में एक ब्राह्मण (का लड़का) था। उसकी माँ (बचपन में) मर गई थी और बाप भी (गर्भावस्था काल में) मर गया था। (अपने शेष बान्धवों से तिरस्कृत हो) उसने दमवर मुनि के चरणों में दीक्षा ले ली। और वैय्यावृत्ति तपकर आयु समाप्त होने पर महाशुक्र स्वर्ग में देव हुआ तथा वहाँ सोलह सागर की आयु पाई। पीछे च्युत होकर तुम्हारा छोटा पुत्र वसुदेव हुआ है॥५७-५८॥

इस प्रकार केवली-द्वारा कहे गये उपदेशों को सुनकर राजा अन्धकवृष्णि ने अपने ज्येष्ठ पुत्र समुद्र विजय को राज्य देकर दीक्षा ले ली और तपस्या कर मोक्ष पद पाया॥५९॥

इस प्रकार पुराणसारसंग्रह के अरिष्टनेमिचरित्र में हरिवंशोत्पत्ति नाम का प्रथम सर्ग समाप्त हुआ।

*****

द्वितीय सर्ग

महाराज समुद्रविजय अपनी रानी शिवादेवी को नाना प्रकार के वांच्छित भोगों से प्रसन्न करते हुए इस पृथ्वी का राजनीति पूर्वक अच्छी तरह शासन करने लगे ॥१॥ उनका छोटा भाई वसुदेव नाना प्रकार के इन्द्रादि वेषों को धारण कर नगर की स्त्रियों को मोहित करता हुआ पूर्व आदि सभी दिशाओं में घूमता-फिरता था। यह बात पुरवासियों ने राजा से कही तो राजा ने उन्हें छह महीने तक बाहर घूमने से मना कर दिया। एक समय वल्लभ नाम के नौकर ने यह बात वसुदेव से व्यंग में कह दी। तब वसुदेव मंत्र साधने के बहाने से निकल भागे। और इस तरह वह वीर अनेकों राजाओं और विद्याधरों की सुन्दर-से-सुन्दर कन्याओं के साथ विवाह करता हुआ खूब भ्रमण करने लगा ॥२-४॥ इसी काल में स्वयंवर विधि से उसने रोहिणी से विवाह किया, तथा उसके साथ सुख भोग करने लगा। उससे बलदेव नाम का पुत्र हुआ। इसके बाद वसुदेव शौरीपुर में आकर शस्त्र विद्या सिखाने लगा ॥५॥

एक समय वह अपने शिष्य कंस के साथ राजगृह में आया हुआ था। कि वहाँ उसने नगर के मध्य में मगधराज (जरासन्ध) की एक बड़ी घोषणा इस प्रकार सुनी कि, जो मनुष्य सिंहपुर में जाकर सिंहरथ को जिन्दा ही पकड़ लेगा उसे मैं अपनी पुत्री के साथ इच्छित देश दूँगा ॥६-७॥ उस घोषणा को सुनकर अपने गुरु की आज्ञा से कंस ने झंडा पकड़ लिया और वसुदेव के द्वारा (विद्या से) निर्मित काष्ठ के बने सिंहों के रथ पर चढ़कर युद्ध करने गया। वहाँ उसने अपने गुरु के द्वारा बनाये बाणों से सिंहरथ के सिंहों की सांकलें (जंजीरे) काट दीं और कूद कर उसे पकड़ लिया ॥८-९॥ तब इन्द्र के समान, वसुदेव उस सिंह के समान सिंहरथ को पिंजरे में बाँधकर और असहाय बनाकर (मगध) राजा के पास ले आया ॥१०॥

इस प्रकार प्रसन्न होकर जरासन्ध ने उसे अपनी पुत्री जीवद्यशा से विवाह करने को कहा। तब वसुदेव ने कहा कि तुम्हारे शत्रु को मैंने नहीं पकड़ा, मेरे इस शिष्य ने पकड़ा है ॥११॥ यह सुन कर राजा ने कंस से उसकी जाति पूछी तो कंस ने कहा कि-कौशाम्बी में शराब बनाने वाली (शीधुकरी) मेरी माता रञ्जोदरी रहती है ॥१२॥ जरासन्ध ने उसकी आकृति से यह जान लिया कि यह शराब बनाने वाली का पुत्र नहीं हो सकता है। इसलिए उसने रञ्जोदरी को बुलाया। रञ्जोदरी ने

आकर राजा से कहा कि-मैंने यमुना के प्रवाह में बहते हुए इसे पाया था और गुप्त रूप से इसका लालन-पालन किया है पीछे इससे रुष्ट हो मैंने इसे निकाल दिया। यह भी वहाँ से चलकर शस्त्र-विद्या सीखने लगा। इसलिए (मैं इसकी माता नहीं हूँ) यह पिटारी इसकी माँ है। फिर उसने उस पेटी में लगी राजा के नाम की मुहर को राजा के लिए दिखाया। राजा ने इससे उसे उग्रसेन का पुत्र जानकर अपनी कन्या दे दी ॥१३-१५॥

कंस यह मालूम कर कि मुझे उत्पन्न होते ही छोड़ा गया है, अपने पिता उग्रसेन पर अत्यन्त क्रुद्ध हुआ और कलिन्द सेना की पुत्री जीवद्यशा के साथ मथुरा गया ॥१६॥ उसने पिता को पकड़ कर नगर-द्वार के फाटक पर कैद कर दिया तथा अपने गुरु को गुरु दक्षिणा स्वरूप अपनी (चचेरी) बहिन देवकी विवाह दी ॥१७॥

एक समय मथुरा में भिक्षा के लिए अति मुक्तक नाम के एक मुनि आये। उन्हें नमस्कार कर कंस की रानी ने काम-भाव से आगे खड़े होकर यह कहा कि देखो यह तुम्हारी बहिन देवकी का "आनन्द वस्त्र" है। इस प्रकार मजाक में उसने मुनिराज को वस्त्र दिखलाया ॥१८-१९॥ यह देख मुनि ने कहा कि उसी देवकी के गर्भ से उत्पन्न बालक शीघ्र ही तुम्हारे पति और पिता का मारने वाला होगा। यह कह कर वे मुनि क्रुद्ध हो वहाँ से चले गये ॥२०॥ यह बात कंस ने सुनी और उपाय सोच वसुदेव से प्रणाम कर यह वर माँगने लगा कि देवकी की सन्तान मेरे ही घर हो। उदारचित उस वसुदेव ने भी वर दे दिया पर पीछे सब वार्ता ज्ञात होने पर वह आम्रवन में बैठे हुए अतिमुक्तक मुनि के समीप गया और उन्हें प्रणाम कर पूछ ने लगा कि-हे भगवन् ! यह कंस किस कारण से अपने पिता के लिए शत्रु के रूप में उत्पन्न हुआ है। तब अतिमुक्तक मुनि ने वसुदेव के विशेष आग्रह पर कंस के पूर्वभव इस प्रकार कहे ॥२१-२३॥

पूर्वकाल में गंगा और नन्दावती इन दो महानदियों के संगम पर जटाल कौशिक वन में वशिष्ठ नाम का एक बड़ा तपस्वी रहता था उसने पञ्चाग्नि तप करते समय अग्नि में लकड़ी के साथ जलते हुए एक मरी सर्पिणी को देखा। इससे उस तपस्वी को वैराग्य हो गया और वीरभद्र मुनिराज का शिष्य हो गया ॥२४-२५॥ एक समय पर्वत के ऊपर आतापन योग धारण कर वे मुनिराज खड़े थे कि उनके तप बल से कम्पित हो सात वन देवता वहाँ आये और मुनिराज

से बोले कि कहिये क्या करें? उस समय मुनि ने उन्हें यह कहकर लौटा दिया कि मुझ परिग्रह हीन को भला कौन-सा काम है। किसी समय राजा उग्रसेन ने उन मुनिराज को अपना अतिथि बनाना चाहा इसलिए उसने नगर में प्रविष्ट उन मुनि के लिए "दूसरे भिक्षा न देवें" इस बात की घोषणा करा दी। पर वह राजा, (तीनों बार ही) कभी दूत के कारण, कभी अग्नि के कारण, कभी हाथी के उपद्रव के कारण मुनिराज को भिक्षा देना भूल गया॥२६-२८॥

इस प्रकार त्रैमासिक पारणाओं में अन्न न पाकर वे मुनिराज थककर नगर के द्वार पर बैठे थे कि उन्हें देखकर एक नागरिक ने कहा-बड़े दुख की बात है कि यह पापी राजा न तो स्वयं भिक्षा देता है न दूसरे दाताओं को देने देता है। यह सुनकर मुनि क्रुद्ध हो गये और उनने पूर्व वन-देवताओं को बुलाया और उनसे कहा कि अगले जन्म में आप लोगों का काम है। देवताओं ने भी कहा कि हम लोग आपका काम करेंगे। यह कह वे सब लौट गये। मुनि भी निदान सहित मरा तथा उग्रसेन की रानी पद्मावती के गर्भ में आया और रानी को दोहला पैदा किया। गर्भ दोष के कारण रानी को राजा के पेट की त्रिवलियों का मांस खाने की इच्छा हुई। तब मंत्रियों ने किसी उपाय से रानी का दोहला पूर्ण किया। इधर रानी ने पुत्र उत्पन्न होते ही काँसे की पेटी में रखकर यमुना नदी में बहा दिया॥२९-३३॥ तब कौशाम्बी में किसी मदिरा बनाने वाली ने इसे उठाकर पाला-पोसा तथा इसका नाम कंस रखा। फिर उसने इसे निकाल दिया। कंस भी शौरीनगर में आकर तुमसे शस्त्र विद्या सीखकर प्रवीण हो गया। और हे वसुदेव! तुम्हारी कृपा से उसने सिंहरथ को जीत लिया॥३४-३५॥ तथा जरासन्ध की पुत्री के साथ विवाह कर अपने पूर्वभव के वैर के कारण ही उस दुष्ट ने मथुरा में आकर अपने पिता उग्रसेन को कैद किया है॥३६॥

ऐसा कहने पर उन अवधि ज्ञानी मुनिराज से वसुदेव ने फिर पूछा कि भगवन्! पूर्वभवों में ऐसा क्या कारण हुआ कि मेरा पुत्र कंस को मारने वाला होगा? यह पूछने पर मुनि ने कहा कि देवकी का सातवाँ पुत्र महिमा से कंस आदि शत्रुओं को मारकर सम्पूर्ण पृथ्वी का भोग करेगा। दूसरे भी जो छह पुत्र हैं, वे सब चरम देहधारी हैं, उन्हें किसी प्रकार की विपत्ति नहीं होगी। तुम भी सोच न करो, उन महात्माओं के पूर्व जन्मों को सुनो, इतना कहकर मुनिराज इस प्रकार कहने लगे॥३७-३९॥

इसी शूरसेन देश में शूरसेन राजा से भोग्य इसी मथुरा नगरी में सूर्य के समान प्रतापी भानु नाम का एक विख्यात सेठ था। वह ११ करोड़ धन का स्वामी था। उसकी पत्नी यमुनादत्ता थी। उसके सर्व गुण सम्पन्न सात पुत्र हुए। उनके नाम क्रम से सुभानु, भानुयश, भानुषेण, शूर, सूरदेव, सूरदत्त और शूरसेन थे ॥४०-४१॥ एक समय उस सेठ ने अभयनन्दि मुनि से धर्मोपदेश सुन दीक्षा ले ली तथा सेठानी ने भी जिनदत्ता आर्यिका के समीप आर्यिका के व्रत धारण कर लिये ॥४३॥ सेठ के पुत्र वे अपने पिता के धन को वेश्या, शराब, जुआ आदि में नष्ट कर निर्धन हो गये, तथा चोरी करने के लिए उज्जयिनी नगर में घुसे। वहाँ कुल परम्परा चलाने के लिए, महाकाल के मन्दिर में अपने छोटे भाई को वे लोग छोड़ गये थे। उस नगरी में राजा वृषभध्वज तथा रानी कमला के साथ राज्य करते थे। उनके दृढ़प्रहारी नाम का एक अच्छा पहलवान था जिसके वप्रश्री नामकी पत्नी थी। उनके वज्रमुष्टि नामका पुत्र था। वह नगर सेठ विमलचन्द्र और सेठानी विमला की पुत्री मंगी को देखते ही कामज्वर से पीड़ित हो गया। तब पहलवान ने राजा से कहकर उन दोनों का विवाह करवा दिया ॥४४-४७॥

एक समय बसन्त के महीने में वज्रमुष्टि, राजा के साथ क्रीड़ा करने प्रमदवन गया था। उसकी माता ने उसकी पत्नी को (द्वेष बुद्धि से घट में माला लाने के बहाने से) घट में रखे हुए सर्प से डँसवा लिया तथा नौकरों के द्वारा उसे शमशान भिजवा दिया। जब उसका पति वज्रमुष्टि लौटकर आया तो अपनी पत्नी को प्रेतावास में ले गया, उसको ढूँढता हुआ महाकाल के मन्दिर में आया ॥४७-४९॥ वहाँ उसने वरधर्म नाम के मुनि को देख उन्हें नमस्कार किया और उनसे प्रार्थना की कि हे मुनिराज! यदि इसका (पत्नी का) सर्प-दंश हट जाय तो मैं आपकी हजार कमलों से पूजा करूँगा। तब मुनि के माहात्म्य से उस स्त्री का विष हट गया। वह (वज्रमुष्टि) अपनी पत्नी को पा अति सन्तुष्ट हुआ और उसे 'यहीं ठहरो' कहकर कमल लेने के लिए सुदर्शन सरोवर गया ॥५०-५१॥

वहाँ बैठे हुए शूरसेन ने उसका अपनी प्रिया के प्रति इतना अनुराग देख, उस स्त्री मंगी के मन की परीक्षा करने के लिए अपना रूप दिखाया। तब वह स्त्री भी उस पर आसक्त हो गई और अपने पति से छुटकारा पाने के लिए मुनि की पूजा करते हुए अपने पति को तलवार मारने के लिए उद्यत हुई। पर उस मतिहीन स्त्री को शूरसेन ने रोक लिया ॥५१-५३॥ वह वज्रमुष्टि भी मुनि की वन्दना कर अपनी

पत्नी के साथ चला गया। उसी समय वे सब चोर वहाँ आये और चोरी से प्राप्त धन को सब के लिए बराबर हिस्से में बाँट अपने पास बैठे हुए छोटे भाई से बोले कि तुम भी यह अपना हिस्सा ग्रहण करो, पर उसने संसार से विरक्त हो दीक्षा लेने की इच्छा से उस हिस्से को लेना अस्वीकार कर दिया तथा इस प्रकार बोला कि हे भाइयों, स्त्री के निमित्त से ही पुरुष भयंकर कार्यों में प्रवृत्त होता है; और ये सब स्त्रियाँ वज्रमुष्टि की स्त्री के समान ही तो हैं॥५४-५६॥

यह वृतान्त सुनकर सब विरक्त हो गये और वरधर्म मुनि के चरणों में उन धीर वीरों ने दीक्षा ले ली। केवल बड़ा भाई ही, पत्नियों को धन देने के लिए मथुरा गया पर उन सबने भी अपने पतियों को दीक्षित हुआ सुनकर दीक्षा ले ली। उस बड़े भाई सुभानु ने भी दीक्षा ले ली और गणपति के साथ अपने भाइयों सहित विहार करते हुए वह उज्जयिनी नगरी आया। वहाँ वज्रमुष्टि ने उससे पूछा कि आप सब लोग तो सुन्दर रूपवाले, नव जवान, तेजस्वी हैं। आप लोगों के वैराग्य का क्या कारण हैं, जो सबने यह दीक्षा ले ली है। तब उसने आत्मचरित सुनाया। वज्रमुष्टि ने अपने ही चरित्र को उन सबके वैराग्य का कारण जान, स्त्रियों के खोटे स्वभाव की निन्दा करता हुआ स्वयं भी दीक्षित हो गया। मंगी ने भी वैसे ही जिनदत्ता आर्यिका से सब वृतान्त पूछकर और अपने ही चरित्र को वैराग्य का कारण जान विरक्त होकर दीक्षा ले ली॥५७-६२॥ उन सब भाइयों ने घोर तपस्या की और आराधनाओं का अच्छी तरह आराधन कर सौधर्म स्वर्ग में त्रायस्त्रिंशत् जाति के देव हुए जिनकी वहाँ दो सागर की आयु थी॥६३॥ फिर वे सब वहाँ से अवतरित हुए। और धातकीखण्ड द्वीप के पूर्व भाग में भारतवर्ष के विजयार्ध पर्वत की दक्षिण श्रेणी में नित्यालोक नगर के राजा चित्रचूल और रानी मनोहरी से वह बड़े भाई सुभानु का जीव तो चित्रांगद नाम का पुत्र हुआ तथा भानुकीर्ति आदि दूसरे भाई जुड़वा के रूप में हुए उनका नाम गरुडध्वज, गरुड़वाहन, मणिचूल, हिमचूल, गगनचर और आनन्दचर था। वे सब अतिरूपवान् बलवान् एवं विद्यापारगामी थे॥६४-६६॥

वहीं मेघपुरी नाम की नगरी में धनञ्जय नामका राजा था। उसके सर्वश्री नाम की रानी तथा धनश्री नाम की पुत्री थी। किसी समय उसने मन्त्रियों से पूछा कि पुत्री का पति किसे बनाना चाहिये। तब सागर नाम के एक मंत्री ने राजा से कहा कि हे राजन्! यह राज समाज कन्या प्रदान में दो ही हेतु देखता है एक तो यह है कि कार्य कन्या के लिए शुभानुबन्धी हो तथा दाता का निकटवर्ती हो। दूसरा यह है कि पुत्री

के सुख की परवाह न कर केवल अपने स्वार्थ के लिए बलवान राजा को कन्या दी जाती है। इस समय हमें ऐसा कोई विशेष काम भी नहीं है इसलिए कन्या के कल्याण की सोचकर किसी समय किसी भाग्यशाली को खोजकर ही हम उसे कन्या प्रदान करेंगे। सागर मंत्री की यह बात सुनकर सुसागर नाम का मंत्री बोला कि हे राजन् ! सुप्रतिष्ठ नगर में राजा हरिषेण और रानी रतिदेवी रहते हैं। उनके हरिवाहन नाम का पुत्र है वह रानी सर्वश्री का भ्रातृज है और इसके योग्य है॥६७-७१॥ तब कार्य-सिद्ध नामक मंत्री ने कहा कि अयोध्या में पुष्पदन्त नामका चक्रवर्ती रहता है। उसकी प्रीतिङ्करी नामकी प्रिय रानी है। सौभाग्य से उनके, मूर्तिमान् कामदेव के समान, सुदत्त नाम का पुत्र है। वह सभी राजाओं में प्रभावशाली एवं बहुमान्य है॥७३-७४॥ तब उसकी बात सुनकर और खूब विचारकर ईहानन्द नामक मंत्री ने कहा कि मैं तो स्वयंवर को ही ठीक समझता हूँ इसमें किसी का विरोध नहीं है॥७५॥

तब राजा ने सब की बात मानकर स्वयंवर के लिए सभी राजाओं को बुलाया। सुदत्त आदि राजा लोग आकर सजे हुए आसनों पर बैठे॥७६॥ तब उस समय कन्या ने सुबुद्धि मंत्री के द्वारा बतलाये गये सभी राजाओं को जानकर तथा उन सबको पार कर हरिवाहन राजकुमार को वरण कर लिया॥७७॥ यह देख वे सब राजकुमार अत्यन्त क्षुब्ध हो गये और कहने लगे कि इस दुष्ट ने अपने विवाह की शोभा के लिए ही हम लोगों को बुलाया था और "यह कन्या मेरी है, मेरी है" कहते हुए आपस में लड़ने लगे॥७८॥

इस प्रकार क्षत्रियों का वध देखकर इन्द्रियों के विषयों की निन्दा करते हुए चित्रचूल विद्याधर के सभी पुत्र भूतानन्द तीर्थंकर के पास प्रव्रजित हो गये। तथा सातों ही भाई आराधनाओं का सम्यक् आराधन कर माहेन्द्र स्वर्ग में सामानिक देव हुए जहाँ उनकी सात सागर की आयु थी। वहाँ से अवतरित हो ज्येष्ठ भाई तो भारतवर्ष के हस्तिनापुर में श्वेतवाहन सेठ और बन्धुमती सेठानी से शंख नाम का पुत्र हुआ और शेष छह भाई उसी नगर के राजा गंगदेव और रानी नन्दयशोदा को प्रसन्न करने वाले जुड़वे पुत्र हुए। उनका नाम क्रम से गंग, गंगदत्त, गंगरक्षित, नन्द, सुनन्द और नन्दिषेण था। वे सब माता-पिता को प्यारे सुन्दर रूप वाले तथा गुणों में एक दूसरे से बढ़े-चढ़े थे॥७९-८३॥ सातवें पुत्र को रानी ने पैदा होते ही इस विचार से छोड़ दिया कि इसके गर्भ में आते ही राजा मेरे प्रति द्वेष भाव रखने लगा था। तब उसे रेवती नाम की धाय ने लेकर पाला-पोसा॥८४॥

एक समय शंख (सेठ का पुत्र) उस त्यक्त बालक का हाथ पकड़ मनोहर उद्यान में ले गया और वहाँ भोजन करते हुए राजकुमारों को देखकर इस प्रकार बोला कि भाइयों के सामूहिक भोजन में बैठे हुए आप लोग इस निर्नामक को क्यों नहीं बुलाते हो, क्या यह आप सबका भाई नहीं है॥८५-८६॥ उसके ऐसे वचनों से उन लोगों ने उसे बुला लिया और वह भी उनके साथ भोजन करने लगा। उस समय राजा के साथ रानी ने वहाँ आकर उस निर्नामक को लात मारी॥८७॥ तब शंख के मन में यह हुआ कि बड़े खेद की बात है जो कि इसने मेरे कारण दुख पाया और उसे लेकर उन सब भाइयों के साथ वहाँ से चला गया। वहाँ द्रुमषेण मुनि की वन्दना कर उनसे निर्नामक के पूर्व भवों को पूछा तब उन अवधिज्ञानी मुनि ने भी इस प्रकार बतलाया॥८८-८९॥

सौराष्ट्र देश के गिरि नगर का राजा चित्ररथ और उसकी रानी कनकमालिनी थी। वह राजा मांस का बड़ा प्रेमी था अमृत रसायन नाम का उसका रसोइया दश गाँव का स्वामी था। एक समय सुधर्म मुनि से मांस की उत्पति सुन कर वह राजा विरक्त हो गया और अपने पुत्र मेघरथ को राज्य देकर तीन सौ राजाओं के साथ दीक्षित हो गया। तब नवीन राजा ने जो कि जैनी हो गया था उस दुष्ट रसोइये की आजीविका छीन ली और केवल एकग्राम उसके पास रहने दिया। तब वह रसोइया बहुत क्रुद्ध हुआ (और विचार ने लगा कि) 'यदि इस मुनि ने राजा को श्रावक के व्रत न दिये होते तो यह मेरी आजीविका को कभी न छीनता'॥९०-९३॥ ऐसा सोचकर उसने एक समय उन मुनिराज को कड़वी लौकी के साथ कदन्न खिला दिया। इससे गिरनार पर्वत पर मर (समाधिमरण) कर वे मुनिराज अपराजित अहमिन्द्र विमान में ३२ सागर की आयु वाले देव हुए॥९४॥

वह रसोइया भी पाप के कारण भयंकर बालुका प्रभा नाम के नरक में जाकर तीन सागर तक दुख भोगता रहा। फिर नरक से निकल कर संसार रूपी वन में घूमता फिरा। तथा पापों के उपशम होने से वह मलय देश के पलास नामक गाँव में, यक्षदत्त गृहस्थ की पत्नी यक्षिला से, यक्ष का छोटा भाई, यक्षिल नामका पुत्र हुआ। एक समय वह गाड़ी से घूम रहा था। अपने भाई के द्वारा मना करने पर भी उसने निर्दयता-पूर्वक अंधसर्प के ऊपर से गाड़ी चला दी जिससे उसका शरीर कुचल गया और वह बड़े तीव्र दुःख से मरकर अकाम निर्जरा के कारण श्वेताम्बिका नगरी में वासव राजा और वसुन्धरा रानी से नन्दयशा नामकी पुत्री हुआ। वह

यक्षिल भी कड़वी लौकी खिलाने के कारण यह निर्नामक हुआ है और पूर्व जन्म की निर्दयता के कारण ही इसकी माँ इससे द्वेष करती है॥९५-१००॥

यह सुन वह राजा विरक्त हो गया और अपने पुत्र देवनन्द को राज्य दे, दो सौ राजाओं के साथ तथा सेठ के पुत्र शंख के साथ दीक्षित हो गया। उसी तरह रानी ने भी धाय और बन्धुमती सेठानी के साथ विरक्त होकर सुव्रता आर्यिका के पास दीक्षा ले ली॥१०१-१०२॥ निर्नामक ने भी सिंहनिष्क्रीडित तप करके यह निदान किया कि मैं फिर से मनुष्य भव धारण कर लोगों का राजा बनूं॥१०३॥ रानी ने भी निदान किया कि जन्मान्तर में ये सब मेरे पुत्र हों तथा धात्री ने भी चाहा कि दूसरे जन्म में मैं इनको पालने वाली बनूँ। इस प्रकार तपस्या कर वे सब महाशुक्र नामके स्वर्ग में सोलह सागर आयु वाले देव हुए। फिर वहाँ से अवतरित हो शंख का जीव रिष्टपुर के राजा हिरण्यनाभि और रानी सुभद्रा की पुत्री रोहिणी से तुम्हारा पुत्र बलदेव हुआ है। नन्दयशा का जीव मृतिकावती देश में दशार्ण नगर के राजा अमरसेन (देवसेन) और रानी धन्या से देवकी नाम की तुम्हारी प्रियतमा के रूप में हुआ है। तथा धात्री का जीव भी, महाशुक्र स्वर्ग से अवतीर्ण हो मलय देश के भद्रिलपुर नगर में सेठ सुदृष्टि की प्रिय सेठानी 'अलका' के रूप में हुआ है॥१०४-१०७॥गंगदेव के जो गंग आदि छह पुत्र थे वे सभी हे वसुदेव! क्रम से तुम्हारे जुड़वे पुत्र होंगे। उन्हें जन्मतें ही इन्द्र की आज्ञा से हरिणैगमेशी नामका देवता भद्रिल नगर ले जायेगा॥१०८-११०॥ वह धात्री का जीव (अलका सेठानी) इन सबका अच्छी तरह पालन-पोषण करेगा। इनके नाम क्रमशः नृपदत्त, देवपाल, अनीकदत्त, अनीकपाल, शत्रुघ्न और जितशत्रु होंगे। ऐश्वर्यशाली ये सब हरिवंश को उन्नत बनायेगें! और जिनेन्द्र भगवान् के पास दीक्षा लेकर मोक्ष सुख प्राप्त करेंगे॥१११-११२॥ निर्नामक का जीव भी स्वर्ग से अवतरित हो अपने उच्च तप के बल से तुम्हारी प्रिय रानी देवकी से अकेले ही उत्पन्न होगा। और वह शत्रु पर चढ़ाई करेगा॥११३॥

इस प्रकार मुनिराज से यह सब सुन वसुदेव प्रसन्न हुआ और उन्हें फिर से नमस्कार कर अपने वंश में होने वाले तीर्थंकर के विषय में इस प्रकार पूछने लगा॥११४॥ कि हरिवंश को गौरव देने वाले वे अर्हंत पूर्व भवों में किस प्रकार क्या पुण्य कर्म कर उत्पन्न हो रहे हैं। तब मुनिराज वसुदेव के आग्रह से भगवान् नेमिनाथ् के पूर्वभवों को इस प्रकार कहने लगे॥११५॥

इसी जम्बूद्वीप में सीतोदा नदी के पश्चिम तटपर सुपद्मा देश के सिंहपुर नगर में राजा अर्हद्दास तथा रानी जिनदत्ता रहते थे। उनके जिन-पूजा के माहत्म्य से, रानी को सूर्य, सिंह, हाथी और लक्ष्मी को स्वप्न में देखने के बाद अपराजित नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ ॥११६-११७॥ एक दिन वह राजा मनोहर नाम के बगीचे में बैठे हुए, परम हितकारी विमलवाहन तीर्थंकर की वन्दना करने अपने पुत्र के साथ गया। और धर्मोपदेश सुनकर उनके समीप पांच सौ राजाओं के साथ दीक्षित हो गया। अपराजित भी जिन भगवान से सम्यक्त्व और (पिता से) राज्य प्राप्त कर सुख पूर्वक रहने लगा ॥११७-११९॥

फिर गन्धमादन पर्वत पर तीर्थंकर व अपने पिता का निर्वाण-गमन सुन (वहाँ गया) और आठ दिन का उपवास किया तथा कुबेर के द्वारा प्रस्तुत जिन-पूजा भी की ॥१२०॥ किसी समय वहाँ वह राजा पर्व के दिन में अपनी प्रीतिमती आदि रानीयों के साथ सिंहनिविष्ट नाम के चैत्यालय में बैठकर धर्मचर्चा कर रहा था कि उसी समय दो चारण मुनि वहाँ आकाश से उतरे। तब राजा उन दोनों को नमस्कार कर उनके पास बैठ कर कहने लगा कि आप दोनों को मैंने कहीं देखा है ॥१२१-१२२॥ तब उनमें से एक ने कहा 'हाँ' और बताने लगे कि पुष्करार्ध द्वीप के पश्चिम मन्दराचल के पश्चिम विदेह क्षेत्र में जो विजयार्ध पर्वत है उसकी उत्तर श्रेणी में एक सूर्याभ नगर है। वहाँ यथार्थ नाम वाला सूर्याभ राजा तथा रानी धारिणी रहते थे। उनके चिन्तागति, मनोगति और चपलगति नाम के तीन पुत्र थे ॥१२३-१२४॥

उस पर्वत पर अरिन्दम नगर में अरिञ्जय नामके राजा और अजितसेना उसकी रानी थी। राजा ने अपनी पुत्री के स्वयंवर के विषय में विचार करने के लिए मंत्रियों को बुलाया। पर वह प्रीतिमती नामकी कन्या गतियुद्ध विद्या में निपुण थी। उसने संसार की असारता को जानकर, दीक्षा की भावना से अपने पिता के चरणों में गिरकर कहा कि मुझे एक वरदान दीजिए। तब उसके अभिप्राय को जानकर राजा ने कहा कि तपस्या की बात छोड़कर तुम कोई दूसरा वर माँगों। तब उस कन्या ने कहा कि यदि आप इस भयानक गृहावस्था रूपी राक्षसी, जो कि शरीर रूपी भूमि में बैठकर निरन्तर खून पी रही है, से दूर होने के लिए छुटकारा नहीं देते तो मुझे उस ही उस ही व्यक्ति को विवाहें जो मुझे गतियुद्ध में हरा दे। राजा ने उसे 'तथास्तु' कह इस बात की सूचना विद्याधरों के पास भेजी ॥१२५-१२९॥

यह सुनकर तथा इस विद्या को महान् जानकर सभी विद्याधर दुखी हुए पर रानी धारिणी के पुत्र चिन्तागति आदि अपने विद्याबल के घमण्ड से वहाँ आये ॥१३०॥ तदनंतर उस गतियुद्ध में उस कन्या ने उन लोगों से पहले ही मेरु की प्रदक्षिणा कर तथा जिन-प्रतिमाओं की पूजाकर उन विद्याधरों को जीत लिया और निवृत्ति नाम की आर्यिका के समीप दीक्षा ले ली ॥१३१॥ वे विद्याधर भी यह मान कि 'हम लोग स्त्री से पराजित हो गये हैं, भीतर ही भीतर ग्लानि अनुभव करने लगे। तथा सूर्याभ राजा के उन तीनों पुत्रों ने दमवर मुनि के समीप दीक्षा ले ली और तपस्या कर माहेन्द्र स्वर्ग में सात सागर की आयु वाले सामानिक देव हुए। वहाँ से च्युत होकर मझला और छोटा भाई, पूर्व विदेह के पुष्कलावती देश में विजयार्ध पर्वत की उत्तर श्रेणी के गगनवल्लभपुर में राजा गगनेन्दु और रानी गगनसुन्दरी से अमितगति और अमिततेज नाम के पुत्र हुए। फिर पुण्डरीकिणी नगरी में स्वयंप्रभ भगवान् धर्मोपदेश सुन मुनि हो गये ॥१३२-१३५॥ हे राजन्, महेन्द्र कल्प से अवतरित होकर वे दोनों हम ही हुए हैं और सर्वज्ञ से अपने जन्म की बात जानकर अपने ज्येष्ठ भाई तुम्हें देखने यहाँ आये हैं ॥१३६॥ तुम अब से पाँचवे जन्म में इसी भारतवर्ष में हरिवंश रूपी आकाश में मनोहर चन्द्रमा की भाँति भगवान् अरिष्टनेमि होओगे ॥१३७॥ तुम्हारी आयु केवल एक माह शेष रह गई है इसलिए आत्मकल्याण करो। इस प्रकार राजा को उपदेश दे तथा विदा ले वे दोनों मुनि वहाँ से तुरन्त चले गये ॥१३८॥

चारण ऋषि के वचनों को सुन राजा बहुत प्रसन्न हुआ और बहुत समय तक विचार कर कि 'यदि मेरा मरण हो गया तो मेरी थोड़ी आयु व्यर्थ जायेगी और मेरे पास भी अब तपस्या करने को बहुत थोड़ा समय है' और यह सोचकर कि 'संसार में सभी अच्छी विभूतियाँ जिन भगवान् की पूजा से ही मिल सकती हैं'-वह जिन-पूजा में रत हो गया। तत्पश्चात अष्टाह्निका पूजा समाप्त होने पर उसने अपने पुत्र प्रीतिङ्कर को राज्य देकर तथा विधि पूर्वक समाधिमरण से प्राणों को छोड़ा॥१३९-१४१॥ और सतत मनोहर सुख से पूर्ण अच्युत स्वर्ग की विभूति को बाईस सागर तक भोग कर वहाँ से फिर च्युत हुआ॥१४२॥ तथा इसी भारतवर्ष में कुरूजांगल देश के हस्तिनापुर नगर में राजा श्रीचन्द्र और रानी श्रीमती से सुप्रतिष्ठ नामका पुत्र हुआ॥१४३॥

राजा श्रीचन्द्र ने अपने पुत्र का राज्याभिषेक कर सुमन्दिर तीर्थंकर के पास दीक्षा ले ली और कर्मों को नष्ट कर जगत्पूज्य निर्वाण पद प्राप्त किया ॥१४४॥ इधर राजा सुप्रतिष्ठ ने एक माह का उपवास किये हुए यशोधर मुनिराज को आहार दान दिया जिससे उसके घर देवों ने धनवृष्टि आदि पंचाश्चर्य किये ॥१४५॥ एक समय कार्तिक की रात्रि में वह अपनी सुनन्दा आदि रानियों के साथ महल के ऊपर बैठा था कि उसे उल्कापात देख विराग हो गया। तथा वह बुद्धिमान समस्त विभूति को उल्का के समान क्षणभंगुर जान प्रातःकाल अपने पुत्र सुदृष्ट को राज्य देकर अपने पिता के गुरु सुमन्दर जिनेन्द्र के समीप जिन दीक्षा ले ली ॥१४६-१४७॥ तथा उसने शीघ्र ही समस्त ग्यारह अंग वाले श्रुत (शास्त्र) का अध्ययन कर लिया और सिंहनिष्क्रीडित नाम का उच्च तप करने लगा। तीनों लोकों से पूजित हो उसने षोडशकारण भावनाओं का निरन्तर अभ्यास किया और मन वचन काय से शुद्ध हो तीर्थंकर नाम की पुण्य प्रकृति का बंध किया ॥१४६-१४९॥ उन भगवान् ने एक माह में लेने वाले भोजन को भी छोड़ आराधनों का अच्छी तरह आराधन किया और स्वर्ग लोक के मुकुट के समान तथा विमानों में मुख्य जयन्त विमान में जन्म लिया तथा वहाँ ३२ सागर तक सतत अत्यन्त रमणीय सुख और आयु को पाकर अहमिन्द्र पद का चिरकाल तक भोग किया ॥१५०-१५१॥

तदनन्तर स्वर्ग से अवतरति हो वे भगवान् राजा समुद्र विजय और रानी शिवा देवी के प्रिय पुत्र हो देवेन्द्रों से पूजा को प्राप्त करेंगे। इस प्रकार वसुदेव उन सब वृतान्तों को तथा तत्त्वोपदेश को सुन मुनिराज को नमस्कार कर अपने महल लौट गया और अपनी प्रिया देवकी को सब सुना कर उसके साथ आनन्द से रहने लगा ॥१५२-१५३॥

इस प्रकार पुराणसारसंग्रह के अरिष्टनेमिचरित्र में भगवान् के भवों को कथन करने वाला द्वितीय सर्ग समाप्त हुआ।

*****

तृतीय सर्ग

तदनन्तर देवकी के प्रसव होने पर देवता परिवर्तन कर निर्जीव पुत्रों को वहाँ रख देता था पर मन में भयभीत कंस उन (मरे हुओं) को जानकर शिलापर पटक देता था। इस तरह (छह पुत्रों के बाद) सातवें महीने में ही भाद्र पद शुक्ला द्वादशी को, जबकि श्रवण नक्षत्र में चन्द्रमा था तब, कृष्ण ने जन्म लिया॥१-२॥ उस समय सात दिन तक लगातार महावर्षा होने पर भी तुरन्त पैदा हुए उस बालक को कंस के भय से बलराम रात्रि में ही कपड़े में ढँक कर ले चले और वसुदेव ने छाता लगा लिया। वे लोग ज्योंही नगर के दरवाजे से निकल रहे थे, त्यों ही बालक की नाक में पानी की बूँदें गिरने से छींक आ गई इस पर कृष्ण के लिए उग्रसेन ने (जो कि दरवाजे पर बन्दी था) आशीर्वाद दिया कि हे शत्रुविनाशक, तुम चिरंजीव होओ। यह सुनकर बलराम ने उग्रसेन से प्रतिज्ञा करायी कि आप यह बात किसी से न कहें क्योंकि वह बालक आपको भी छुड़ाने वाला होगा॥३-५॥

उनके आगे आगे कृष्ण के पुण्य प्रताप से मार्ग को प्रकाशित करता हुआ एक बैल जा रहा था जिसके सिंग ही प्रज्वलित हो रहे थे। तथा बड़े प्रवाह से युक्त यमुना नदी भी थोड़े प्रवाह वाली हो गई॥६॥ गोकुल वृन्दावन में जाकर बलराम ने नन्दगोप की पत्नी को वह बालक दे दिया और उसकी कन्या लाकर देवकी के लिए दे दी॥७॥ फिर कंस को कन्या उत्पन्न होने की सूचना दी गई तो उसने यह सोचा कि शायद इसका पति ही मेरा शत्रु हो, और उसकी नाक चिपटी कर दी॥८॥

किसी समय एक निमितज्ञानी ने कंस से कहा कि हे राजन्! तुम्हारा शत्रु कहीं वृद्धिंगत हो रहा है। तब कंस ने यह सोच कि तप ही शत्रु का नाश करने वाला है, इसलिए आठ दिन का उपवास किया। इससे पूर्व जन्म के सब देवता उसके पास आ गये। कंस ने उन्हें आदेश दिया कि आप लोग मेरे शत्रु को शीघ्र नष्ट कीजिए। तब वे लोग 'अच्छा' कह कर चले गये॥९-१०॥

उनमें से एक देवी बड़े पक्षी का रूप धारण कर कृष्ण को चोंच मरने आई तो कृष्ण ने उसकी चोंच को ऐसी चोट पहुँचायी कि वह चिल्लाती हुई वहाँ से शीघ्र ही लुप्त हो गई। दूसरी देवी पिशाची का रूप धारण कर विषैले स्तन पिलाने आयी तब उस बालक ने स्तनों के चूचुकों को काट कर उसे मार डाला। तीसरी देवी

गाड़ी का रूप धारण कर कृष्ण के ऊपर गिरना ही चाहती थी कि उस निर्भीक कृष्ण ने उसे लात मार कर नष्ट कर दिया। चौथी और पांचवी देवी दो वृक्ष का रूप धारण कर कृष्ण को डराने आईं पर ऊखल से बंधे पैरों से कृष्ण ने उन्हें मार गिराया। एक देवी साँड का रूप धारण कर मदमत्त हो घूमती हुई सारे गोमण्डल में उपद्रव मचा रही थी। तो निर्भीक कृष्ण ने अपने हाथों से उसके गले को फाड़कर मार डाला। एक समय (भयंकर जलवृष्टि के कारण) सारे पशु-पक्षी भयभीत थे, पर्वत के किनारे के पत्थर गिर रहे थे तथा वृक्ष उखड़े जा रहे थे तो कृष्ण ने गोमण्डल की रक्षा के लिए अपने हाथों से गोवर्धन पर्वत उठा लिया॥११-१५॥

इस प्रकार बल से किये गये कृष्ण के इन अलौकिक कार्यों को सुनकर देवकी बहुत प्रसन्न हुई और कृष्ण को देखने की इच्छा से, उपवास के बहाने बलराम के साथ गोकुल में आई तो कृष्ण को देखते ही उसके स्तनों से दूध गिरने लगा। इस प्रकार मानो उसने कृष्ण को नहला ही दिया॥१६-१७॥

एक समय मथुरा का राजा कंस अपने शत्रु को ढूँढने के लिए गोकुल आया, तो यशोदा माता उसके पहले ही किसी बहाने से कृष्ण को कहीं बाहर ले गई। कृष्ण ने जंगल में प्रवास करते हुए, विशाल एवं भयानक आकार वाली, तथा भयंकर अट्टाहास करती हुई ताटकी (ताड़िका) नामकी एक राक्षसी को मार डाला॥१८-१९॥ एक ग्राम में मण्डप के खम्भे बनाने के लिए बहुत वजन वाले शाल्मलि वृक्ष के टुकड़े कृष्ण के दर्शन से ही उठ गये, तब माता निश्चिन्त हो गई कि अब शत्रु इसका कुछ बिगाड़ नहीं सकता॥२०॥

इधर कंस (अपने प्रयत्न में असफल हो) लौट आया और उसने निमितज्ञानी की सलाह से, शत्रु को खोजने की इच्छा से अपने नगर में घोषणा करवाई कि जो भी मनुष्य सिंहशय्या पर चढ़कर, जितंजय नामके दिव्य धुनष को चढ़ायेगा और शंख की ध्वनि से आकाश को गूँजा देगा वह मनवांछित पदार्थ पावेगा॥२१-२२॥ यह घोषणा सुन बहुतों ने प्रयत्न किये पर सब वहीं निस्तेज हो लौट गये। वहाँ राजगृह से कंस का स्वामी राजा भानु भी आया। तथा कृष्ण को वन से फुसला कर अपने साथ मथुरा ले आया। तदनन्तर कंस के शत्रु कृष्ण ने इन्द्र-स्थान में सजी हुई सिंहशय्या को देखकर पूछ-ताछ की और उस पर चढ़ गया। उसने धनुष की डोरी को चढ़ाकर शंख को भी बजा दिया। वहाँ किसी बहाने से बलराम ने आकर कृष्ण को शीघ्र ही वहाँ से भगा दिया॥२३-२५॥ जब कंस ने यह जाना कि 'महाधनुष

को किसी ग्वाले ने चढ़ाया है' तो उसने यमुना के (कालीदह नामक) सरोवर से कमल लाने के लिए गोपों को आज्ञा दी। तत्पश्चात् कृष्ण ने दूसरों को प्रवेश करने में कठिन, गहरे सरोवर में घुसकर वहाँ रहने वाले काली नाग को मार कर कमल तोड़ लिये और ग्वालों के द्वारा मथुरा भिजवा दिये। तब कंस ने यह जानकर कि ये कमल नन्दगोप के पुत्र ने तोड़े हैं, कृष्ण को मल्ल युद्ध के लिए बुलाया ॥२६-२८॥

इधर बलराम-द्वारा अपने उच्चकुल गोत्र की तथा कंस के द्वारा अपने भाइयों के वध की सब बात मालूम होने पर कृष्ण को कंस के ऊपर अत्यन्त क्रोध हुआ, और वे गोपों के साथ यह कहते हुए चले कि मेरा शत्रु वह दुरात्मा घमण्डी कंस आज ही अपने पापकर्मों का फल चखे ॥२९-३०॥

रास्ते में कृष्ण और बलराम ने केशी नामके राक्षस को जो कि अपना रूप बदलकर सर्पमुख और घोड़े का रूप धारण कर आया था-मार गिराया। तथा कंस के दरवाजे पर बँधे हुए तथा देखने में भयानक मत्त हाथी के दातों को उखाड़ कर उसे भी मार डाला तथा शीघ्र ही इन्द्र स्थान में प्रवेश किया। वहाँ चाणूर और वज्रमुष्टि नामके दो मल्लों को पटककर मार डाला। तब यह देख क्रोध से कंस उनके ऊपर टूट पड़ा। कृष्ण ने उसे भी युद्ध कर मार डाला ॥३१-३३॥ तदनन्तर बलराम की आज्ञा से कृष्ण ने राजा उग्रसेन को बन्धनों से मुक्तकर उन्हें बुलाया और उनको राजगद्दी पर बैठाकर अपने परिवार के लोगों को सन्तुष्ट किया ॥३४॥

किसी समय पुरवासियों ने आकाश में बड़ी तेजी से आते हुए एक विद्याधर राजा के दूत को ऊपर मुँह कर देखा। उस दूत की माला और वस्त्र वायु से हिल रहे थे ॥३५॥ नगर की शोभा देखने से जिसने अपने नेत्र प्राप्ति को सफल बना लिया है, ऐसा वह दूत, अपने पक्ष से भटके हुए शत्रुओं को जीतने वाले कृष्ण की सभा में आकर बैठ गया। राजा कृष्ण के समीप बैठकर, थोड़े समय में अवसर मिलते ही कृष्ण से बोला कि-हे धीमान् ! मैं विजयार्ध पर्वत से तुम्हारे पास आया हूँ। वहाँ विद्याधरों का राजा रथनूपुर का स्वामी सुकेतु नाम का विद्याधर रहता है। उसने अपने संभिन्नमति मंत्री की सलाह से अपनी पुत्री के विवाह के निमित्त से परीक्षा के लिए ही यहाँ सिंहवाहिनी शय्या और अजितंजय नामक धनुष रखा था। उस धनुष को चढ़ाने से आपकी परीक्षा हो गई इसलिए राजा ने अपनी आयुष्मती पुत्री सत्यभामा को आपको देने की इच्छा की है। विद्याधर और नरेन्द्रों का यह शुभ सम्बन्ध कल्याण के लिए ही होगा ॥३६-४०॥

दूत के इन वचनों को सुन कृष्ण ने कहा कि यदि ऐसा है तो यह हमारे पूर्व जन्म में किये पुण्य फल के सिवाय और क्या हो सकता है? फिर दूत अच्छी तरह सम्मानित हो चला गया और अपने राजा से, बल में इन्द्र के समान तथा शरीर से अलौकिक उस कृष्ण के सम्बन्ध में सब समाचार कहे॥४१-४२॥ विद्याधर भी प्रसन्न हो वहाँ आया और उसने अपनी रानी स्वयंप्रभा के गर्भ से उत्पन्न साध्वी सुलक्षणा कन्या बड़ी विभूति के साथ कृष्ण के लिए दे दी॥४३॥

इधर कंस की स्त्री जीवद्यशा अपने पति के मारे जाने से दुखी हो, बालों को फैलाये हुए, अपने साहस हीन पिता के पास गई और अपनी सब हालत कहने लगी॥४४॥ जामाता (दामाद) की मृत्यु सुनते ही जरासन्ध को बड़ा क्रोध आया और अपने कालयवन नामक पुत्र को कृष्ण का नाश करने की आज्ञा दी॥४५॥ उसने सेनासहित मालावर्त नाम के पर्वत पर आकर सत्तरह महायुद्ध किये और शक्तिशाली यादवों से लड़ता हुआ मारा गया॥४६॥ तब जरासन्ध ने अपराजित नाम के अपने भाई को, जो कि युद्धों में निर्भीक था, लड़ने भेजा। उसने आकर यादवों के साथ तीन सौ छियालीस युद्ध किये और जब कृष्ण के अस्त्र ने उसका रुधिर पी लिया और आयु समाप्त कर दी तो वह इस संसार से चल बसा। इससे सभी यादव अति सन्तुष्ट हो आनन्द मनाने लगे॥४७-४८॥

अथानन्तर शौरीपुर के राजा श्रीमान् समुद्र विजय की प्यारी रानी शिवादेवी ने रात्रि के चौथे पहर में सुख से सोते हुए ये १६ स्वप्न देखे॥४९॥ (पहले) स्वप्न में उसने शरत् कालीन मेघ के समान (श्वेत) तथा जिसके सुगन्ध मदजल पर भ्रमर-पंक्ति मँडरा रही थी और जो ऐरावत के समान था ऐसे गजेन्द्र को देखा॥५०॥ दूसरे स्वप्न में एक ऐसे हृष्टपुष्ट बैल को देखा, जिसके गले की लम्बी सास्ना (खाल) हिल रही थी, जिसके सुन्दर सींग थे, अच्छा ऊँचा कन्धा था तथा जो गम्भीर ध्वनि से दल्हार रहा था॥५१॥ तीसरे स्वप्न में उसने एक ऐसे जम्हाई लेते हुए सिंह को देखा जिसकी दाढ़ें बाल चन्द्रमा के समान थीं, तथा जिसकी सटा हिल रही थी और जो अपनी पूँछ मोड़े हुए था तथा जिसके नेत्र पिंगल वर्ण के थे॥५२॥ चौथे स्वप्न में उस रानी ने विकसित कमल पर बैठी हुई लक्ष्मी को देखा जिसे श्वेत हाथी दूध के कलशों से अभिषेक करा रहे थे॥५३॥ पाँचवें स्वप्न में उस रानी देवी ने सब ऋतुओं के कुसुमों से चित्रित लटकती हुई दो मालाएँ देखीं जिसकी सुगन्धि से समस्त दिशाएँ भर रही थीं॥५४॥ छठवें स्वप्न में उस चन्द्रमुखी रानी ने स्वच्छ

आकाश में उगते हुए कुमुदिनीयों के मित्र पूर्ण चन्द्रमा को देखा, जो अपनी किरणें फैला रहा था ॥५५॥ सातवें स्वप्न में उसने उगते हुए शोभायुक्त कमलों के मित्र सूर्य को देखा जिसने काले अन्धकार को नष्ट कर दिया था, तथा जो उदयाचल पर्वत के मुकुट स्वरूप था ॥५६॥ आठवें स्वप्न में उस मनोज्ञ रूपवाली देवी ने, प्रसन्न एवं शुक्ल दो मछलियों को देखा जो स्वच्छन्द क्रीड़ा कर रहीं थी, तथा आपस में स्नेहयुक्त थीं ॥५७॥ नवम स्वप्न में उस रानी ने अपने स्तनों के समान ही बड़े दो कलशों को देखा जो सुगन्धित जल से पूरित थे तथा विकसित कमलों से ढँके हुए थे ॥५८॥ दशवें स्वप्न में उस देवी ने स्वच्छ जल से पूर्ण एक मनोहर सरोवर देखा जो कि खिलते हुए अनेक प्रकार के फूलों से तथा नाना प्रकार के पक्षियों से भरा हुआ था ॥५९॥ ग्यारहवें स्वप्न में उस रानी ने उठती हुई तरंगों से चंचल तथा नेत्रों को प्रिय समुद्र को देखा, जो मूँगा मोती आदि मणियों की कान्ति से व्याप्त था तथा जिसमें मस्त जल जन्तु पड़े हुए थे ॥६०॥ बारहवें स्वप्न में उस देवी ने समीप में सिंह के मस्तक पर रखे हुए सिंहासन को देखा जिसमें से रत्नों की प्रभा निकल रही थी तथा जिस पर कोमल गलीचा बिछा हुआ था ॥६१॥ तेरहवें स्वप्न में उस माता ने नाना प्रकार की रचनाओं से चित्रित एक विमान को देखा जो कि मोती और सोने की रस्सी में लटकते हुए घण्टों की ध्वनि से शब्दायमान था ॥६२॥ चौदहवें स्वप्न में उस भगवती ने रत्नों की प्रभा से प्रकाशमान तथा पृथ्वी को भेदन कर निकलते हुए धरणेन्द्र के भवन को देखा जो कि उड़ती हुई अनेक प्रकार की पताकाओं से भूषित था ॥६३॥ पन्द्रहवें स्वप्न में उस रानी ने वैडूर्य, सूर्यकान्त आदि सम्पूर्ण रत्नों की एक बड़ी भारी राशि (ढेर) देखी जो कि चारों तरफ कान्ति फैला रही थी तथा वज्रमणि से युक्त थी ॥६४॥ सोलहवें स्वप्न में उस प्रसन्न रानी ने नेत्रों को प्रिय एवं धूम रहित जलती हुई अग्नि देखी जिसकी लपटें ऊपर जा रही थीं तथा जो उगते हुए सूर्य के समान आभावाली थीं ॥६५॥

भगवान् नेमिनाथ इन सोलह शुभ स्वप्नों को माता को दिखला कर, इन्द्रों के आसनों को कम्पाते हुए, स्वर्ग के अग्र भाग अर्थात् जयन्त विमान से अवितरित हो और श्वेत हाथी का रूप धारण कर श्रावण शुक्ल सप्तमी के दिन माता के मुखचन्द्र से गर्भ में प्रवेश किया ॥६६-६७॥ तदनन्तर प्रातःकाल होते ही वह रानी प्रातःकृत्य सम्पन्न करके श्रृंगार कर अपने पति के पास गई और उससे स्वप्नों का फल पूछने लगी। तब राजा ने इस प्रकार उत्तर दिया कि-देवि ! कैलाश के शिखर के समान गौर वर्ण गजेन्द्र को देखने से तुम्हें महात्मा (पुत्र) होगा जो हाथी के

समान ही धीर गम्भीर होगा॥६८-६९॥ हे भामिनि, वृषभ के देखने से वह उन्नत स्कन्धवाला तुम्हारा पुत्र अकेला ही सारे भूमण्डल को वृषभ अर्थात् धर्म से सुशोभित करेगा जैसे उत्तम बैल गोमण्डल को सुशोभित कर देता है॥७०॥ हे कमल नेत्रे! सिंह के देखने से तुम्हारा पुत्र पुरुषों में सिंह के समान होगा, वह सिंह के समान ही किसी से न डरेगा तथा तपोवन का स्वामी और धीर होगा॥७१॥ हे सुतनु, हे कान्ते! लक्ष्मी का अभिषेक देखने से तुम्हारे पुत्र को उत्पन्न होते ही सभी इन्द्र सुमेरु पर्वत पर ले जाकर क्षीर सागर के जल से अभिषेक करेंगे॥७२॥ हे सुरभिगन्धे, दो मालाओं के देखने से वह अनन्त दर्शन और अनन्त ज्ञान वाला होगा और तीनों लोको में उसका यश निरन्तर व्याप्त होता रहेगा॥७३॥ और हे प्रिये ! पूर्ण चन्द्रमा के देखने से चन्द्रमा के समान मुख वाला वह जिन-चन्द्र अपनी दया रूपी ज्योत्स्ना से सारे संसार को प्रसन्न करेगा॥७४॥ सूर्य के देखने से, वह पुत्र, सूर्य के जैसे पानी को सोख लेता है, उसी तरह अपनी महिमा से शत्रुओं के दर्प को नष्ट कर देगा तथा अज्ञान रूपी अन्धकार को नष्ट कर देगा॥७५॥ और कल्लोल करती दो मछलियों के देखने से वह पुत्र विषय-सुखों को अनुभव कर अन्त में दिव्य, अविनाशक, अमेय मोक्ष सुख का अनुभव करेगा॥७६॥ तथा उत्तम दो पूर्ण कलशों को देखने से हमारा घर भी कुबेर के मन्दिर के समान ही निधियों से पूर्ण होगा और सारा संसार भी हर्ष से पूर्ण होगा॥७७॥ हे कमल नेत्रे ! सरोवर के देखने से तुम्हारे पुत्र का शरीर उत्तम शुभ लक्षणों से व्याप्त होगा और वह लोभ-तृष्णा का नाश करने वाला होगा॥७८॥ तथा समुद्र के देखने से वह समुद्र के समान गम्भीर एवं नाना नीतिरूपी सैकड़ों सरिताओं से समृद्ध तथा अल्पज्ञान रूपी जल के पान से प्यासे लोगों को श्रुत समुद्र को प्राप्त कराने वाला होगा॥७९॥ स्वप्न में सिंहासन के देखने से वह पुत्र ऐसे सिंहासन पर आरोहण करने वाला होगा जिसे अपने मणिमुकुटों पर अञ्जलि बाँधे इन्द्रादि देव आदर से घेरे रहेंगे॥८०॥ तथा विमानके देखने से वह मान रहित अनुपम पुत्र इस पृथ्वी में मुख्य विमान अर्थात् जयन्त स्वर्ग से अवतरित होगा, जिसके चरणों की पूजा इन्द्र करेंगे॥८१॥ और हे भद्रे! भवन को देखने से वह भव बन्धन का काटने वाला होगा तथा संसार में आनन्द पैदा कर ज्ञानत्रय के साथ उत्पन्न होगा॥८२॥ तथा हे आर्ये! नाना प्रकार की कान्तिमान रत्नों की महाराशि देखने से वह सरल और निर्मल गुणों के समूह-द्वारा सबको शरण देने वाला होगा॥८३॥ और धूम रहित जलती हुई अग्नि को देखने से संसार के लोचन स्वरूप वे भगवान् शीघ्र ही योगरूपी अग्नि से समस्त कर्मों को नष्ट कर देंगे॥८४॥

हे सुन्दरि! जिसके माहात्म्य से इन्द्रों सहित समस्त देव, जिनका मुख उत्तम सोने के कुण्डलों में लगे मणियों की चंचल प्रभारूपी विद्युत रेखा से शोभित है, तथा जो विनय से झुके मुकुटों के अग्रभाग और भगवान् के सिंहासन की कान्ति के मिलने से प्रकाशित है, साधारण राजाओं के समान ही प्रतिदिन सभा में परिवार के जैसे बने रहेंगे ॥८५-८६॥ तथा जिसके पुण्य प्रसाद से वे इन्द्राणियाँ, जिनके अत्यन्त वेग से चलने के कारण, ढीले बँधे हुए शिर के बालों की सजावट से मन्दार पुष्प गिर रहे हैं, तथा जिनके मणि के बने बिछुए, करधौंनी और हाथ के कंकण मधुर ध्वनि कर रहे हैं, तथा जो तुम्हारी आज्ञा से ही विश्राम लेना चाहेंगी-तुम्हारे स्नान श्रृंगार आदि कार्यों को ठीक रूप से करने वाली दासियाँ होंगी ॥८७-८८॥ और विशेष क्या कहूँ इन स्वप्नों का इतना ही विशेष फल है कि हम दोनों उस तीन लोक के गुरु होने की (माता-पिता होने की) गरिमा (महत्व) को प्राप्त होंगे ॥८९॥ हम लोगों ने छः माह तक धनवृष्टि होने से पहले ही अनुमान कर लिया था कि हमारे वंश में त्रिलोकी नाथ तीर्थंकर का जन्म होगा ॥९०॥

इस प्रकार पति से कहे गये स्वप्न के फलों को सुनकर वह व्रत नियम पालने वाली रानी पुत्र को गोद में आये हुए के समान मानकर अत्यन्त प्रसन्न हुई ॥९१॥

उस समय इन्द्र की आज्ञा से कुबेर ने आकर जिन-भगवान् के माता-पिता की दिव्यमाला, वस्त्र और आभूषणों से पूजा की। कुबेर ने भगवान् के जन्म तक उनके माता-पिता के घर प्रतिदिन साढ़े तीन करोड़ सुवर्ण (रत्नों) की वृष्टि की ॥९२-९३॥ इस प्रकार देवों और देवाङ्गनाओं से दी गई नाना प्रकार की सामग्री भोगते हुए, इन्द्र और इन्द्राणी के समान, भगवान् के माता-पिता के नवमास सुख पूर्वक बीत गये ॥९४॥

तत् पश्चात् संसार को कम्पित करते हुए, वैशाख शुक्ल त्रयोदशी के दिन देवाङ्गनाओं के कर कमलों के भ्रमर के समान वे भगवान् जन्मे ॥९५॥ तब शीघ्र ही नाना प्रकार के यान वाहन और सेना लेकर सभी इन्द्र आये और जिनेन्द्र को बड़े उत्सव के साथ सुमेरु पर्वत पर ले गये ॥९६॥ वहाँ उन लोगों ने क्षीरसागर के जल से भरे हुए उत्तम कलशों से भगवान् का विधिपूर्वक अभिषेक किया और प्रसन्न होकर नाना प्रकार के स्तोत्रों से इनकी स्तुति की ॥९७॥ फिर भगवान् को माता-पिता के पास ले आये और आनन्द नाम के नाटक को खेल अपने इष्ट स्थानों को चले गये ॥९८॥ तत्पश्चात् वे भगवान् अरिष्टनेमि शब्द से युक्त लोरी

गीत गाने वाले देवाङ्गनाओं से तथा कुबेर के द्वारा लाये गये नाना साधनों से, क्रीड़ा करने लगे ॥९९॥

इधर मगधराज जरासन्ध, अपने भाई का मरण सुनकर यादवों के ऊपर बहुत क्रुद्ध हुआ और सेना के साथ चढ़ाई कर दी। तब यादव भी अपने हित की बात सोचकर, रात्रि में ही मथुरा, वीरपुर और शौरी नगर छोड़ बदला लेने की भावना से पश्चिम समुद्र के पास एक दुर्ग में चले गये ॥१००-१०१॥ तब जरासन्ध मार्ग में उनका पीछा करते हुए चला पर उसने बीच में ही, चिता बनाकर रोती हुई किसी देवी को देखा जो बुढ़िया का रूप बनाकर यादवों के प्रति विशेष स्नेह होने से करुण विलाप कर रही थी। जरासन्ध उससे यादवों का विनाश सुनकर और उसके वचनों पर विश्वास कर लौट आया ॥१०२-१०३॥

इधर कृष्ण ने भी समुद्र के किनारे स्थान पाने की इच्छा से अपने भाई बलराम के साथ व्रत करते हुए, कुश की शय्या पर सोकर अष्टम भक्त व्रत किया ॥१०४॥ तब इन्द्र की आज्ञा से गौतम नाम के देव ने ऊँची उठती तरंगों वाले समुद्र को शीघ्र ही हटा दिया ॥१०५॥ और कुबेर ने कृष्ण के पुण्योदय और भगवान् की भक्ति से नव योजन चौड़ी तथा बारह योजन लम्बी द्वारिका नगरी का निर्माण कर दिया ॥१०६॥ इस प्रकार समुद्र से सहसा निकली हुई वह नगरी ऐसी मालूम होती थी जैसे राक्षसों की राजधानी हो, अथवा मानो स्वर्ग से अलकापुरी ही अवतीर्ण हुई हो ॥१०७॥ वहाँ यादव गण क्लेश एवं भय रहित हो मनवांछित दिव्य विषय-भोगों को भोगने लगे ॥१०८॥

एक समय समुद्र में भूले-भटके कुछ वणिक् द्वारिकापुरी आये और वहाँ से सुन्दर एवं अन्यत्र दुर्लभ रत्नों को ले जाकर राजगृह में राजा (जरासन्ध) के लिए भेंट-स्वरूप दिया। तब राजा इस लोक में अत्यन्त दुर्लभ रत्नों को देख कर बड़ा विस्मित हुआ और पूछने लगा कि इन अनुपम दिव्य एवं मनोहर रत्नों को तुम लोगों ने कहाँ पाया है। तब उन लोगों ने इस प्रकार कहा कि हे नरदेव! दूसरे स्वर्ग लोक के समान यादवों का एक समृद्ध नगर है। उस सरीखा नगर तो पृथिवी में और कोई नहीं है ॥१०९-११२॥ उसकी खाई के रूप में, अनेक मगर-मच्छ से व्याप्त, चंचल तरंगों वाला समुद्र है तथा वहाँ समुद्र के रत्नों की प्रभा से मिला हुआ जल ही पुष्पों का काम देता है ॥११३॥ जिस नगरी में महलों के शिखर में लगे हुए

उन्नत कान्तिवाले चमकीले रत्नों की किरणों में और चन्द्र एवं सूर्य के प्रकाश में कोई विशेषता नहीं मालूम होती॥११४॥

उस नगरी के महलों में यादव गण अपनी पत्नियों के साथ सदा अभिरमण करते हैं, उन्हें स्वच्छ आकाश में चलने वाले सूर्य और चन्द्रमा में कोई अन्तर नहीं मालूम पड़ता है अर्थात उन्हें रात्रि दिन का कोई भेद नहीं मालूम होता है॥११५॥ उस नगरी में यदु वंश में उत्पन्न कृष्ण, शत्रुरहित निर्भय होकर, मनोवांच्छित भोगों को भोगता हुआ रहता है। वह महातेजस्वी है तथा शरत् कालीन सूर्य के समान तीक्ष्ण होने से उस पर दृष्टि नहीं ठहरती हैं उसके बाहु अति लम्बे एवं विशाल हैं, उसका वक्षःस्थल भी विशाल है। वह पर्वत के समान उन्नत तथा गज के समान मत्तगति वाला है; बाण के समान कृशोदर, एवं महाशक्तिशाली वह कृष्ण तिरस्कार भाव से आयुध चलाने में क्षम शत्रुओं की भी परवाह नहीं करता॥११६-११८॥

हे राजन् ! हम लोग उस नगरी से ही ये अनमोल रत्न लाये हैं जहाँ कि कुबेर के द्वारा बनाये गये एवं अनेक अच्छे रत्नों से प्रकाशित गृह हैं॥११९॥

इस प्रकार यदुवंश की ख्याति सुनकर उसके नेत्र क्रोध रूपी अग्नि से लाल हो गये और उसने मन्त्रियों की सलाह से अजितसेन नाम के दूत को यादवों के पास भेजा॥१२०॥ दूत कर्म की सभी कलाओं में प्रवीण यह दूत भी अनुक्रम से जाकर द्वारिकापुरी पहुँचा। उसके रास्ते की थकान, ठंडी एवं बगीचों की सुगन्धित वायु ने दूर कर दी॥१२१॥ विस्मृत दृष्टि वाला वह दूत-जिसे नगर की नारियाँ देख रही थीं उस बड़े-बड़े महलों वाली नगरी में ठीक वैसे ही प्रविष्ट हुआ जैसे कि एक पुण्यात्मा ध्यान में प्रवेश करता है॥१२२॥ राजभवन में पहुँचकर उस दूत ने अपने आने की सूचना द्वारपाल द्वारा भेज दी और अनेक प्रकार की वेशभूषा धारण किये हुए राजाओं से भरी राजसभा में प्रविष्ट हुआ॥१२३॥ अपने लिए बतलाये गये आसन पर बैठकर थोड़ी देर बाद उसने इस प्रकार कहना प्रारम्भ किया कि-मगधेश्वर जरासन्ध ने आप लोगों के लिए एक हित की बात कहला भेजी है॥१२४॥ वह यह कि जिसके भय से आप लोग समुद्र के इस कष्टप्रद दुर्ग में आकर रह रहे हैं, उसने तो आप लोगों का एक भी अपकार नहीं किया है॥१२५॥ यद्यपि आप लोगों ने ही उनके जामाता (दामाद) तथा भाई आदि को मार कर उस पर ही एक प्रकार से चढ़ाई की है फिर भी वह आप लोगों के गुणों को जानता है, इसलिए आप लोग उसे प्रणाम मात्र से प्रसन्न कर सकते हैं। वह राजा

आप लोगों के प्रणाम को न टालेगा क्योंकि सज्जन लोग अपकार करने वालों पर प्रणाम मात्र से ही प्रसन्न हो जाते हैं॥१२६-१२७॥ दुर्ग में रहने के कारण यदि आप लोग, उसके सामने झुकना नहीं चाहते तो अपनी भुजाओं पर गर्व करने वाला वह राजा दूसरे घमण्डियों को कैसे सह सकता है? ॥१२८॥ इसलिए यदि आप लोग जरासन्ध से अपने वंश का विनाश नहीं चाहते तो शीघ्र ही जाकर उसे प्रणाम कर प्रसन्न कर लीजिए॥१२९॥

दूत के इन वचनों को सुनकर उन सबने अपनी भौंहें चढ़ा लीं और वहाँ बहुत समय से बसे हुए वे कृष्ण आदि यादव क्रोध से लाल नेत्र कर इस प्रकार गर्जना करने लगे कि 'आवे, वह अपने विनाश को चाहने वाला। हम लोग तो बहुत समय से युद्ध के लिए उत्कण्ठित ही हैं।' इस प्रकार उनसे विदा लेकर उस दूत ने, अपने राजा के पास जाकर सब समाचार कह दिये। तब अपने दूत से यह सब सुन मगधराज जरासन्ध बहुत क्रुद्ध हुआ और अनेक उत्पात होने पर भी तैयारी कर भूकम्प पैदा करने वाली सेना के साथ कुरूक्षेत्र के मैदान में आ गया॥१३०-१३२॥ कृष्ण भी यादवों की समस्त सेनाओं से धूलि को उड़ाते तथा अपने आगमन को बतलाते हुए, वहाँ शीघ्र ही आकर जम गये॥१३३॥

तब यादवों और मगधराज की सेनाएँ तैयारी के साथ गरूड व्यूह और चक्रव्यूह रचना कर युद्ध क्षेत्र में आ गईं और बाणों की बर्षा करने लगीं॥१३४॥ वहाँ क्रोध से निकले हुए भीतरी पाप के समान चमकती तलवारों से तथा धनुष को खींचकर छोड़े गये और अचूक निशाने वाले बाणों से, और फेंककर प्रयोग किये गये, दूसरों के हृदय को नष्ट करने वाले तीक्ष्ण बड़े-बड़े भालों (गुप्तियों) से, आपस में लड़ते हुए वीर लोग मारे जाने लगे। घुड़सवार शत्रुओं ने तीक्ष्ण भालों से मारकर हाथियों के सवारों को मार डाला तथा बहुत से घुड़सवार भी प्राणहीन हो गिर गये ॥१३५-१३७॥ वहाँ बाणों की खूब वृष्टि होने से, मद जल को कपोलों से बहाते हुए बहुत से हाथी प्राणरहित हो निश्चल भाव से पड़े रहे॥१३८॥ बहुत से रथ गदा की मार से नष्ट हो गये थे, दूसरे रथों के चक्रों से फँसकर उनके चक्र नष्ट हो गये। तथा शत्रु के बाणों से उनके सारथी एवं घोड़े भी मार डाले गये॥१३९॥ इस प्रकार जब कि महायुद्ध चल रहा था, और बाणों से आकाश ढँक रहा था तथा युद्ध करके अपने पुत्र, योद्धा और राजा लोग मर रहे थे, तब अचूक अस्त्र चलाने वाला वह जरासन्ध मत्त हाथी के मस्तक पर बैठ कर युद्ध क्षेत्र में आया और कृष्ण पर

अत्यन्त क्रुद्ध होकर उसके ऊपर जलते हुए चक्र को चला दिया॥१४०-१४१॥ वह चक्र भी सहसा भगवान् नेमिनाथ के साथ कृष्ण की प्रदक्षिणा कर जरासन्ध के पुण्य क्षीण हो जाने से, कृष्ण के दाहिने हाथ में आकर ठहर गया॥१४२॥ तब युद्ध क्षेत्र में ही चक्रधारी कृष्ण ने उस चक्र से शत्रु की गर्दन काट ली और उसके प्राण जनता की आनन्द-ध्वनि के साथ-साथ ऊपर उड़े गये॥१४३॥ कृष्ण की विजय होने पर सभी यदु लोग मिलकर क्रीड़ा करने लगे और जहाँ उन लोगों ने आनन्द मनाया था, उस स्थान का नाम आनन्दपुर हो गया॥१४४॥

तदनन्तर कृष्ण ने चक्र की पूजा की, और मागध आदि देवों को वश में कर तथा आठ वर्षों तक देशों की जीत, तत्पश्चात लौटकर अपने नगर में प्रवेश किया॥१४५॥ फिर देवेन्द्रों और नरेन्द्रों ने मिलकर उनका अर्धचक्रवर्ती पद पर अभिषेक किया। तत्पश्चात् वे सोलह हजार रानियों के साथ सुख से रहने लगे॥१४६॥ उनके पास दिव्य शार्ङ्ग नामका धनुष था, शत्रुओं को डराने वाला सुदर्शन चक्र था, न चूकने वाली शक्ति थी, सौनन्दक नाम की तलवार थी, एवं पाञ्चजन्य नामका शंख, शत्रुओं को भय देने वाली कौमोद की नामकी गदा तथा कौस्तुभ मणि को मिलाकर सात रत्न थे। बलराम के भी, अपराजित नाम का हल, गदा, रत्नावतंसिका माला, तथा न चूकने वाला मूसल, ये चार रत्न थे॥१४७-१४९॥ वे कृष्ण सोलह हजार विनीत राजाओं से तथा आठ हजार गण देवों से सतत सेवित हो राज्य-सभा के बीच अच्छी तरह रहने लगे। वे पूर्ण वैभव से सम्पन्न थे, उनका पराक्रम विख्यात था, उत्तम लक्ष्मी थी, सारे मनोरथ और उत्साह पूरे हो गये थे तथा उनकी आज्ञा सबको शिरोधार्य थी॥१५०-१५१॥

इस प्रकार पुराणसारसंग्रह के आर्याबद्ध अरिष्टनेमिचरित में
विष्णुविजय नामक तृतीय सर्ग समाप्त हुआ।

*****

चतुर्थ सर्ग

भगवान नेमिनाथ पूर्णिमा के समान पूर्ण युवावस्था से तथा अनुपम शरीर से शोभित हो रहे थे मानो पूर्णमद से भरा हाथी ही हो। एक दिन वे भगवान् जैसे चञ्चल विद्युन्माला से मेघ अच्छा लगता है उसी तरह कान्ति युक्त दिव्य अंलकारों से विभूषित हो कुसुम चित्रा नामकी सभा में आये। वहाँ चञ्चल हार से युक्त वक्षःस्थल वाले सभी कुलीन मित्रों ने हाथ जोड़ मुकुट झुकाकर प्रसन्नता से स्वागत किया ॥१-३॥ वे सहसा अपनी कान्ति से सभा गृह को पूरित करते हुए तथा राजाओं को सूचित करते हुए कृष्ण के साथ सिंहासनपर बैठ गये ॥४॥ वहाँ वे भगवान् कृष्ण से सटकर बैठ उस समय सभासदों से कही गई विचित्र प्रकार की कथाओं को थोड़ी देर सुनकर प्रसन्न हुए ॥५॥

वहाँ जब बलवानों में कौन अद्वितीय है इस बात का प्रस्ताव आया तो कुछ शस्त्रज्ञ राजाओं ने, उन्नत बलवाले तथा अचूक अस्त्र चलाने वाले अर्जुन की प्रशंसा की ॥६॥ कुछ लोगों ने युधिष्ठर की, कुछ ने भीम की तथा कुछ ने उद्धव आदि की तथा कुछ ने बलराम को ही बलवानों में अग्रणी कहकर प्रशंसा की ॥७॥ तदन्तर कुछ ने इस प्रकार कहा कि कृष्ण के रहते हुए और कौन बलवान् है जिसने कुमार काल में ही जल्दी से पर्वत उठा लिया हो ॥८॥ इसके पहले वे सारे राजा जिन्हें अपने अपनी ताकत पर पूरा भरोसा था, अपनी सेनासहित भी, उस पर्वत को स्थान से जरा भी न हिला सके थे इसलिए इन्द्र के समान कान्ति वाले, नारायण, कृष्ण से बढ़कर कौन महापराक्रमी राजा इस पृथिवी पर होगा ॥९-१०॥

तब बलराम ने सभा में हँस कर यों ही कह दिया कि नेमि भगवान् से अधिक बलवान इस संसार में और कोई नहीं है ॥११॥ यह सुनकर कृष्ण ने हँसकर भगवान् की ओर देखा और कहा कि हम लोग आपकी ताकत मल्लयुद्ध में देखना चाहते हैं ॥१२॥ तब वे विजयी भगवान् मन में हँसते हुए मेघ गर्जना के समान गंभीर वाणी से पृथिवी को थोड़ा कँपाते हुए, विनोद पूर्वक कृष्ण को देख बोले कि- ॥१३॥ मल्लयुद्ध करने से क्या! आपके बाहुबल का पराक्रम इतने से ही मालूम हो जायेगा कि आप मेरे इस पैर के अंगूठे को ही थोड़ा चलाइये। इस पर कृष्ण क्रुद्ध हो गये और अपनी सारी शक्ति से भी अंगूठे को यहाँ-वहाँ न चला सके। तदनन्तर कृष्ण को भगवान् से कुछ डर हो गया ॥१४-१५॥ तब उसी समय इन्द्र ने आकर भगवान् के चरणों की पूजा की और राजाओं को डांटकर देवों सहित स्वर्ग चला गया ॥१६॥

फिर एक समय बसन्त के महीने में वे भगवान्, कृष्ण की रानियों की प्रेरणा से कुतूहल वश एक सुन्दर बगीचे में गये॥१७॥ भगवान् ने उस बगीचे में देखा कि दक्षिण दिशा से धीरे-धीरे आने वाले, कलियों को विकसित करने वाले एवं जलकणों से शीतल तथा मन और शरीर को अच्छे लगने वाले तथा कामाग्नि को प्रज्वलित करने वाले नृत्याचार्य वायु ने विकसित आम्र की मौरों की सुगन्धि फैला रखी है और उद्यान की तलाओं को चंचल कर दिया है॥१८-१९॥ वहाँ कुछ रानियां चमर के बीजने के समान ही साल और तमाल वृक्षों की डालियों से-जिन में फूले हुए फूलों पर ध्वनि करते हुए भौंरे बैठे हैं-भगवान् को हवा करने लगीं॥२०॥ किसी रानी ने आम की मौंरो को मिलाकर अशोक वृक्ष के लाल फूलों के गुच्छे से उन प्रसन्नचित्त (शोकहीन) भगवान् के कर्ण भूषण की रचना अच्छी तरह कर दी॥२१॥ किसी रानी ने भगवान् के सिर पर मोतियों से शोभित मुकुट के समान ही, नवीन मल्लिका के फूल से युक्त करने के गुच्छे को रख दिया॥२२॥ किसी ने अत्यन्त सुन्दर कुरवक के फूलों को लेकर एवं अपने सुन्दर हाथों से रखकर भगवान् के बालों की शोभा कर दी॥२३॥ जैसे अपने स्वामी से त्यक्त गुणवान व्यक्तियों को सज्जन लोग आश्रय देते हैं उसी तरह अपने स्वामी-माधवी लता से -स्थान भ्रष्ट मौंगरा (माधवी) के सुन्दर फूलों को धागे में पिरोकर तथा भगवान को भेंट कर कोई रानी लजाने लगी॥२४॥ इस प्रकार कृष्ण की रानियों के साथ उपवन की शोभा को देखते हुए, वे भगवान् ऐसे मालूम पड़ते थे मानो स्वयं बसन्त राजा साक्षात् अपनी दृष्टि फैला रहा हो। तदनन्तर उस उद्यान में विहार कर भगवान् नेमिनाथ ने वहाँ तिलाखिला नामकी एक सुन्दर बावड़ी देखी और क्रीड़ा करने की इच्छुक रानियों के साथ उस में प्रवेश किया॥२५-२६॥ वहाँ वे रानियाँ, हाथी, मगर, घोड़े आदि मनोहर रूपधारी नाना प्रकार के क्रीड़ा यन्त्रों से, तथा किनारे में लगे हुए चमकते हुए विविध मणियों की किरणों से उत्पन्न (कल्पित) इन्द्र धनुष से विभक्त अतएव नाना रंग की नालियों से निकलती हुई जलधारा से आपस में ताड़ित करती हुई, अनेक प्रकार से खेलने लगीं॥२७-२८॥

जलक्रीड़ा के बाद भगवान् नेमिनाथ ने नये कपड़े पहनकर अपने गीले कपड़े निचोड़ने के लिए आँखों के इशारे से कृष्ण की रानी जाम्बवती से कहा। तब बनावटी क्रोध से लाल हो वह रानी, चंचल कटाक्षों से भगवान् को देखकर टेढ़ी भौंह कर हाव-भाव के साथ बोली-कि मैंने उस राजा कृष्ण की भी धोती इस प्रकार कभी नहीं धोई तब क्या आप जैसों की धोती को निचोड़ूंगी। वह कृष्ण सम्पूर्ण

पृथिवी का राजा है तथा सर्पमणि की कान्ति से व्याप्त मुकुट के मणियों से तेजस्वी है। उसने दु:साध्य सिंहवाहिनी शय्या पर चढ़कर ऐसा पाञ्चजन्य शंख बजाया, जिसकी गम्भीर ध्वनि सकल संसार में व्याप्त हो गई, तथा शार्ंग नाम के दिव्य धनुष को जिसने चढ़ाया है एवं कीर्ति सम्पूर्ण लोक में फैल रही है। उसके इन वचनों को सुनकर दूसरी रानियों ने उससे कहा कि इस प्रकार की बात भगवान् से मत कहो॥२९-३४॥

तब भगवान् ने यह कहा कि अच्छा तुम्हारे पति की इतनी भर ही बड़ाई है। और विशेष क्रोध के साथ शीघ्रता से अपने महल में लौट आये॥३५॥ और उन्होंने नाग शय्या पर चढ़कर कृष्ण के धनुष को चढ़ा दिया, तथा क्षुभित समुद्र की गर्जना के समान महाशंख बजाया। उस शंख की ध्वनि से चौंके हुए हाथियों ने महल के बड़े-बड़े खम्भे तोड़ दिये तथा अनेकों भवनों के ऊँचे-ऊँचे शिखर हिलने लगे। नगर वासी जन चौंक कर 'यह क्या? यह क्या?' इस तरह खूब चिल्लाते हुए भागने लगे और समस्त नगरी लोक प्रलय की आशंका से घबड़ा गई॥३६-३८॥ कृष्ण की सभा कुसुम चित्रा भी एकदम चौंक कर घबड़ा गई और यह मानने लगी कि किसी ने समुद्र के बाँध को ही तोड़ दिया है॥३९॥

तब कृष्ण ने पाञ्चजन्य शंख की ध्वनि को पहचाना और वहाँ शीघ्र ही आकर भगवान् को नागशय्या पर सुशोभित होते देख बड़ा आश्चर्य किया। तब यादवों ने यह जानकर कि युद्ध से निबटने लायक, पर किसी तरह शान्त हुए, इस अमानुषीय कर्म को भगवान् ने तिरस्कार बुद्धि से किया है, बड़ी प्रसन्नता प्रकट की॥४०-४१॥ उन लोगों ने मालूम किया कि जाम्बवती की प्रेरणा से ही भगवान् ने ऐसा किया है और कृष्ण की सलाह से भगवान् का विवाह राजा उग्रसेन की तीन लोक में अतिसुन्दरी पुत्री राजिमती के साथ करने के लिए प्रयत्न करने लगे॥४२-४३॥

एक दिन वे अनुपम भगवान् कुबेर के द्वारा लाये गये आभूषणों को पहिन हिनहिनाते हुए ऊँचे घोड़ों से युक्त तथा स्थान-स्थान पर लगाये गये चमकीले मणियों की प्रभा से जगमग होते हुए सूर्य रथ के समान रथ में चढ़कर तथा सुन्दर वेशधारी राजकुमारों के साथ व अपने परिचारक गणों को ले बाहर निकले। उनके शरीर की शोभा देख नगर की नारियों के नेत्र प्रसन्न हो रहे थे॥४४-४६॥

रास्ते में उनके भय के आवेश से कम्पते हुए, घबड़ाहट से कातर दृष्टि वाले, अनेक जाति के मृग-पशुओं को देखा॥४७॥ और त्रिज्ञान धारी उन भगवान् को

स्वयं ही उस सबका कारण मालूम होने से वैराग्य हो गया। फिर इस बात को बलराम, कृष्ण आदि अपने बन्धुवर्ग में प्रकट करने के लिए, अपने गंभीर ध्वनि वाले रथ को रोककर पूछने लगे कि किसने निर्दय भाव से इन अनाथ जंगली पशुओं को रोक रखा और किस लिए रोका है॥४८-४९॥ तब विनम्रता से विनीत वचन बोलने वाले सारथी ने कहा कि आपके विवाह के लिए ही कृष्ण की आज्ञा से ये पशु यहाँ लाये गये हैं॥५०॥

सारथी के इन वचनों का सुनकर भगवान् नेमिनाथ को उसी समय इन्द्रिय-विषयों के कटु फल को सोचते हुए समस्त भोगों से वैराग्य हो गया॥५१॥ उसी समय कुमुद के समान श्वेत वर्ण वाले लौकान्तिक देव भगवान् के पास हाथ जोड़कर आये और उन्होंने प्रार्थना की कि हे त्रिलोकेश भगवन्, आप धर्मतीर्थ का प्रवर्तन कीजिये॥५२॥ उस प्रकार मृग-पशुओं को देख, विरक्त-चित्त हो भगवान् नगर में आये। सच है कि सज्जनों का हृदय दूसरों के दुख देखने से दुखी होता है॥५३॥

उस समय देवेन्द्रों ने अपने आसन कम्पन होने से भगवान् की दीक्षा लेने की इच्छा जानी और नाना प्रकार की सवारियों में चढ़कर शीघ्र ही वहाँ आये॥५४॥ और उन्होंने क्षीर सागर से जल लाकर भगवान् का अभिषेक करा, उन्हें दिव्य माला, वस्त्र मनोहर आभूषण पहनाये॥५५॥ फिर उन जगद्बन्धु भगवान् को जिनने कि आप समस्त परिवार से दीक्षा लेने की आज्ञा ले ली थी उत्तर कुरु नामकी पालकी पर बैठाकर शीघ्र ही गिरनार पर्वत पर ले आये॥५६॥ वहाँ पर भगवान् ने पञ्चमुष्ठि से अपने केश लोंच कर हजार राजाओं के साथ दिगम्बरी दीक्षा ले ली॥५७॥ तब इन्द्र ने रत्नों की पिटारी में भगवान् के सुगन्धित बालों को रखकर क्षीर सागर में क्षेप दिया॥५८॥ चार ज्ञान से संयुक्त तथा बाह्य और अन्तरङ्ग इन दोनों परिग्रहों से रहित वे भगवान्, मेघरहित सम्पूर्ण चन्द्रमा के समान सभी लोगों का मन आकर्षित कर रहे थे॥५९॥ श्रावण शुक्ल चतुर्थी के दिन पूर्वाह्न के समय भगवान् ने षष्ठोपवास कर दीक्षा ले ली। देवगण भी उनकी पूजा कर अपने-अपने स्थान पर चले गये॥६०॥

द्वारिकापुरी में भगवान् को वरदत्त सेठ ने भक्ति वश पारणा में क्षीरान्न (खीर) दिया जिससे उसके घर में देवों ने सम्मान स्वरूप धनवृष्टि आदि पञ्चाश्चर्य किये॥६१॥ तदनन्तर दिन-रात महान् तप करते हुए ५६ दिन बीत जाने पर वे भगवान् आश्विन शुक्ल प्रतिपदा के दिन दोपहर के समय षष्ठोपवास करने के बाद क्षपक श्रेणी में आरूढ हुए और आकुलता रहित हो उन्होंने शुक्ल ध्यान का

चिन्तवन किया तथा पापों को नष्ट करने वाले अपूर्व करण आदि योगास्त्रों से सम्पूर्ण मोहनीय, ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, अन्तराय कर्मों का नाशकर लोक अलोक को प्रकाशित करने वाला श्रेष्ठ केवलज्ञान प्राप्त किया ॥६२-६४॥

तब सभी इन्द्रों ने अपनी समस्त सेना के साथ आकर भगवान् की पूजा की और उनके चरण-कमलों के स्पर्श से अपने मुकुटों को पवित्र किया ॥६५॥ उस समय भगवान् के तीन छत्र, दो चामर, एक सिंहासन, पुष्पवृष्टि, दुन्दुभि, दिव्य ध्वनि, अशोकतरु और भामण्डल ये आठ प्रातिहार्य प्रकट हुए थे ॥६६॥ कृष्ण भी, शत्रुरहित एवं तीर्थकर विभूति को प्राप्त उन भगवान् को नमस्कार कर इन्द्र के साथ ही समवशरण का सदस्य हो गया अर्थात् वहाँ बैठ गया ॥६७॥ भगवान् ने उस तीन लोक की सभा के लिए-मोक्षमार्ग की एक सुन्दर सीढ़ी के समान-सबको समझ में आने वाली वाणी से उपदेश दिया ॥६८॥ उनके वरदत्त आदि ११ गणधर थे तथा बहुत से मुनि और श्रावक थे ॥६९॥ राजीमती ने भी भक्ति पूर्वक छह हजार राजकन्याओं के साथ दीक्षा ले ली और आर्यिकाओं की प्रमुख गणिनी हो गई ॥७०॥ त्रिलोक गुरु भगवान् को प्रथम ही चार प्रकार की सम्पति अर्थात् अनन्त ज्ञान अनन्त दर्शन, अनन्त सुख एवं अनन्त वीर्य प्रकट हो गये थे फिर उनने भव्य प्राणियों को उपदेश देने की इच्छा से नाना देशों में विहार किया ॥७१॥

उनके आगे आगे, दूसरे सूर्य के समान प्रकाश मान धर्मचक्र चल रहा था। ऊँची एक इन्द्र ध्वजा भी थी जिसका मनोहर ऊपरी हिस्सा गगन को छू रहा था। भगवान् के ऊपर आकाश में अपने आप लटकते हुए के समान छत्रत्रय शोभित हो रहा था। तथा दो दिग्वधुओं ने उनके दोनों ओर दो चामर धारण कर लिये थे ॥७२-७३॥ गजेन्द्र के समान गति वाले वे भगवान् सुवर्ण-कमलों से चार अंगुल ऊपर पैर रखते हुए चल रहे थे तथा अपने चरणों में नत अनेक पुरुषों को संसार से तारते हुए विहार करने लगे ॥७४॥ फिर एक समय लौट कर देवेन्द्र, असुरेन्द्र और ऋषि समुदायों से सेव्यमान वे भगवान् गिरनार पर्वत पर ठहरे ॥७५॥ भगवान् के आगमन को सुन कर कृष्ण अपने सकल बन्धु-बान्धवों के साथ समवशरण में आये और भगवान् को नमस्कार कर बैठ गये ॥७६॥

इस प्रकार पुराणसारसंग्रह के आर्या बद्ध छंद में अरिष्टनेमिनाथ चरित में केवलज्ञान नामका चतुर्थ सर्ग समाप्त हुआ।

*****

पंचम सर्ग

अथानन्तर उस सभा में देवकी ने जिनेन्द्र भगवान् से पूछा कि हे स्वामिन्! आज मैंने संघ में चलने वाले, पापनाशकारी मुनियों के जोड़े को तीन बार घर में आया हुआ देखा है। क्या मेरे घर में लपसी (आहार) के लिए वे ही मुनि बहुत बार आ सकते हैं या नहीं? अथवा मैंने ही उन मुनियों को समान रूप होने से, तीनों बार एक सा ही समझ लिया है। उनमें मेरा पुत्र-जैसा स्नेह हो रहा है, तो क्या भगवान् ! उनसे मेरा कोई पूर्व जन्म का सम्बन्ध है? तब गणधर ने उत्तर दिया कि हाँ ये छहों मुनि तेरे ही पुत्र हैं॥१-३॥ भद्रिलपुर में उनका पालन-पोषण हुआ है और उन सबने एक साथ ही मुझ से दीक्षा ले ली है अन्त में वे सभी मोक्ष जावेंगे। और तुम भी दीक्षा लेकर अच्युत स्वर्ग जाओगी॥४॥

तदनन्तर सत्यभामा ने गणधर से अपने पूर्वभव पूछे और उनने भी उस विनयावत रानी के पूर्वभव इस प्रकार कहे॥५॥ इसी भारतवर्ष के भद्रिलपुर नगर में मरीचि नाम के ब्राह्मण को उसकी कपिला नामकी पत्नी से मुण्डशालायन नामका पुत्र हुआ, जो कि काव्यशास्त्र का विख्यात पण्डित था। वहाँ का राजा मेघरथ था तथा उसकी रानी कमलश्री थी। एक बार उस राजा के मन में सन्देह होने से अपने मंत्री सत्यक से पूछा कि परलोक है कि नहीं? तब उसने उत्तर दिया कि हमारे शहर में मुण्डशालायन नाम का एक विद्वान् रहता है वह अनेक शास्त्रों को जानने वाला है, अच्छा हो हम उसे ही बुलाकर पूछें। तब राजा ने बुलाकर पूछा किन्तु उस लोभी ब्राह्मण ने कुदानों - गौ, भू, कन्या - को ही परलोक में सुख देने वाला बतलाया। उस पर उस राजा ने परलोक में सुख की अभिलाषा से ब्राह्मणें के लिए श्रद्धा पूर्वक गौ, भू, हिरण्य और कन्या आदि दान में दिये। सब लोगों ने भी उसका अनुसरण किया॥६-१०॥ इस प्रकार उस लोभी ब्राह्मण ने नवमें तीर्थंकर के तीर्थ काल के विच्छेद के समय कुदानों का उपदेश दिया, और उस पाप फल के कारण सातवें नरक में गया॥११॥

तदनन्तर वहाँ से निकलकर अनेक बार नरक तिर्यञ्च गतियों में भ्रमण कर वह मनुष्य भव में आया और गन्धवती नदी के किनारे गन्धमादन पर्वत पर पर्वतक नाम का भील हुआ। उसकी स्त्री का नाम बल्लरी था। एक समय वहाँ श्रीधर और धर्म नाम के दो चारण मुनि आये, उनसे उसने धर्मोपदेश सुनकर प्रोषध व्रत धारण

किया और अन्त में मरण कर विजयार्ध पर्वत की अलका नगरी में राजा महाबल और रानी ज्योतिर्माला से हरिवाहन नाम का छोटा पुत्र हुआ। उसके बड़े भाई का नाम शतबली था। एक समय राजा ने श्रीधर मुनि के पास धर्मोपदेश सुनकर विरक्त हो अपने दोनों पुत्रों को राज्य देकर, दीक्षा ले ली और अन्त में मोक्ष प्राप्त किया ॥१२-१६॥

एक समय हरिवाहन को उसके भाई ने झगड़ा कर निकाल दिया। इसलिए वह भगली देश के अम्बुदावर्त पर्वत पर श्रीवर्मा और अनन्तवीर्य नामके दो गगनचारी मुनियों का शिष्य हो गया। और तपस्या कर ईशान स्वर्ग में देव हुआ। अन्त में वहाँ से च्युत होकर वह इसी विजयार्ध पर्वत के रथनूपुर चक्रवाल नगर में राजा सुकेतु और स्वयम्प्रभा रानी से उनकी पुत्री सत्यभामा हुई हो। तुम्हारे पिता ने संभिन्न नामके ज्यातिषी की सलाह से तुम्हें मथुरा लाकर बड़े उत्सव के साथ कृष्ण के साथ विवाह दिया ॥१७-२०॥ अब तुम इस जन्म में तपस्या कर फिर देव होओगी और वहाँ से अवतरित हो, राजा होकर अन्त में मोक्ष जाओगी। इसके बाद रूक्मिणी ने भी अपने पूर्व-भव पूछे। तब गणधर ने इस प्रकार कहा कि ॥२१॥

इसी भारत वर्ष में मगध देश के लक्ष्मी ग्राम में सोमदेव नामक ब्राह्मण रहता था और लक्ष्मीमती उसकी सुन्दरी पत्नी थी ॥२२॥ एक समय वह अपने चेहरे को दर्पण में देख रही थी कि उसी समय भिक्षा के लिए, तप से अत्यन्त दुबले-पतले समाधिगुप्त नामके एक मुनि वहाँ आये पर इसने अपने (रूप के) अभिमान के कारण घृणापूर्वक तिरस्कार कर दिया। इससे उसे निरन्तर बढ़ने वाला उदुम्बर कोढ़ हो गया। जिसके सन्ताप से वह अग्नि में जलकर मर गई ॥२३-२४॥ और आर्तध्यान के कारण गधी हुई। फिर नमक के अधिक बोझ लादने से मरकर राजगृह में खेल नामक मनुष्य के यहाँ शूकरी हुई। फिर वहाँ से मरकर मण्डूक ग्राम में त्रिपद नामके मछुए (मछुआरे) की पत्नी मण्डूकी से पूतिगन्धा नामकी पुत्री हुई। पर पाप के फलस्वरूप उसकी माता ने उसे छोड़ दिया परन्तु उसकी दादी ने उसका पालन किया। एक समय वृक्षों के बगीचें में (रात्रि में) समाधिगुप्त मुनि को देख (ठंड़ से बचाने के लिए) दया भाव से उन्हें जाल से ढँक दिया ॥२५-२७॥ फिर सुबह मुनिराज ने उसे दया भाव से उसके पूर्व भव कहे। जिन्हें सुनकर उसने उन अवधिज्ञानी मुनि की स्तुतिकर श्रावक के व्रतों को धारण कर लिया ॥२८॥ एक समय वह सोपारक नगरी में गई वहाँ उसका आर्यिकाओं से

समागम हुआ। उनके साथ आचाम्लवर्धन नामके प्रोषध व्रत को करती हुई राजगृह गई। वहाँ सिद्धशिला की वन्दना कर नीलगुफा के अन्दर बैठी और जिनदत्ता आर्यिका की सहायता से सन्यास धारण कर मरी जिससे अच्युत स्वर्ग में इन्द्र की गगनवल्लभा नामकी प्रधान इन्द्राणी हुई। वहाँ उसकी पचपन पल्य की आयु थी॥२९-३१॥

फिर वहाँ से अवतरित हो विदर्भ देश के कुण्डिनपुर नगर में राजा भीष्म और रानी श्रीमती से रुक्मी की बहिन तुम-रूक्मिणी नाम से विख्यात हुई हो। कृष्ण तुम्हारे आशय -प्रेम को जानकर विवाह के समय आकर और तुम्हारे भाई को जीतकर हे भद्रे! तुम्हें ले गया। अब तुम तपकर देव होओगी और यहाँ से तीसरे भव में मोक्ष जाओगी। इसके बाद जाम्बवती ने भी अपने पूर्व जन्म पूछे और गणधर ने इस प्रकार कहा॥३२-३४॥

इसी जम्बूद्वीप के पूर्व विदेह क्षेत्र में पुष्कलावती देश में वीतशोका नाम की नगरी थी। वहाँ देविल नामका एक गृहस्थ था। उसकी पत्नि का नाम देवमती तथा पुत्री का नाम यशस्वती था उसने कन्या का विवाह सुमित्र नामके किसी गृहपति के पुत्र से कर दिया। थोड़े दिनों बाद उसका पति परदेश गया और वहीं मर गया जिससे उसे बड़ा दुख हुआ। तब जिनदेव नामके किसी जैन मुनि ने उसे सम्यक्त्वका उपदेश दिया, पर वह उत्तम जैन तत्त्वों पर श्रद्धा न कर लौकिक (बाहिरी) दान उपवास आदि करने लगी। अन्त में मरकर मेरु पर्वत के नन्दन वन में नन्दन नामक यक्ष की यक्षिणी हुई॥३५-३८॥ वहाँ उसने चौरासी हजार सागर तक व्यन्तर देवों के दिव्य भोगों को भोग कर वहाँ से च्युत हो संसार में चिरकाल तक भ्रमण किया॥३९॥

इसके बाद जम्बूद्वीप में ऐरावत क्षेत्र के विजय पुर नगर में राजा बन्धुषेण और रानी बन्धुमती से उनकी बन्धुयशा नाम की प्यारी पुत्री हुई। वहाँ उसने जिनदेव की पुत्री श्रीमती से पञ्च नमस्कार मंत्र और प्रोषध व्रत ग्रहण किये और अन्त में प्राण त्याग कर कुबेर की पत्नी स्वयम्प्रभा हुई॥४०-४१॥ फिर स्वर्ग से अवतीर्ण हो इसी जम्बूद्वीप के पूर्व विदेह में पुण्डरीकिणी नगरी में राजा वज्रमुष्टि और रानी सुभद्रा से सुमति नामकी पुत्री हुई। एक दिन उसने सेठ के घर में सुदर्शना नामकी आर्यिका से श्रावकों के व्रत लिये। तथा रत्नावली व्रत को विधिपूर्वक पालकर अंत में मरकर ब्रह्म स्वर्ग में इन्द्र की इन्द्राणी हुई। वहाँ उसकी सतरह पल्य की

आयु थी। फिर वहाँ से भी अवतरित हो विजयार्ध पर्वत की दक्षिण श्रेणी में जाम्बव नगर के राजा जाम्बव और रानी जम्बूसेना से तुम जाम्बवती नामकी पुत्री विद्याधरों में विख्यात हुई हो॥४२-४५॥ और कृष्ण ने नारद की प्रेरणा से तथा गरूडवाहिनी विद्या के बल से तुम्हारे पिता को युद्ध में जीत कर तुमसे विवाह किया। इसके बाद सुसीमा ने भी अपने पूर्व भव पूछे, तब उसे भी गणधर ने इस प्रकार कहा॥४६-४७॥

धातकी खण्ड द्वीप में पूर्व मेरु के विदेह क्षेत्र में मंगलावती देश की रत्नसंचया नगरी में विश्वसेन नामका राजा रहता था। उसे किसी समय अयोध्या नगर के राजा पद्मसेन ने हरा दिया (इससे उसकी रानी को बहुत दुख हुआ)। तब उसके मंत्री सुमति नामके जैन श्रावक ने उसे धर्मोपदेश दिया। पर वह मोहनीय कर्म के उदय से सम्यक्त्व को बिना धारण किये ही अणुव्रतों को पालन कर अपने पति के शोक से मरकर ज्वलनवेगा नामकी व्यन्तरी हुई। जो कि जम्बूद्वीप के विजय द्वार के अधिष्ठाता विजय देवी की पत्नी थी॥४८-५१॥ वहाँ दश हजार वर्षों तक सुखोपभोग कर संसार में बहुत समय तक भटकती फिरी, फिर वहाँ से आकर जम्बूद्वीप के पूर्व विदेह क्षेत्र में सीता नदी के पूर्व तट पर,रम्य नामक देश के शालि ग्राम में यक्षिल नामके गृहस्थ की पत्नी देव सेना के गर्भ से पुत्री हुई । वह यक्ष के प्रसाद से हुई थी तथा यक्षी के समान आँखों को प्रिय थी, इस लिए उनका नाम यक्षी रखा गया॥५२-५४॥

एक समय वह अपने देवता को पूजने के लिए यक्ष मन्दिर में गई थी। वहाँ उसे धर्मसेन नामके मुनिराज मिले जिनसे उसने उत्तम धर्मोपदेश सुने। फिर उनकी पूजा कर बड़ी भक्ति के साथ उन्हें आहार दान दिया। किसी समय वह अपनी सखियों के साथ क्रीड़ा करने के लिए विमलगिरि पर्वत पर गई पर वहाँ अकाल वृष्टि से पीड़ित होकर बड़ी गुफा में घुस गई पर जहाँ आकर एक सिंह ने उसे शीघ्र ही खा लिया जिससे उसने अपने प्रिय प्राणों को त्यागा॥५५-५७॥ फिर वहाँ से वह हरि क्षेत्र में उत्पन्न हुई। वहाँ दो पल्य तक भोगोपभोग भोगकर च्युत हुई और चारों ओर मनोहर प्रकाश फैलाती हुई ज्योतिषी देवों में देवी हुई। वहाँ अर्ध पल्य प्रमाण भोगों को भोग कर वहाँ से च्युत हुई और यहाँ जम्बूद्वीप के पूर्व विदेह में पुष्कलावती देश के वीत शोका नगरी के राजा अशोक और रानी श्रीमती से श्रीकान्ता नामकी पुत्री हुई जो कि दूसरी लक्ष्मी के समान ही अतिरूपवती थी॥५८-६०॥ एक

समय उसने जिनदत्ता आर्यिका के पास धर्मोपदेश सुनकर दीक्षा ले ली और कनकावलि तप करने लगी और अन्त में मरकर महेन्द्र स्वर्ग में इन्द्राणी हुई ॥६१॥ वहाँ ग्यारह पल्य तक शरीर सुख भोग वहाँ से भी अन्त में अवतरित हो सुराष्ट्र देश के गिरिनगर में राजा राष्ट्रवर्धन और रानी सुज्येष्ठा की पुत्री तुम सुसीमा नाम से प्रसिद्ध हुई हो। एक समय तुम व्रत की पारणा कर आशीर्वाद पाकर बैठी थी कि तुम्हारे पिता से क्रुद्ध होकर नारद ने तुम्हारे सौन्दर्य की चर्चा कृष्ण से की। यह सुनकर कृष्ण वहाँ आये और तुम्हारे पिता को जीतकर उन्होंने तुमसे विवाह कर लिया ॥६२-६४॥ तुम्हारी भी उसी तरह से (तीसरे भव में) मुक्ति होगी। इसके बाद लक्ष्मणा ने अपने पूर्व भव पूछे, तब गणधर ने उत्तर दिया-

पूर्व विदेह के कच्छकावती देश में सीतोदा नदी के उत्तर तट में अरिष्टपुर नामके नगर में इन्द्र के समान वासव नामका राजा रहता था। उसकी पट्टरानी का नाम सुमति था ॥६५-६६॥ एक समय राजा अपने रनिवास के साथ सहस्राम्रवन में अपने शिष्यों सहित विराजित सागरसेन मुनि के पास गया और उनसे धर्मोपदेश सुनकर विरक्त हो गया तथा अपने पुत्र वसुषेण का राज्याभिषेक कर दीक्षा ले ली, पर नारी ने अपने पुत्र के स्नेह से दीक्षा नहीं ली। एक दिन रनिवास में सोमश्री नाम की आर्यिका आई। उनकी रानी ने पूजा करके आहार दान दिया और उससे धर्मोपदेश सुना ॥६७-६९॥ (पर वह आर्यिका न हो सकी) तथा अपने पुत्र और पति के वियोग से वह अत्यन्त दुःख के साथ मरी और भीलनी हुई। एक समय उसने नन्दिभद्र नाम के चारण मुनि को पा उनसे अपने पूर्व जन्म की बात पूछी । तब उन मुनिराज ने अवधिज्ञान के बल से उसे कहा कि तुम राजा वासव की रानी थी ॥७०-७१॥ यह सुनते ही उसे जाति स्मरण हो आया और तीन दिन का उपवास कर मरण किया और नारद देव की मेघमालिनी नामकी देवी हुई ॥७२॥ वहाँ से च्युत होकर इसी भरत क्षेत्र के विजयार्ध पर्वत की पूर्व श्रेणी में चन्दनपुर के राजा महेन्द्र और अनुन्धरी रानी से कनकमाला नामकी पुत्री हुई ॥७३॥ फिर उसने स्वयंवर में महेन्द्र नगर के विख्यात कीर्ति राजा हरिवाहन विद्याधर को वरण कर उसकी रानी हुई ॥७४॥

एक समय वह जिन-चैत्यालयों की पूजा करने को सिद्धकूट पर्वत पर गई। वहाँ चारण मुनि से अपने पूर्व जन्मों को सुन, श्रेष्ठ मुक्तावली तप को करके अन्त में उपवास से मरण कर सनत्कुमार स्वर्ग में इन्द्र की इन्द्राणी हुई और नव पल्य

तक भोगोपभोगों को भोगकर, फिर वहाँ से च्युत होकर सोपारपुर नगर में राजा श्लक्ष्णरोम और रानी कुरुमती से तुम लक्ष्मणा नामकी पुत्री हुई हो। एक समय दक्षिण समुद्र से लौटते हुए अनलवेग नामके विद्याधर ने तुम्हें देख कृष्ण के पास आकर कहा। कृष्ण ने भी तुम्हारे दुष्प्रसह एवं द्रुमसेन नामके भाइयों को युद्धों में हराकर तुमसे विवाह किया और तुम्हारी बड़ी बहिन सुलक्षणा से बलराम ने विवाह किया। तेरी भी मुक्ति उसी तरह (तीसरे भव में) होगी। इसके बाद गान्धारी ने भी अपने भव पूछे जाने पर गणधर ने कहा ॥७५-७९॥

इसी जम्बूद्वीप के कोशल देश में अयोध्या का राजा रूद्रधाम था जिसके देवाङ्गनाओं के समान सुन्दरी विनयश्री नामकी रानी थी। एक समय उस रानी ने राजा के साथ सिद्धार्थ वन में जाकर श्रीधर नाम के मुनि को आहार दान दिया। उस पुण्य के बल से, मृत्यु के बाद वह उत्तरकुरु में पैदा हुई ॥८०-८१॥ वहाँ तीन पल्य पर्यंत अतुलनीय भोगों को भोगकर अन्त में मरकर ज्योतिषी देवों के इन्द्र चन्द्र की प्रधान देवी हुई जहाँ उसकी आयु पल्य के आठवें भाग थी ॥८२॥ फिर वहाँ से आयु पूर्ण कर च्युत हुई और उस समय भारतवर्ष के विजयार्ध पर्वत की उत्तर श्रेणी में गगन वल्लभ नगर का विद्यद्वेग राजा था और विद्युन्मति उसकी रानी थी, उनके अमितवाहन की प्यारी बहिन के रूप में विनयश्री नाम की पुत्री हुई जो कि विनयलक्ष्मी का साक्षात् अवतार थी ॥८३-८४॥ फिर उसका विवाह नित्यालोकपुर के राजा महेन्द्र विक्रम विद्याधर से कर दिया गया। एक सयम राजा महेन्द्र विक्रम को, मेरु पर्वत पर दो चारण मुनि मिले। उनके चरणों में बैठकर धर्मोपदेश सुनने से उसे वैराग्य हो गया। फिर उस वीर ने अपने पुत्र हरिवाहन का राज्याभिषेक कर तथा विनयश्री को त्याग दीक्षा ले ली। विनयश्री भी सर्वतोभद्र नामक उपवास करके अन्त में समाधिमरण पूर्वक मरी और सौधर्म इन्द्र की इन्द्राणी हुई जहाँ उसकी आयु पाँच पल्य की थी ॥८५-८७॥ इसके बाद वहाँ से अवतरित हो वह गान्धार देश के पुष्कलावती नामके नगर में राजा इन्द्रगिरि और रानी मेरुमती से-हे कल्याणि! तुम्हीं (गांधारी नामक) पुत्री हुई हो। तुम्हारे भाई प्राहिमगिरि ने तुम्हें हयपुर के राजा सुमुख को देना चाहा था, पर कृष्ण नारद के कहने से, युद्ध में उसे (प्राहिमगिरि को) मारकर तुम्हें ले आया ॥८८-८९॥ तुम्हारी भी मुक्ति उसी तरह (तीसरे भव में) होगी। तब गौरी ने भी गणधर से अपने पूर्व भव पूछे। गणधर ने उत्तर दिया कि-

इसी भरत क्षेत्र के उत्तरकुरु देश में गजपुर नामका नगर था ॥९०॥ वहाँ धनदेव नामका एक सेठ था और उसकी यशस्विनी नामकी श्रेष्ठ पत्नी थी। एक दिन वह महल की छत पर बैठी थी कि उसने आकाश से जाते दो चारण मुनियों को देखा। इससे उसे जातिस्मरण हो आया कि मैं धातकी खण्ड द्वीप के पूर्व मन्दिर के पश्चिम विदेह क्षेत्र में अशोकपुर के सेठ आनन्द की नन्दयशा नामकी अत्यन्त प्यारी पत्नी थी। एक दिन मैंने अपने पति के साथ अमितसागर मुनि को दान देकर (देवकृत) सम्मान पाया था ॥९१-९३॥ एक दिन मैंने और मेरे पति ने विषमिश्रित वर्षा के पानी को पी लिया जिससे मरकर देवकुरु में अवतीर्ण हुई और वहाँ से मरकर ईशान स्वर्ग के इन्द्र की आभ्यन्तर सभा की देवी हुई और वहाँ से च्युत होकर यहाँ मैं यशस्विनी हुई हूँ। यह जानने के बाद उसने एक समय सिद्धार्थ वन में सुभद्रा नाम के मुनि की वन्दना कर उनसे प्रोषध व्रत ले लिये और वहाँ से मरण कर स्वर्ग में फिर से इन्द्र की भीतरी परिषद की देवी हुई ॥९४-९६॥ वहीं पांच पल्य की आयु तक भोगों को भोग वहाँ से च्युत हुई। और वत्स देश की कौशाम्बी नामकी नगरी में सुभद्रा सेठ और सुमित्रा सेठानी से धर्ममती नामकी पुत्री हुई। एक समय उसे गुणवती जिनमति नामकी आर्यिका मिलीं उनसे (धर्मोपदेश सुनकर) जिनेद्र गुण सम्पत्ति नामका व्रत धारण कर लिया ॥९७-९८॥ फिर चार आराधनाओं का आराधन कर मृत्यु के बाद महाशुक्र स्वर्ग में इन्द्र की इन्द्राणी हुई और वहाँ इक्कीस पल्यों तक सुखों का भोग किया ॥९९॥

वहाँ से च्युत होकर तुम यहाँ वीतशोका नगरी में राजा मेरुचन्द्र और रानी चन्द्रमति से गौरी नामकी पुत्री हुई हो ॥१००॥ हे भद्रे! तुम्हारे माता-पिता विजयपुर के राजा विजयानन्द से तुम्हारा विवाह कर रहे थे। पर जब यह बात कृष्ण को मालूम हुई तो उसने युद्ध कर बलपूर्वक तुमसे विवाह किया ॥१०१॥ तुम भी उसी तरह मुक्ति पाओगी। इसके बाद पद्मावती ने अपने पूर्वभव पूछे तो उन्होंने कहा-

इसी भारत वर्ष में अवन्ति देश की उज्जयिनी नगरी में अपराजित नामका राजा था। उसकी रानी विजया से विनयश्री नामकी एक पुत्री थी ॥१०२-१०३॥ राजा ने हस्तिशीर्ष नगर के राजा हरिषेण से अपनी पुत्री विवाह दी। एक समय विनयश्री ने अपने पति के साथ वरदत्त नामके मुनिको आहार दान दिया ॥१०४॥ किसी दिन वह भीतरी कमरे में अपने पतिके साथ सो रही थी कि अगुरूधूप के धुँए से दोनों की मृत्यु हो गई और वह हैमवत क्षेत्र में उत्पन्न हुई। वहाँ एक पल्य वर्षों तक भोग

भोगकर वहाँ से भी मरण कर ज्योतिषी देवों में चन्द्रमा की चन्द्र प्रभा नामकी रानी हुई जहाँ उसकी अर्धपल्य की आयु थी। वहाँ से च्युत हो इसी भरत क्षेत्र के मगध देश में शाल्मलिखण्ड ग्राम में जयदेव गृहस्थ और उसकी पत्नी से पद्मदेव की छोटी बहिन पद्मदेवी नामकी पुत्री हुई। उसने एक दिन वरधर्म नामके मुनि को नमस्कार कर बिन जाने फलों को कभी न खाने का व्रत ले लिया ॥१०५-१०८॥

एक समय चण्डबाण नामके एक भील ने उस ग्राम पर चढ़ाई कर दी और पद्मदेवी को कैद कर लिया तथा काम सेवन करने की इच्छा से अपनी पत्नी बनाने के लिए उसे तंग करने लगा ॥१०९॥ परन्तु वह अपने शीलव्रत को पालन करती हुई उसकी पत्नी न बनी। किसी समय राजगृह राजा सिंहरथ ने अपने बलवान् सैनिक को भेजकर उस भील को मरवा डाला ॥११०॥ उसके मर जाने पर उसके अधीन लोग विषैले वृक्षों के फल खाकर रास्ता भूल, भटकने लगे पर (अनजान फल न खाने का) व्रत धारण करने वाली पद्मदेवी ने रास्ते में कुछ भी नहीं खाया ॥१११॥ इस प्रकार त्याग से शरीर छोड़ हैमवत क्षेत्र में भोग भूमिया हुई और एक पल्य तक जीवित रह अनेक सुखों को भोगा। फिर वहाँ से मरकर स्वयम्भूरमण द्वीप के स्वयम्भूरमण पर्वत पर व्यन्तरों के इन्द्र की स्वयम्प्रभा नामकी देवी हुई ॥११२-११३॥ फिर वहाँ से च्युत होकर इसी भरत क्षेत्र के जयन्त नगर में राजा श्रीधर और रानी श्रीमती से विमल शोभावाली विमला नामकी पुत्री हुई ॥११४॥ उसका विवाह मलयदेश में भद्रिलपुर के राजा मेघनाद से कर दिया गया। उससे जगत में प्रसिद्ध मेघघोष नामका पुत्र उत्पन्न हुआ ॥११५॥ कुछ दिनों के बाद विमलश्री के पति का स्वर्गवास हो गया इससे उसने पद्मावती आर्यिका के समीप दीक्षा लेकर आचाम्लवर्धन नामक तप को करके अन्त में आराधनाओं का आराधन कर सहस्रार स्वर्ग के इन्द्र की इन्द्राणी हुई। और वहाँ उसने सत्ताइस पल्य की आयु तक देवाङ्गनाओं के सुख भोगे ॥११६-११७॥ वहाँ से च्युत होकर अरिष्टपुर राजा हिरण्यनाभ और रानी श्रीमती से हे सुन्दरि ! तुम पद्मावती नामकी सुन्दर पुत्री हुई हो और स्वंयवर में तुमने कृष्ण को वरण किया। तुम्हारा भी मोक्षगमन उसी प्रकार होगा। ऐसा कहने पर वे आठों ही देवियाँ प्रसन्न हो गणधर की स्तुति करने लगीं ॥११८-११९॥

उस समय अन्य यादवों ने भी अपने पूर्व-जन्म के वृत्तान्त सुने और कुछ ने सम्यक्त्व धारण किया एवं कुछ ने श्रावक-व्रत धारण किये। तथा हाथ जोड़ गणधर को नमस्कार किया ॥१२०॥ समवसरण में उपस्थित अन्य सब लोग भी

भगवान् को प्रणाम कर अपने अपने निवास स्थान पर चले गये और भगवान् भी संघ सहित भव्य प्राणियों के कल्याण करने के लिए फिर से अनेक देशों में भ्रमण करने लगे॥१२१॥

एक दिन भगवान् पहले के समान ही गिरनार पर्वत पर आकर देवताओं के बीच (समवसरण में) विराजमान थे। वहाँ बलदेव ने भगवान् को प्रणामकर पूछा॥१२२॥ कि हे भगवन्, कुबेर के द्वारा बनाई गई, तथा कृष्ण की भुजाओं से परिपालित और हम लोगों को अविनाश स्वरूप मालूम होने वाली यह द्वारिका पुरी कब नष्ट होगी?॥१२३॥ इस प्रश्न पर भगवान् ने कहा कि तुम, आज से बारहवें वर्ष में शराब पीकर मत्त यादवों से क्रोधित हुए द्विपायन मुनि के द्वारा इस नगरी को भस्म हुई देखोगे॥१२४॥ और कृष्ण कौशाम्ब नामके वन में जरत्कुमार के द्वारा मारे जायेंगे तथा मर कर नरक गति जायेंगे और फिर भावी तीर्थंकर होंगे॥१२५॥ और तुम सिद्धार्थ नामक देव से संबोधित हो भाई के वियोग से उत्पन्न शोक को छोड़ोगे। और दीक्षा लेकर बासठ वर्ष तक उग्र तप करोगे॥१२६॥ एवं अन्त में ब्रह्म स्वर्ग के इन्द्र होवोगे जहाँ तुम्हारी आयु दश सागर की होगी। फिर वहाँ से च्युत हो अगली उत्सर्पिणी में मोक्ष जाओगे॥१२७॥ इस तरह जिन भगवान् और उनके गणधर के वचनामृत को सुनकर बलराम ने भगवान् को प्रणाम किया और अपने भाइयों, पत्नियों और सेना के साथ लौटकर अपने नगर की देखभाल करने लगा॥१२८॥

भगवान् नेमिनाथ के संघ में ग्यारह गणधर थे तथा पूर्वाङ्ग वेत्ता चार सौ थे, पन्द्रह सौ अवधिज्ञानी मुनि थे, विपुलमतिज्ञान के धारी तथा ब्रह्मतेज से प्रकाशित मुनि नौ सौ थे तथा केवलियों की संख्या पन्द्रह थी, विक्रियाऋद्धि धारी मुनि ग्यारह सौ थे और प्रतिवादियों के दर्प को नष्ट करने वाले वादी मुनि आठ सौ, तथा शिक्षक मुनि ग्यारह हजार आठ सौ थे। मुनियों की सभा में अठारह हजार मुनि थे तथा आर्यिकाएँ चालीस हजार, और श्रावक एक लाख तथा श्राविकाएँ तीन लाख थीं॥१२९-१३३॥

वे जिनेन्द्र भगवान् इस तरह भव्य जीवों को सकलधर्म अर्थात मुनिधर्म और देश धर्म अर्थात् श्रावक धर्म का उपदेश देते हुए संघ के साथ विहार करते थे। और अन्त में गिरनार पर्वत पर आकर विराजमान हुए॥१३४॥ वहाँ आषाढ़ शुक्ल सप्तमी के दिन पाँच सौ छत्तीस मुनियों के साथ मन, वचन और काय इन तीन

योगों का निरोधकर रात्रि के पूर्व प्रहर में ही अयोगि पद पाकर फिर मोक्ष पद प्राप्त किया। सम्पूर्ण कर्मों का विनाशकर जिनेन्द्र भगवान के मोक्ष चले जाने पर वहाँ उस समय सभी इन्द्रों ने आकर अति आदर भाव से नाना प्रकार की सुगन्धित माला आदि से भगवान के शरीर की पूजा की ॥१३५-१३७॥ अग्निकुमार देवों के इन्द्र ने अपने मुकुट मणि से उत्पन्न अग्नि से भगवान् के शरीर का अग्नि-संस्कार किया, फिर इन्द्र उसे सुगन्धित जल और अक्षत आदि के साथ (क्षीर सागर के जल में) समर्पित कर आये ॥१३८॥ इन्द्र ने भव्य जीवों के हित के लिए वहाँ शिला पर अपने वज्र से भगवान् के लक्षण (चिन्ह) की रेखा बना दी। वह पवित्र रेखा आज भी सुशोभित हो रही है॥१३९॥ इस प्रकार इन्द्रों सहित चारों निकायों के देव भगवान् के अन्तिम (मोक्ष) कल्याणक की पूजा से अपने हृदयों को पवित्र कर स्वर्ग लोक चले गये ॥१४०॥ भगवान्! के गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान और मोक्ष इन पाँचों मङ्गल कल्याणकों में चित्रा नाम का नक्षत्र था। उन्होंने कुमारावस्था में तीन सौ वर्ष तक दिव्य भोग भोगे और कुछ कम सात सौ वर्ष केवली होकर बिताये और एक हजार सात सौ तेरासी वर्षों तक भगवान् के तीर्थ काल का विच्छेद रहा ॥१४१-१४३॥

मैं उन नेमिनाथ भगवान् को शिर झुकाकर प्रणाम करता हूँ जिनने कि कर्ममल के समूह को नष्ट कर दिया है, जो निर्वाण रूपी सत्पथ के प्रणेता हैं तथा जिनके चरणों की तीन लोक पूजा करता है॥१४४॥ इस प्रकार मैंने उन महात्मा की नामावली पूर्वक स्तुति की वे बाईसवें तीर्थकर अर्हन्त देव मुझे मोक्ष निवास देवें ॥१४५॥ जो कोई भव्य पुरुष संक्षेप से आर्याछन्द में रचित इस सुनने योग्य चरित को सुनता और सुनाता है, वह शीघ्र ही मोक्ष पद पाता है॥१४६॥

इस प्रकार पुराणसार संग्रह के नेमिचरित में भगवान् का निर्वाणगमन नामक पाँचवा सर्ग समाप्त हुआ।

*****

श्री पार्श्वनाथ चरित

प्रथम सर्ग

मैं पार्श्वनाथ जिनेन्द्र को नमस्कार करता हूँ। वे अनेक देवों से वन्दनीय, केवलज्ञान-सम्पन्न तथा मोक्ष-सुख को देने वाले हैं॥१॥ गणधर सुधर्म स्वामी ने महात्मा जम्बू स्वामी से भगवान् पार्श्वनाथ का चरित कहा था। भक्ति वश मैं उसे संक्षेप में कहता हूँ॥२॥ दशवें भव से प्रारम्भ कर इस पुराण को स्फुट शब्दों में, पापों की शान्ति के लिए ही श्रद्धावश मैंने कहा है। बुद्धिमान लोग इसे सुनें॥३॥

इसी जम्बू द्वीप में भरत क्षेत्र के सुरम्य नामके देश में पौदनापुर नामका नगर है। वहाँ कमलों के समान नेत्रवाला अरविन्द नामका राजा था॥४॥ वह अपनी प्रभा सूर्य के समान, कान्ति से चन्द्रमा के समान, स्थिरता से मेरु पर्वत के समान, स्नेह से काम के समान तथा बुद्धि से बृहस्पति के समान था॥५॥ उसके श्यामला नाम से प्रसिद्ध रानी थी, जो रूप, लावण्य, सौभाग्य, कला तथा गुणों से ऐसी मालूम पड़ती थी जैसे रति हो॥६॥

उस राजा का विश्वभूति नामका ब्राह्मण पुरोहित था, जिसकी चित्त हरने वाली ब्राह्मणी पत्नी का नाम अनुन्दरी था। उन दोनों के कमठ और मरुभूति नामके दो पुत्र थे। मरूभूति को सुन्दर रूपवती वसुन्धरा नामकी पत्नी थी तथा कमठ को ब्राह्मण कुल में उत्पन्न वारुणी नामकी पत्नी थी। उन सबका समय पूर्व पुण्य के कारण बहुत समय तक अच्छी तरह सुख से व्यतीत हुआ॥७-९॥ विश्वभूति ने राजा की सलाह से, अपनी मृत्यु के बाद अपने दोनों पुत्रों में से योग्य पुत्र मरुभूति को अपने पद पर रख दिया॥१०॥ वह मरुभूति भोग, धन-धान्य, ऐश्वर्य, रूप तथा बुद्धि से राजा को सदा प्यारा था॥११॥

एक समय वज्रधीर नामके राजा को दण्ड देने के लिए मरुभूति अपने राजा के साथ नगरी से बाहर दूसरे देश गया हुआ था कि उसके भाई निर्लज्ज कमठ ने काम के वशीभूत हो, अपने मित्रों के द्वारा रोके जाने पर भी अपने छोटे भाई मरुभूति की पत्नी वसुन्धरा के साथ काम सेवन किया॥१२-१३॥ इधर राजा अरविन्द अपने शत्रु वज्रधीर नामक राजा को युद्ध में जीतकर लौटा तो वह कमठ की दुष्टता को

सुन उस पर अत्यन्त क्रुद्ध हुआ और वसुन्धरा के साथ दुराचार करने के कारण उसे राज्य से निकाल दिया। तब उसने संसार को बढ़ाने वाली, पाखण्डी साधुओं की दीक्षा ले ली॥१४-१५॥

एक समय मरुभूति, राजा से रोके जाने पर भी अपने कर्मोदय के वशीभूत हो, अपने बड़े भाई को देखने की इच्छा से उस स्थान को ढूँढता हुआ वहाँ पहुँचा ॥१६॥ पर ज्यों ही वह बड़े स्नेह के साथ 'क्षमा कीजिए' ऐसा कहता हुआ भाई के पैरों में झुका, त्यों ही कमठ ने उसके सिर पर एक चट्टान दे मारी। इससे मरुभूति आर्तध्यान से मरा और सल्लकी नामके वन में अनेकों हाथियों का मुखिया वज्रघोष नामका हाथी हुआ॥१७-१८॥ कमठ के इस निर्दय व्यवहार से वहाँ तपस्वियों ने उसकी जटाओं को मुड़ाकर आश्रम से निकाल दिया। वह भी चोर बनकर व्याधों (भीलो) के साथ चोरी करता फिरा और युद्ध में मारा गया॥१९॥ तथा उसी सल्लकी वन मे कुक्कुट जाति का सर्प हुआ मरुभूति एवं कमठ की माता अनुन्दरी पापकर्म से वहाँ ही वानरी हुई॥२०॥

इधर राजा अरविन्द ने भी, स्वयंप्रभ मुनिराज के पास स्वर्ग और मोक्ष की सीढ़ी के समान, एवं प्रणियों के हितकारी सत्पुरुषों के धर्म को सुनकर तथा अपने नरेन्द्र नाम के पुत्रको राज्य दे, जिन दीक्षा ले ली। और तपस्या के फल से उसे अवधिज्ञान प्राप्त हुआ॥२१-२२॥ वे बुद्धिमान महामुनि अरविन्द तप के साथ सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित का निरन्तर बहुत समय तक आराधन करते रहे॥२३॥ फिर एक समय संघ के साथ सम्मेद शिखर की वन्दना करने चले। रास्ते में सल्लकी नाम के घोर जंगल में उनका संघ से साथ छूट गया। वहाँ उस वज्रघोष नामके हाथी ने संघ से घोड़े, बैलों तथा गदहों को मार डाला तथा बहुत-सी खाद्य- सामग्री नष्ट कर दी। इससे संघ यहाँ-वहाँ विखर गया॥२४-२५॥ उन मुनिराज ने इस प्रकार के घोर उपसर्ग को देखकर प्रतिज्ञा की कि जब तक उसका अन्त नहीं होता तब तक आहार व शरीर से ममत्व का त्याग है। और कायोत्सर्ग धारण कर धर्मध्यान में अच्छी तरह लवलीन हो गये। तब उस हाथी को उन महाधीर मुनि को देखकर पुण्य कर्म के उदय से जाति स्मरण हो गया॥२६-२७॥ उन मुनिराज ने वज्रघोष पर दयाकर धर्मोपदेश दिया। और वह भी सुखदायक धर्मश्रवण कर उत्कृष्ट श्रावक बन गया॥२८॥ तथा सोचने लगा कि मैंने पाप के कारण यह तिर्यञ्च गति पाई है जहाँ अज्ञान वश भूख, प्यास और भय की बाधाओं से

चिरकाल तक बहुत दुख भोगे हैं॥२९॥ यह समझकर वह संसार से भयभीत हो गया और श्रावक के सभी व्रतों के साथ सम्यग्दर्शन धारण कर प्रोषधोपवास करता हुआ वह हाथी विचरण करने लगा॥३०॥

एक समय प्रासुक भोजन पान से क्षीण शरीर वह हाथी पानी पीने के लिए वेगवती नदी के किनारे गया पर वहाँ ही कीचड़ में फँस गया और उसमें से निकल न सका॥३१॥ क्षीण वेष उस हाथी को देखकर कुक्कुट नामके सर्प ने पूर्व वैर के कारण क्रोध पूर्वक उसे काट लिया और वानरी ने उस सर्प को काट दिया॥३२॥ तब धर्मध्यान में लवलीन हो उस हाथी ने सल्लेखना पूर्वक मरण किया और जिस प्रकार मेघरहित आकाश में इन्द्र धनुष के नाना रंग सहसा प्रकट हो जाते है उसी तरह अवधिज्ञान से संयुक्त हो वह सहस्रार स्वर्ग के स्वयम्प्रभ विमान में उत्तम देव हुआ। वहाँ उसकी देह मूत्रादि से रहित थी तथा वह स्वच्छ आभूषण पहने हुए था। उसका शरीर सदा यौवनयुक्त एवं नीरोग था। इन्द्रियों के इष्ट सुखों का अनुभव करता हुआ वह सम्यक्त्व सम्पन्न जीव अकाल मृत्यु से रहित था तथा पूर्व जन्म में अर्जित पुण्य के कारण सुखपूर्वक रमण करने लगा॥३३-३६॥ अणिमा आदि आठ गुणों से युक्त यह शशिप्रभ नामका देव, देवियों के साथ सुख भोगता हुआ सत्रह सागर तक वहाँ निवास किया॥३७॥

कुक्कुट नामका सर्प भी वहाँ से मरकर पांचवें नरक में गया और वहाँ सत्रह सागर तक अनेक प्रकार के दुख भोगता रहा॥३८॥ वहाँ नारकी लोग उसके अङ्ग-भङ्ग करते, उसे पीस डालते, मार डालते, जला देते एवं फाड़ डालते थे। इस तरह अपने पापकर्म के उदय से वह निरन्तर मारा पीटा तथा छिन्न-भिन्न होता हुआ अनेक दुख पाने लगा॥३९॥ वहाँ उसे सर्प, शार्दूल और सिंह आदि खा जाते थे तथा घनों से कूटा जाता था, जलती हुई लकड़ी (लूकाठो) से मारा जाता था बड़ें-बड़े दाँतों के बीच उसके टुकड़े-टुकड़े किये जाते थे। आरे से उसका सिर छेदा जाता था तथा जीभ उखाड़ ली जाती थी; इसलिए पूर्व संचित पापों से उसने निरन्तर अनेक दु:ख भोगे॥४०-४१॥

उधर वह शशिप्रभ देव, सहस्रार स्वर्ग से च्युत हो, पुष्कारार्ध द्वीप के पूर्व विदेह में विजयार्ध पर्वत के मंगलावती देश में, तिलोत्तमपुर के राजा विद्युद्वेग विद्याधर और उसकी रानी विद्युद्वेगा विद्याधरी से रश्मिवेग नाम का पुत्र हुआ। वह अपने उत्तम बल के लिए प्रसिद्ध था, तथा रुप, लावण्य, शोभा कला आदि गुणों से युक्त

था ॥४२॥ उसकी रानी का नाम वायुवेगा था। उसके साथ वह नाना प्रकार के इष्ट भोग भोगता था जैसे कि देवाङ्गनाओं के साथ देव लोग भोगते हैं ॥४४॥

एक समय राजा विद्युद्वेग ने यशोधर नामक मुनिसे धर्मोपदेश सुनकर संसार से विरक्त हो अपने पुत्रको राज्य देकर दीक्षा ले ली। रश्मिवेग ने भी बहुत समय तक राज्य-लक्ष्मी का उपभोग कर, एक समय गुणधर नामके एक श्रेष्ट तपस्वी मुनिराज के पास जाकर उनकी पूजा की और उनसे धर्मोपदेश सुनकर वह विरक्त हो गया तथा अपने पुत्र को राज्य देकर बहुत से राजाओं के साथ दीक्षित हो गया ॥४६-४८॥ तथा मुनियों के महाव्रतों को धारण कर और पुण्योदय से द्वादशांग वाणी का अध्ययन कर, अपनी शक्तिपूर्वक पञ्च आचारों का पालन करता हुआ बहुत समय तक विचरण करने लगा ॥४९॥

इधर वह कुक्कुट सर्प का जीव नरक से निकल कर पुष्कारार्ध द्वीप के हेम पर्वत पर एक भयंकर अजगर हुआ ॥५०॥ एक समय वे प्रज्ञावान रश्मिवेग मुनिराज घोर वीर तपस्या (सर्वतोभद्र आदि व्रत) करते हुए उसी पर्वत पर कायोत्सर्ग धारण कर निश्चल भाव से खड़े थे ॥५१॥ उस समय वहाँ धर्म ध्यान में लवलीन उन धैर्यशाली मुनिराज को उस अजगर ने देखा तथा भूख से और पूर्व जन्म के वैर के कारण उन्हें एकदम निगल गया ॥५२॥ वे मुनिराज उस समय उत्तम क्षमा से युक्त थे तथा अच्छी तरह सन्यास धारणकर चारों आराधनाओं का आराधन कर अच्युत स्वर्ग में देव हुए ॥५३॥ वहाँ उनका नाम विद्युत्प्रभ देव था जो शुभंकर विमान का स्वामी था जिसकी बाईस सागर की आयु थी; तथा उत्तम व्रत व तप के कारण अणिमा आदि आठ ऋद्धियों से युक्त था; देवों से पूजित हो देवाङ्गनाओं के साथ उसने नाना प्रकार के प्रिय भोगों को भोगा ॥५४-५५॥

उस विशालकाय सर्प ने ऐसा कर बहुत बड़ा पाप किया और पांचवे नरक में फिर जाकर सत्तरह सागर की आयु पाई ॥५६॥ वहाँ से उसने निरन्तर ही नरक सम्बन्धी क्षेत्रज आदि महादुखों को, एवं दुर्गन्धि, भूख, प्यास, भय, छेदन, भेदन, दहन आदि कष्टों को भोगा ॥५७॥

इधर अच्युत स्वर्ग से च्युत हो वह देव पुण्योदय से इसी जम्बूद्वीप के विदेह क्षेत्र में सीतोदा नदी के उत्तर तट पर गन्धमालिनी देश की वीतशोका नगरी में, राजा वज्रधीर और रानी विजया से पुत्र हुआ। उसका नाम वज्रनाभि था तथा रूप,

सौभाग्य आदि सद्गुणों से युक्त था तथा सभी को प्यारा वह शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा के समान सुखपूर्वक बढ़ने लगा ॥५७-६०॥

एक समय उत्तम मतिवाले राज वज्रवीर ने संसार के सभी विषय-भोगों को-राज्य, आयु, यश, शक्ति एवं बुद्धि आदि को इन्द्रधनुष, शरत्कालीन मेघ तथा उल्का पात के समान शीघ्र ही विनाश शील और भोगों को विपाक काल में कटु फल देने वाला एवं प्राप्त करने में दुर्लभ मानकर वैराग्य भावना का श्रद्धा से बार बार अच्छी तरह आराधन किया। तथा मोक्ष के सच्चे सुख देने वाले, जिनेन्द्र भगवान् से कहे गये धर्मोपदेश को सुनकर भोगों से विरक्त हो गया और अपने उत्तम गुणवाले श्रेष्ठ पुत्र वज्रनाभि को राज्य पद देकर अनेक राजाओं के साथ मुनि दीक्षा ले ली। ठीक ही है कि पुण्यवानों को ही राज्य, धनसुख, ज्ञानसुख एवं तप मिलता है॥६१-६२॥

इस प्रकार पुराणसारसंग्रह पार्श्वनाथचरित में वज्रनाभि को राज्य प्राप्ति नाम का प्रथम सर्ग समाप्त हुआ।

*****

द्वितीय सर्ग

वह वज्रनाभि पहले मण्डलीक राजा था। फिर अपने विशेष पुण्य से चक्रवर्ती पद पा राज्य करने लगा॥१॥ उस चक्रवर्ती को निम्न प्रकार की विभूतियाँ उस समय प्रकट हुई। ये चौदह रत्न थे जैसे कि चक्र, तलवार, मणि, चर्म, दण्ड, छत्र और काकिणी (ये सात अजीव रत्न) तथा सेनापति, गृहपति, गजपति, अश्व, स्त्री स्थपति और पुरोहित (ये सात जीव रत्न)। नव निधियाँ थी जैसे कि काल, पद्म, महाकाल, नैसर्प्य, पाण्डु, पिङ्ग, सर्वरत्न, महाशंख और माणव। वह चक्रवर्ती सोलह हजार गण देवताओं और छ्यानवे हजार रानियों से नित्य सेवित था तथा बत्तीस हजार राजाओं के साथ आनन्द से रहता था॥२-५॥ तथा दश प्रकार के भोगों से युक्त हो राज्य करता रहा। एक समय एक वृक्ष का नाश होते देख उसे संसार की भोगोपभोग सम्पतियों में अनित्यादि भावनाओं का बोध हो गया॥६॥ और क्षेमङ्कर मुनिराज के पास महागुणशाली धर्मोपदेश को सुनकर अपने गुणी पुत्र वज्रबाहु को राज्य दे दिया और विरक्त होकर पांच सौ राजाओं के साथ जिन (दिगम्बरी) दीक्षा ले ली और सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यग्चारित्र एवं क्षमा और तप से युक्त हो गया। उस वज्रनाभि ने १२ प्रकार का तप कर बहुत समय तक पृथ्वी पर विहार किया। एक समय विपुल नामक पर्वत पर कायोत्सर्ग धारण कर खड़ा हो गया॥७-९॥

इधर वह अजगर का जीव भी भयंकर नरक से निकलकर भव वन में घूमता फिरा और उसी विपुल पर्वत पर अति निन्दित रूप वाला कुरङ्ग नामका भील हुआ तथा उन मुनिको देखकर वैर भाव से बड़े पैने वाणों से उन्हें छेद किया॥१०-११॥ तब क्षमाशील, महाधैर्यवान्, धर्मध्यान में लवलीन उन मुनिराज ने सन्यास को धारण कर चार आराधनाओं का आराधन किया और प्राण छोड़कर सुभद्र नामके मध्यम ग्रैवेयक में ललितङ्ग नामका देव हुआ। और पुण्योदय से अवधिज्ञान से संयुक्त हो सत्ताईस सागर तक कल्पवासी देवों से अनन्तगुणे सुख को पा कर वासनारहित अहमिन्द्र पद का सुखपूर्वक भोग किया॥१२-१४॥ तथा वह भील भी करुणा हीनता के कारण सातवें नरक में गया और सत्ताईस सागर तक अनेक प्रकार के तीव्रातितीव्र दुःख भोगे। वहाँ उसे सदैव क्षेत्र सम्बन्धी देह से उत्पन्न मानसिक एवं आपस में दूसरे नारकियों से उत्पन्न नाना प्रकार के घोर दुख भोगने पड़े॥१५-१६॥

अथानन्तर जम्बू द्वीप के विदेह क्षेत्र में सीता नदी के उत्तर तट पर सुकच्छा नामके देश में पद्मपुर नामका उत्तम नगर था। वहाँ स्वर्ग से च्युत होकर वह अहमिन्द्र, पुण्योदय से राजा वज्रबाहु और रानी प्रभंकरा का पुत्र हुआ॥१७-१८॥ वह अपने रूप, सौभाग्य एवं सद्गुणों से युक्त हेमाङ्गद नाम से प्रसिद्ध हुआ। उसकी रानी का नाम सुदत्ता था जो कि रूप में रति के समान थी॥१९॥ उसने पुण्योदय से मन को प्यारे पांचों इन्द्रियों के नाना प्रकार के दिव्य भोगों को उस सुन्दर नेत्र वाली के साथ ऐसे भोगता रहा जैसे कोई देव भोगता हैं॥२०॥

कुछ समय बाद राजा वज्रबाहु ने अपने पुत्र हेमाङ्गद को राज्य देकर जिन दीक्षा ले ली। हेमाङ्गद ने भी अच्छी तरह राज्य कर एक समय बादल को नष्ट होते देख सारे विषय-भोंगों को मेघ व जल बुद्-बुद् के समान क्षणभङ्गुर जान, किम्पाक के फल के समान इन्द्रिय विषयों के विपाक की कटुता समझ गया। तथा समुद्रगुप्त मुनिराज के समीप धर्मोपदेश सुनकर भव भ्रमण को मिटाने की इच्छा से अपने पुत्र विमल नाथ को राज्य देकर पाँच सौ राजाओं के साथ सब प्रकार का परिग्रह छोड़कर जिन दीक्षा ले ली॥२१-२४॥ और महाव्रत, शीलव्रत, उत्तम गुण तथा भावनाओं का अपनी शक्ति से अभ्यास करने लगा॥२५॥ तथा समिति, गुप्ति, उत्तम ध्यान और समता का अलाम्बन ले, क्लेश पैदा करने वाले क्रोधादि कषायों, माया, मिथ्या एवं निदान इन तीन शल्यों और पञ्चेन्द्रियों को जीता (वश में किया) तथा सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र से युक्त हो अपनी शक्ति पूर्वक १२ प्रकार के तप को तप कर अवधिज्ञान प्राप्त किया। इसके बाद आदित्य व्रत-द्वादशांगव्रत, उत्तम सर्वतोभद्र तथा सिंहनिष्क्रीड़ित आदि उच्च तप करने लगा॥२६-२८॥ फिर दर्शन विशुद्धि, विनय सम्पन्नता, शक्ति से त्याग तथा संघ की वैयावृत्य, पञ्चपरमेष्ठियों की भक्ति आदि सोलह कारण भावनाओं को आराधन कर, नरलोक, सुरलोक और असुरलोक अर्थात् तीनों लोकों को कम्पन पैदा करने वाली तीर्थंकर नामकी प्रकृति का बन्ध किया॥२९-३०॥ फिर वे मुनिराज घोर तपस्या करते हुए बहुत काल तक विहार करते रहे और तत्पश्चात भूताद्रि पर्वत के क्षीरवन नामक भयंकर जंगल में एक बड़ी शिला के ऊपर कायोत्सर्ग धारण कर धर्म ध्यान में लवलीन हो गये।

इधर वह भील भी नरक से निकलकर उसी पर्वत के क्षीरवन में पाप से पाप को कमाता हुआ भयंकर रूप वाला सिंह हुआ। और मुनि को देखकर पूर्व वैर के

कारण क्रोध से आपे के बाहर हो उन्हें खा गया ॥३१-३३॥ उन मुनि ने अपनी पूरी शक्ति से पञ्चनमस्कार मन्त्र का ध्यान किया और सन्यास धारण कर चारों आराधनाओं का अच्छी तरह आराधन किया ॥३४॥ तथा शरीर त्याग कर प्राणत स्वर्ग का इन्द्र हुआ जहाँ उसकी आयु बीस सागर की थी। वहाँ उसने अपने उत्तम तप के फलस्वरूप निरन्तर मनोहर सुख भोगे ॥३५॥ सिंह ने भी अपने इस खोटे पाप के कारण बहुत पापों का संचय किया तथा चौथे नरक में उत्पन्न हुआ जहाँ उसकी दश सागर की आयु थी ॥३६॥ वहाँ उसने हमेशा दूसरे नारकियों से जलाना, पीटना, छेदन, भेदन, काटना और भक्षण आदि कार्यों से बड़े-बड़े दुःख पाये ॥३७॥

अथानन्तर जम्बू वृक्ष से सुशोभित इसी द्वीप के दक्षिण भाग में शुभ भरत क्षेत्र में स्वर्ग लोक के समान विश्व में विख्यात काशी नाम का देश है। वहाँ श्वेत महलों से युक्त तथा विद्वज्जनों से भरी हुई, दूसरी स्वर्गपुरी-अमरावती के समान वाराणसी नाम की एक भारी नगरी थी ॥३८-३९॥ वहाँ विश्वसेन नाम का राजा था जो तीन शक्ति प्रभुत्व, मंत्र और उत्साह से युक्त तथा बल विभूति आदि से सम्पन्न वह विद्वान राजा इन्द्र के समान प्रसिद्ध था ॥४०॥ उसकी रानी का नाम वामादेवी (ब्रह्मदत्ता) था, जो अपने रूप, कान्ति, कला, शील आदि गुणों से इन्द्राणी के समान विख्यात थी ॥४१॥ इधर प्राणत स्वर्ग के इन्द्र के जीवन काल के जब छह माह शेष रह गये तब देवता जिन भगवान् के भावी माता-पिता की प्रतिदिन वस्त्र, आभूषण, उत्तममाला, सुगन्धित द्रव्य तथा धन आदि की वर्षा से पूजा करने लगे। इस प्रकार जिन भगवान् के माता-पिता का काल पुण्य प्रभाव से सुख पूर्वक बीतने लगा ॥४२-४३॥

एक समय श्री आदि देवियों से अच्छी तरह सेवित वामादेवी (ब्रह्मदत्ता) रानी अपने महल में सुख पूर्वक शय्या पर सो रही थीं कि रात्रि के अन्तिम प्रहर में उसने पुण्योदय से ये शुभ सोलह स्वप्न देखे- १ गजपति, २ वृषभ, ३ सिंह, ४ लक्ष्मी, ५ दो मालाएँ, ६ चन्द्रमा, ७ सूर्य, ८ मीन युगल, ९ दो सुवर्ण कलश, १० पद्म-सरोवर, ११ समुद्र, १२ सिंहासन, १३ विमान, १४ धरणेन्द्र का भवन, १५ रत्नराशि और १६ निर्धूम अग्नि ॥४४-४६॥ हेमाङ्गद का जीव प्राणतेन्द्र इन १६ स्वप्नों को माता को दिखलाकर अपने पुण्य-बल से तीनों भुवनों को कम्पित करता हुआ स्वर्ग से च्युत हुआ ॥४७॥ देवेन्द्र, सुरेन्द्र और नरेन्द्रों से पूजित उन भगवान ने श्वेत हाथी का रूप धारण कर माता के उत्तम मुख में प्रवेश किया। तब माता जाग गई, और प्रसन्न

होकर प्रातः क्रिया कर आभूषण आदि पहने तथा उस वामादेवी (ब्रह्मदत्ता) रानी ने अपने देखे गये स्वप्नों को अत्यन्त विनय के साथ राजा से कहे। यह सब सुनकर अपरिमित गुणशाली राजा ने अपनी प्रिय रानी से स्वप्न फल इस प्रकार से कहा कि तुम्हें स्वप्न देखने से एक शोभावान् पुत्र होगा जो निर्मल गुणों का पुञ्ज, तीन लोक का स्वामी तथा देवेन्द्र, ज्योतिष्केन्द्र, असुरेन्द्र तथा नरेन्द्रों से पूजित होगा ॥४८-४९॥

इस प्रकार पुराणसार संग्रह के पार्श्वनाथ चरित में स्वर्गावतरण नाम का द्वितीय सर्ग समाप्त हुआ ।

*****

तृतीय सर्ग

भगवान् की गर्भावस्था में आने के ६ महीने पहले और गर्भावस्था के ९ महीनों में अर्थात् पन्द्रह माह तक जनता के हित के लिए प्रतिदिन कुबेर ने साढ़े तीन करोड़ रत्नों की वृष्टि की॥१॥ जैसे पूर्व दिशा से चन्द्रमा उगता है उसी तरह देवाङ्गनाओं से सुरक्षित माता ने नव मास पूर्ण होने पर जिनेन्द्र भगवान् को उत्पन्न किया॥२॥ उस समय अपने आसनों के कम्पन से देवेन्द्रों ने भगवान् के जन्म को जाना और श्रद्धापूर्वक देवों की एक बड़ी सेना के साथ वे उस नगर में आये॥३॥ फिर उन्हें बड़े समारोह के साथ सुमेरु पर्वत पर ले गये और सभी इन्द्रों ने मिल कर क्षीर सागर के जल को रत्न कलशों में भरकर उनका अभिषेक किया॥४॥ तथा उन्हें अवस्था योग्य सुन्दर आभूषण पहनाये और स्तुति योग्य उन भगवान् की पूर्ण आत्मशक्ति से, अतिभक्तिवश हो हजारों प्रकार से स्तुति की एवं उनका नाम पार्श्वनाथ रखकर उन्हें वे नगर में ले आये और उन महाप्रभु को माता की गोद में दे दिया॥५-६॥ इन्द्र ने उस अवसर पर बड़ी भक्ति से आनन्द नाम का नाटक खेला और भगवान् तथा उनके माता-पिता की पूजा कर स्वर्ग लोक चले गये॥७॥

ये प्रभु बाल चन्द्रमा के समान जैसे-जैसे कान्ति में बढ़ते गये वैसे-वैसे उनके उग्रवंश की शोभा चन्द्रमा के समान ही बढ़ती गई ॥८॥ उनके (निर्मल) गुणों का समूह, सभी जीवों के मन में ठीक वैसे ही प्रवेश होने लगा जैसे कि जलाशयों में चन्द्रमा का निर्मल प्रतिबिम्ब॥९॥ रूप और सौभाग्य से सम्पन्न वे भगवान् मति, श्रुत, और अवधिज्ञान से विराजित थे तथा उनके शरीर की ऊँचाई नौ हाथ की थी व शरीर का रंग प्रियङ्गु के पुष्प के समान था॥१०॥ देवेन्द्रों से पूजित वे भगवान् इन्द्र की आज्ञा से कुबेर के द्वारा भक्ति पूर्वक लाये गये नाना प्रकार के भोगों से सदा सुख पूर्वक रहने लगे॥११॥

इधर वह सिंह का जीव नरक से निकल कर बहुत समय तक संसार में घूमता फिरा। फिर वहीं बनारस में किसी शतजटी नाम के तपस्वी का सहस्रजटी नामका पुत्र हुआ और वह भी अज्ञान से तपस्वी बनकर बनारस के बाहर एक जगह पञ्चाग्नि तप करने लगा॥१२-१३॥ किसी समय श्री पार्श्वनाथ अनेक वस्त्राभूषण से अलंकृत हो अनेक राजाओं के साथ मनोविनोद करने के लिए देवोपुनीत पालकी पर चढ़कर सेवक वर्ग के साथ तथा नगर वासियों से आवृत हो बाहर निकले। नगर के बाहर उन्होंने उस तापस को देखा, वहाँ कुछ लोग उस तपस्वी की

प्रशंसा कर रहे थे कि इस दिव्य तपको सहस्र जटी के सिवाय और कौन कर सकता है॥१४-१६॥ तब यह सुनकर भगवान् ने तपस्वी के लक्षण बतलाये और कहा कि जिसके पूर्ण दया नहीं है उसका तप भी धर्म नहीं हो सकता। तथा दया और ज्ञान से रहित इस तपस्वी का यह तप इसे क्या सुख दे सकता है? इस प्रकार उनके वचनों को सुनकर वह मिथ्यात्वी तपस्वी उद्धत भाव से भगवान् की पालकी के आगे खड़ा हो गया और बड़े क्रोध के साथ बोला कि अच्छा, तो तुम जल्दी ही मेरी अज्ञानता दिखलाओ॥११७-१९॥ तब उन भगवान् ने अपने अवधिज्ञान से यह जानकर कि लकड़ी के खोखले में बैठे दो सर्प सर्पिणी इस महाग्नि से जल रहे हैं उसे यह कुछ मुस्कराते हुए दिखलाया॥२०॥ तथा भगवान् ने उन दोनों सर्प-सर्पिणी को पञ्चनमस्कार स्पष्ट उच्चारण पूर्वक सुनाया एवं उस मंत्र को सुनकर वे दोनों भवनवासी देवों में धरणेन्द्र और पद्मावती हुए। और वे दोनों वहाँ आकर बड़े वैभव के साथ अपनी शक्ति प्रमाण भगवान् पार्श्वनाथ की पूजा कर स्तुति करने लगे॥२१-२२॥ तब वह तापस अपने मानभङ्ग को देख क्रोध अग्नि मे जल मरा और ज्योतिषी देवों में शम्बर नामका देव हुआ॥२३॥

जगत् से पूज्य भगवान् पार्श्वनाथ कुमारावस्था के तीस वर्षों तक देव और मनुष्यों द्वारा लाये गये दिव्य भोग भोगते हुए सुख से रहने लगे। एक समय वे एक नयनाभिराम नाटक को देख रहे कि पुण्योदय से मतिज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम होने से उन्हें शीघ्र ही वैराग्य हो गया। उन्होंने संसार में आयु, रूप, सौभाग्य, धन, वीर्य, विभूति आदि सभी वस्तुओं को मेघ समूह, बिजली और इन्द्रधनुष के समान अनित्य जानकर और फिर विषयोभोगों की दुष्टता एवं विपाक काल में कटुता का ध्यान कर तपस्या करने का निश्चय किया॥२४-२७॥ उसी क्षण वहाँ लौकान्तिक देव आये और भगवान् से निवेदन किया कि "हे भगवान ! आप उत्तम, हितकारी धर्मतीर्थ का प्रवर्तन कीजिए।" ऐसा कह वे लोग अपने स्थान स्वर्ग को लौट गये॥२८॥

तब सभी देवेन्द्र अपने-अपने आसनों के कम्पन से भगवान् के दीक्षा कल्याणक को जानकर देवों की सेना के साथ वहाँ आये और उन्होंने भगवान् को नमस्कार किया॥२९॥ तथा महलों के आंगन में अत्यन्त दिव्य मणिमण्डप की रचना कर तथा रत्नों के सिंहासन पर और छत्र के नीचे बैठाकर क्षीर सागर के जल से उन्होंने बड़े वैभव के साथ भक्ति पूर्वक भगवान् का अभिषेक किया और सुख से बैठे हुए भगवान् को उत्तम् वस्त्र, आभूषण एवं सुगन्धित पदार्थों से आभूषित किया॥३०-३१॥

फिर इन्द्र की आज्ञा से कुबेर ने मणियों की बनी विमला नामकी पालकी को वहाँ लाकर इन्द्र को सूचना दी। तब इन्द्र ने बड़े विनय के साथ भगवान् से निवेदन किया। उस समय पार्श्वनाथ ने अपने माता-पिता और बन्धुओं से मधुरवाणी के द्वारा निवेदन किया कि ॥३२-३३॥ यह शरीर जरा और रोगों से पूर्ण, पापमय एवं अशुचि है। इस संसार में मनुष्यों को अप्रिय लोगों से संयोग, इष्ट लोगों से वियोग एवं मृत्यु निश्चित है इसलिए मैं तपस्या करने जाता हूँ। आप सब लोग मुझे मुक्त कर दें। इस प्रकार उनसे कह कर उन्हें विदा किया ॥३४-३५॥

उस क्षण नगाड़े, ढोल तथा आकाश में दुन्दुभियाँ बजने लगीं और उस समय देवेन्द्रों ने उच्च स्वर से सिंहनाद किया ॥३६॥ वहाँ देवों के द्वारा जल्दी ही छोड़ी गई उत्तम पुष्पवृष्टि होने लगी और दिव्य सुगन्धित जल सींचा जाने लगा तथा सुगन्धित वायु बहने लगी ॥३७॥ इसी समय वे भगवान् पालकी पर चढ़े। उस पालकी को पहले अनेक नृप भक्तिपूर्वक स्वयं लेकर चले, इसके बाद इन्द्रगण बड़ी विभूति से एवं श्रद्धाभाव से उस पालकी को रमणीय सुतापसाश्रम नाम के वन में ले आये। वहाँ भगवान् ने एक मन्दिर के एक कोने में पर्यंकासन से बैठकर सिद्धों को नमस्कार किया और सारे आभूषण और वस्त्रों को छोड़कर तीन सौ राजाओं के साथ जिन-दीक्षा ले ली ॥३८-४०॥ (भगवान्ने पंचमुष्ठि से केशलोंच किया) तथा इन्द्र ने उन केशों को रत्नों की पिटारी में रखकर और उत्तम भक्ति से पूजाकर उन्हें क्षीरसागर में क्षेप दिया ॥४१॥

उन भगवान् ने पौष महीने के कृष्ण पक्ष की एकादशी के पूर्वाह्न समय में अष्टभक्तोपवास पूर्वक संयम धारण किया ॥४२॥ भगवान् को दीक्षा लेते समय ही मनःपर्यय ज्ञान प्रकट हो गया और चार उत्तम ज्ञानों से युक्त तथा सर्व परिग्रह रहित वे भगवान् ऐसे शोभित होने लगे जैसे मेघ रहित आकाश में पूर्ण चन्द्रमा ॥४३॥

इस दीक्षा-कल्याणक में देवगण सहित इन्द्रों ने प्रसन्न हृदय हो, अपनी पूर्ण शक्ति और अतिभक्ति से देवों के देव-भगवान् की अच्छी तरह पूजा की और पाप नाश करने के हेतु जिनेन्द्र देव के गुणों का वर्णन करने वाले नाना चित्रात्मक छन्दों से उनकी पद्यमय स्तुति की और उत्तम मुनियों से घिरे हुए उन भगवान् की तीन बार प्रदक्षिणा दे कर स्वर्ग लोक को चले गये ॥४४॥

इस प्रकार पुराणसार संग्रह के श्री पार्श्वनाथ चरित भगवान के दीक्षा कल्याणक नाम का तृतीय सर्ग समाप्त हुआ।

चतुर्थ सर्ग

एक दिन (पारणा के लिए) भगवान् पद्मखेटपुर गये। वहाँ उन्हें धन्य नामक राजा ने श्रद्धा, तुष्टि, भक्ति आदि सप्त गुणों से युक्त हो परमान्न-खीर का आहार दान दिया। उसी क्षण देवताओं ने प्रसन्न होकर उस दानपति की पूजा की और आकाश में अहो दान, अहो दान, इस प्रकार के शब्द हुए॥१-२॥ देव-दुन्दुभियाँ बजने लगीं तथा सुगन्धित वायु बहने लगी और आकाश से धनवृष्टि एवं पुष्पवृष्टि होने लगी॥३॥ उन भगवान् ने देह धारण मात्र के लिए ही थोड़ा-सा आहार लिया और नगर में लौटकर ज्ञान ध्यान में लीन हो गये॥४॥ वे उत्तमज्ञानी भगवान् निरन्तर विहार करते हुए सुख के हेतुभूत सम्यग्दर्शन के आठ प्रकार के आचार का, सम्यग्ज्ञान के आठ आठ प्रकार के आचार का एवं सम्यग्चारित्र के तेरह प्रकार के आचार का तथा सम्यक्तप के छह प्रकार के आचार का अच्छी तरह पालन किया॥५-६॥

इस प्रकार चार भाह तक रात-दिन घोर वीर-तपस्या करते हुए एक समय वे तापसों के आश्रम के पास प्रतिमायोग धारण कर बैठ गये। उस समय शम्बर नामका देव अपनी प्रिय देवी के साथ आकाश मार्ग से कहीं जा रहा था। (भगवान के ऊपर आते ही) उसका विमान रुक गया इससे वह विमान से उतर कर अत्यन्त क्रुद्ध हुआ॥७-८॥ उसने वहाँ मोक्ष में चित्त लगाये हुए, पर्वत राज के समान निश्चल, अतिसहिष्णु, बलशाली एवं धर्मध्यान में संलग्न भगवान को देखा और पापकर्म स्वरूप अपने पूर्व वैर से प्रेरित हो उनके ऊपर अपने ही भवभ्रमण को बढ़ाने वाले घोर उपसर्ग किये॥९-१०॥ उसने भालू, शार्दूल, सिंह, सर्प, ऊँट तथा भैंस आदि का नाना रूपधारी राक्षसों का रूप धारण कर बड़ा भारी उपसर्ग करना प्रारम्भ किया॥११॥ तथा उन्हें चक्र, त्रिशूल, बाण, तलवार, छुरी, अंकुश, गंडासा, भाला, मुद्गर आदि हथियारों से मारना प्रारम्भ किया पर वे सब आयुध भगवान् के पुण्योदय से मोंगरें, केतकी, नागकेशर, चमेली आदि के पुष्पों के रूप में परिणत होकर भगवान् के चरणों में गिरते थे॥१२-१३॥ तब उसने भगवान् के ऊपर चारों ओर से भयंकर, मोटी धारावाली पत्थरों से भरी हुई वर्षा करना प्रारम्भ किया॥१४॥ पर उस वृष्टि से भगवान् को थोड़ा भी दुख नहीं हुआ। इस प्रकार उस शम्बर देव ने तीन दिन तक महान् उपसर्ग किये॥१५॥ फिर उन्हें कर्म क्षय करने के लिए

पर्वत के समान निश्चल खड़ा हुआ देखकर, उस देवका, पूर्व जन्म में किये गये पापों के कारण, क्रोध बढ़ गया ॥१६॥ और एक भयंकर पर्वत को उठाकर भगवान के शिर पर पटकने के इरादे से ज्योंही वह आकाश में गया, त्योंही अपने आसन के कम्पन से भगवान् के ऊपर बड़ा भारी उपसर्ग जानकर, धरणेन्द्र, पद्मावती के साथ शीघ्र ही पाताल लोक से निकल कर आया ॥१७-१८॥ चमकते हुए मणियों से सुशोभित वह धरणेन्द्र अपनी हजारों फणाओं से भगवान् को ढँककर खड़ा हो गया ॥१९॥ और उसकी देवी, सर्वलक्षणों से सम्पन्न, दिव्य रूप वाली, बड़ी कान्तिवाली, चन्द्रमुखी, गोल, स्थूल एवं उन्नत स्तनवाली, क्षीण कटिवाली, एवं नील कमल के समान नेत्रवाली पद्मावती, एक ऐसे छत्र को भगवान् के ऊपर धारण कर खड़ी हो गई जिसका कि दण्ड वैडूर्यमणि का था, किनारे पर शुक्ल मोतियों की लड़ियाँ लगी थीं, एवं जो वज्र के समान चमक रहा था। उस समय भगवान् ने क्षपक श्रेणी में आरूढ़ होकर शुक्ल ध्यान में लवलीन हो चार घातिया कर्मों का नाश कर केवलज्ञान प्राप्त कर लिया ॥२०-२३॥

उन्हें चैत्र मास के शुक्लपक्ष की चतुर्थी के दिन पूर्वाह्न के समय विशाखा नक्षत्र में केवलज्ञान के साथ अर्हंत पद प्राप्त हुआ ॥२४॥ उस समय देवेन्द्रों ने अपने अपने आसन कँपने से अवधि ज्ञान से भगवान के केवलज्ञान उत्पन्न होने की बात अच्छी तरह जान ली ॥२५॥ और वे लोग अपनी देवियों कें साथ एवं नाना प्रकार की सेना के साथ विमान, सिंह, हाथी, व्याघ्र, क्रोञ्ज आदि नाना वाहनों पर चढ़कर वहाँ आये ॥२६॥ वहाँ उन लोगों ने बड़ी भक्ति से, मल्लिका, जाति, पुन्नाग, केतकी, बकुल आदि फूलों से तथा दिव्य, अक्षत, गन्ध, धूप, दीप आदि द्रव्यों से जिनेन्द्र भगवान् की पूजा की व तीन प्रदक्षिणा देकर नाना प्रकार के सुन्दर स्तोत्रों से उनकी स्तुति करने लगे ॥२७-२८॥ तब वह शम्बर नामका देव देवेन्द्र को देखकर डर गया और पर्वत को छोड़कर शीघ्र ही जिनेन्द्र भगवान् की शरण में गया ॥२९॥ और भगवान् के चरणों को यह कहते हुए प्रणाम किया कि "हे नाथ ! पापकर्म के कारण अज्ञानवश मैंने बहुत बड़ा अपराध किया है, मुझे क्षमा कीजिये ॥३०॥ हे भगवान् ! आप पहले भी अपने पुण्य से सहज सुख भोगते रहे हैं और मैं पाप से निरन्तर दुख सागर में मग्न रहा हूँ। अब मैं आगे कभी भी नहीं पाप करूँगा"। तथा इस प्रकार सोच, पापों से भयभीत हो वह भगवान् की पूजा करने लगा ॥३१-३२॥ मैं तो बड़े-बड़े पापों को करके नरकादि खोटी गतियों में सारे दु:खों को भोग कर

और कुबुद्धि से उन्हें सुखकर मानकर नष्ट हो चुका हूँ। ऐसा सोच वह दुखों से भरे इस संसार-समुद्र से डर गया और जिनेन्द्र भगवान् की वन्दना कर उस देव ने सच्चे धर्म को धारण कर लिया ॥३३॥

तब सभी इन्द्रों, नरेन्द्रों ने तथा व्यन्तरों और भवनवासियों के इन्द्रों ने एवं चन्द्र और सूर्य ने परम सुख देने वाले, तीन लोक के स्वामी और सुख के आगार भगवान् की सुगन्धित पुष्पों, दीप, धूप तथा सुगन्धित जल एवं अक्षत से पूजा की और श्रद्धा एवं भक्ति से उन निर्मल जिनेन्द्र भगवान् को प्रणाम किया ॥३४॥

इस प्रकार पुराण सार संग्रह के पार्श्वनाथ चरित में भगवान को केवलज्ञानोत्पत्ति नामक चतुर्थ सर्ग समाप्त हुआ।

*****

पंचम सर्ग

हे जिन ! आपने ऐसे तीनों लोकों को जीत लिया है जो कि पंच इन्द्रियों के विषयभोग और क्रोधादि कषायों से पूरी तरह जीते गये हैं, इसलिए आपको नमस्कार है॥१॥ इस संसार में राग द्वेष और मोह सभी प्राणियों के शत्रु हैं और आपने उन्हें निश्चय रूप से जीत लिया है, इसलिए आपको नमस्कार है॥२॥ उपसर्ग, वासनाएँ मन वचन और काय की दुष्प्रवृति रूपी दण्ड और भूख प्यास आदि परिषह ये सब शल्य अर्थात पीड़ाकारक हैं तथा आपने उन्हें जीत लिया है इसलिए हे भगवन् ! आपको नमस्कार है॥३॥ सभी देव, असुर और उत्तम मनुष्य आपकी ही पूजा और स्तुति करते हैं इसलिए आप ही हम लोगों के परमेश्वर हो॥४॥ हे भगवान् ! सूर्य जैसे प्रकाश को, औषधियाँ स्वास्थ्य को और मेघ सुभिक्ष को बिना किसी प्रत्युपकार की आशा से देते हैं, उसी तरह आप आत्म-कल्याणकारी धर्म का उपदेश देते हो इसलिए आप ही परमेश्वर हो॥५॥

हे भगवान ! उत्तम तप के फलस्वरूप आपको सतत केवल नाम का उत्तम ज्ञान और दर्शन अर्थात केवलज्ञान और केवलदर्शन, और दर्शन एवं चारित्र मोहनीय कर्मों के नाश करने से पूर्ण सम्यग्दर्शन एवं सम्यग्चारित्र प्रकट हो गया है तथा चार घातिया कर्मों के क्षय कर देने से अनन्तदान, अनन्तलाभ, अनन्तसुख, अनन्तवीर्य, अनन्तभोग, अनन्त उपभोग, अनन्तज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यग्चारित्र ये नव लब्धियाँ प्राप्त हो गई हैं, इसलिए आप ही परमेश्वर हो॥६-८॥ हे भगवन् ! आप जन्मकृत दश, केवलज्ञानकृत दश तथा देवकृत चौदह अतिशय इस प्रकार चौंतीस अतिशयों से सुशोभित हो तथा अशोक वृक्षादि आठ प्रातिहार्यों से विभूषित हो, इसलिए आप ही परमेश्वर हो॥९॥ हे भगवन् ! आप बारह प्रकार की सभा के बीच में धर्मोपदेश देते हुए विराजमान हो इसलिए आप ही परमेश्वर हो॥१०॥ हे जिनेश्वर! जो आपकी नित्य ही सच्ची भक्ति करते हैं वे चित्त की एकाग्रता पूर्वक शीघ्र ही केवलज्ञान पा मोक्ष को जाते हैं॥११॥

इस प्रकार सभी देवों, असुरों और मनुष्यों ने भक्ति पूर्वक जिनेन्द्र भगवान् की स्तुतिकर उनसे भवभ्रमण को मिटाने वाले धर्म का उपदेश सुना॥१२॥ जिनेन्द्र भगवान् के इस प्रकार माहात्म्य को देखकर बहुत से तपस्वियों ने अपने कुकर्म की खूब निन्दा कर जिन भगवान् के आगे दीक्षा ले ली ॥१३॥ भगवान् चार प्रकार का

संघ बनाकर तीनों लोकों को हितकारी सद्धर्म का उपदेश देते हुए। देश-देश में विहार करने लगे ॥१४॥

पार्श्वनाथ भगवान् के समवसरण में स्वयम्भू आदि दश गणधर थे जो कि सात ऋद्धियों से युक्त एवं देवों से पूजित थे ॥१५॥ तथा देवों असुरों से पूजित सम्पूर्ण १४ पूर्वोंके धारी मुनियों की संख्या तीन सौ पचास थी ॥१६॥ और सभी रूपी पदार्थों को जानने वाले उत्तम अवधिज्ञानी मुनियों की संख्या एक हजार चार सौ थी ॥१७॥ समस्त द्रव्य और पर्यायों को जानने वाले केवलज्ञानी मुनियों की संख्या एक हजार चार सौ कही गई है ॥१८॥ अपने इच्छित रूपों को बनाने वाले वैक्रियिक शक्ति से युक्त मुनियों की संख्या भी एक हजार थी ॥१९॥ और मनःपर्यय रूपी उत्तम ज्ञान से युक्त यतियों का प्रमाण सात सौ पचास था ॥२०॥ तथा जो एक ही वाक्य से वादेच्छुक देव और मनुष्यों को जीत सकते थे, ऐसे वादी मुनियों की संख्या छह सौ थी। और जिनेन्द्र-द्वारा कथित आगम को पढ़ाने वाले विनयधारी शिक्षक मुनि दश हजार नौ सौ थे। एवं देवताओं से पूजित अन्य मुनि सोलह हजार थे। और वहाँ गुणों की खानि स्वरूप आर्यिकायें अड़तीस हजार थीं, जिनमें इन्द्रों से पूज्य सुलोचना नामकी आर्यिका प्रधान थी। तथा सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र रूपी गुणों से भूषित श्रावकों का समूह एक लाख प्रमाण था। और व्रत, शील एवं आचार को धारण करने वाली श्राविकाओं का प्रमाण तीन लाख आगम के जानने वाले मुनियों ने कहा है- ॥२१-२६॥

उन जिनेन्द्र भगवान् रूपी सूर्य ने देवों तथा मनुष्यों के सन्देह-रूपी अन्धकार को सूर्य के समान वचनरूपी किरणों से नष्ट कर दिया ॥२७॥ जिनेन्द्र रूपी मेघ ने दुखरूपी सूर्य से तप्त प्राणियों के लिए धर्मरूपी जल ठीक वैसे ही बरसाया जैसे सूर्य से सन्तप्त प्राणियों के लिए बादल जल बरसाता है ॥२८॥ इस प्रकार चार महीने कम सत्तर वर्षों तक कल्याणार्थी भव्य प्राणियों को संसार से पार लगाते हुए वे भगवान् पृथ्वी पर बिहार करते रहे ॥२९॥

एक समय आयु का अन्त समीप जानकर, वे पार्श्वनाथ भगवन्! निर्वाण गमन की वेला के लिए रमणीय सम्मेदशिखर पर्वत पर आरूढ़ हुए ॥३०॥ और विहार करना छोड़कर मान्य छब्बीस मुनियों के साथ प्रतिमा योग धारणकर एक माह तक खड़े रहे और श्रावण महीने के शुक्ल पक्ष की सप्तमी के दिन पूर्वाह्न समय देवों से पूज्य उन भगवान् ने योग धारणकर, ध्यान करते हुए मन, वचन और काय के योगों

को निरोधकर शेष कर्मों को नष्ट कर दिया। तथा सिद्धों के ज्ञान दर्शन आदि उत्तम आठ गुणों से युक्त हो महासुख के स्थान उत्तम मोक्ष को प्राप्त किया ॥३१-३३॥ तब सभी इन्द्र अपने-अपने आसन-कम्पन से भगवान् का मोक्ष कल्याणक जानकर अपनी-अपनी देवियों और अनेक प्रकार की सेना के साथ भक्ति पूर्वक वहाँ आये और जिन-भगवान् के शरीर की सुगन्धित पुष्पों, धूप, दीप, सुगन्धित जल एवं अक्षत द्रव्यों से अच्छी तरह अपूर्व पूजा की ॥३४॥ फिर अग्निकुमार देवों के इन्द्र ने भगवान् के दिव्य शरीर की उत्तम फूलों और चन्दनादि द्रव्यों से पूजा की थी तथा अपने मुकुट से उत्तम अग्नि उत्पन्न कर उसका अग्नि संस्कार किया। तत्पश्चात देवेन्द्र, असुरेन्द्र, नागेन्द्र और ज्योतिषी देवों के इन्द्र, सूर्य, चन्द्रादि ने भक्तिपूर्वक अवशिष्ट अंश को इकट्ठा कर अक्षत एवं सुगन्धित जल के साथ क्षीर-सागर में क्षेप दिया और प्रसन्नचित हो वे स्वर्ग लोक चले गये ॥३५॥ उन भगवान् पार्श्वनाथ ने, चूँकि अपने पहले भव में ही पुण्य प्रकृति का बन्ध किया था इसलिए उन्होंने स्वर्ग लोक और भूतल पर अनुपम दिव्य सुखों को भोग त्रैलोक्य के स्वामी पद को प्राप्त किया था। तथा चूँकि उस शम्बर देव ने प्रथम भव में ही पाप प्रकृति का बन्ध किया था इसलिए उसे बहुत खोटी गतियों में भ्रमण कर दुख भोगना पड़ा। अतः जो अपना सुख चाहता है वह निरन्तर खूब पुण्य करता चले ॥३६॥

उत्तम अनेक गुणों से मोक्ष सीढ़ी के समान बना हुआ, देवेन्द्र से पूज्य भगवान् का अनुपम तीर्थ काल ढाई सौ वर्षों तक चलता रहा । और उन भगवान् की नित्य ही देव, असुर और मनुष्य पूजा करते रहे। मैं अपनी पूर्ण शक्ति और बड़ी भक्ति से देवों के देव, जिनेन्द्र, पार्श्वनाथ को जिन्होंने सम्पूर्ण कर्मरूपी शत्रुओं को जीत लिया है प्रणाम करता हूँ ॥३७॥

जिनेन्द्र भगवान् का यह चरित्र सभी के कल्याण के लिए कहा गया है। और जो उत्तम बुद्धि पुरुष इसे सुनते हैं या दूसरों से कहते हैं अथवा लिखते हैं वे सदा सुखदायक, अनन्त एवं दिव्य सुख वाले दिव्य अविनश्वर पद को शीघ्र ही पहुँच जाते हैं ॥३८॥

इस पुराण सार संग्रह के पार्श्वनाथ चरित में भगवान का निर्वाण गमन नामक पंचम सर्ग समाप्त हुआ।

*****

श्री वर्धमान चरित्र

तीनों लोकों के प्रभु वे वर्द्धमान भगवान् रूपी सूर्य सदा जयवन्त होवें, जिन्होनें अपनी ज्ञानरूपी किरणों से भव्य जीवरूपी कमलों को प्रसन्न-विकसित किया है॥१॥ उनका पवित्र जीवन चरित जनता के पाप नष्ट करने में इतना पुण्यकारी है जैसे प्रजा के दारिद्रय को नष्ट करने के लिए उत्तम रत्नों की खदान। मैं उसे यहाँ संक्षेप में कहूँगा। पहले सुधर्म गणधर ने जम्बू स्वामी के पूछने पर इस पुराण को कहा था। इसलिए आचार्य-परम्परा से आये हुए इस पुराण को आप लोग सुनें॥१-३॥

इसी जम्बूद्वीप में भरत क्षेत्र के छत्राकारपुर में नन्दिवर्धन नामका राजा था जो अनेक गुणों की खान था ॥४॥ उसे अपनी रानी वीरमती से नन्दन पुत्र हुआ, जिसने नाना शास्त्रों के अर्थ रूपी जल से अपनी विशाल बुद्धि को स्वच्छ कर लिया था अर्थात वह अनेकों शास्त्र पढ़ा था॥५॥

एक समय वह राजा अपने योग्य पुत्र को राज्य लक्ष्मी देकर संसार की असारता से भयभीत हो तपोवन में तपस्या करने के लिए चला गया ॥६॥ और वहाँ उसके पुत्र ने सज्जनों के प्रशंसनीय चरित्र में चलते हुए प्रसन्नता पूर्वक पृथ्वी का शासन किया। उसने अपने अतुलनीय गुणों से अपने वंश के पूर्वज राजाओं को भी अतिक्रमण कर दिया॥७॥ उसके चन्द्रमा के समान उत्कृष्ट कान्ति को धारण करने वाली प्रियंकरा नामकी रानी थी जिसने अपने मनोहर गुणों से उस राजा के चित्त को हर लिया॥८॥ अत्यन्त अनुराग वाले वे दोनों, नाना सुखों को भोग करते हुए रति और कामदेव के समान रमण करते हुए आपस मे एक दूसरे को (प्रेम मे) जीतने लगे॥९॥

अथानन्तर एक समय वहाँ अपनी ज्ञानरूपी किरणों से प्राणियों के मोहरूपी अन्धकार को नष्ट करते हुए, ज्ञान के पारगामी, प्रोष्ठिल नामक सम्यग्दृष्टि मुनि आये॥१०॥ राजा ने, अपने रनिवास के साथ प्रीतिपूर्वक उनकी विधिवत् पूजा की और धर्मोपदेश सुनकर उनसे अपने पूर्वभवों को पूछने लगा॥११॥ तब उस सज्जन राजा-द्वारा विनय पूर्वक पूछे जाने पर उन सर्वज्ञ मुनि ने संक्षेप में सब वृतान्त इस प्रकार कहा॥१२॥

"हे राजन्! तुम, अब से आठवें भव पूर्व में, इसी भरत क्षेत्र में गंगा नदी के किनारे बराहमलय नामके पर्वत पर लहराती जटाओं वाले सिंह हुए थे॥१३॥ एक समय वह सिंह गुफा के दरवाजे पर सो रहा था तब वहाँ आकाश मार्ग से जाते हुए

अजितञ्जय और अमितगुण नामके दो मुनियों ने उसे देखा॥१४॥ ज्ञानी एवं करुणावान वे दोनों मुनिराज आकाश से उतर कर एक सप्तपर्ण वृक्ष के नीचे शिला पर बैठ गये॥१५॥ और संसार को पवित्र करने वाले उन दोनों चारण मुनियों ने सिंह को प्रेरणा देने के लिए गम्भीर ध्वनि से उद्बोध देने वाली (वैराग्य उत्पन्न करने वाली) उत्तम गाथाएँ गाना शुरू किया॥१६॥ उनकी उस ध्वनि को सुन, अशुभ मनोवृतियों को छोड़ कर वह सिंह वहाँ आया और यह सोचते हुए कि इन मुनियों को मैंने पहले कभी देखा है वहाँ बैठ गया॥१७॥ तब अजितञ्जय नामके उत्तम बक्ता मुनि ने कहा कि हे सिंह! अपने पूर्वजन्म में मुनिरूप के दर्शन का वृतान्त सुनो॥१८॥

इसी जम्बू द्वीप की पुण्डरीकिणी नगरी में धर्मप्रेमी धर्मस्वामी नामका संघपति रहता था॥१९॥ एक समय उसके साथ शास्त्रानुसार चलने वाले, ब्रह्मज्योति वाले एवं देदीप्यमान शरीर वाले सागर सेन नामके मुनि (यात्रा के लिए) चले। रास्ते में मधु नामके वन में चारों तरफ से भीलों के समूह ने उन्हें घेर लिया जिससे सभी लोग घबराकर पास के रत्नपुर नामके नगर में भाग गये॥२०-२१॥ पुरूरवा नाम के भील को उसकी पत्नी काली ने उन मुनिको मारने से रोका। रास्ता भूले हुए उन मुनिराज ने उसे देख उससे निराकुल भाव से रास्ता पूछा॥२२॥ मुनि ने बड़े दयाभाव से धर्मोपदेश दिया और उसके द्वारा दिखाये गये मार्ग से वे श्रेष्ठ मुनि चले गये॥२३॥ मुनिराज के उपदेश से सच्चा मार्ग जान वह भील पापकर्मों से विरक्त हो गया और आयु के अन्त में मरकर सौधर्म स्वर्ग में दो सागर की आयु वाला देव हुआ॥२४॥

वहाँ पर अपार बल, ऐश्वर्य, कान्ति, ज्ञान, यश एवं द्युति को पाकर उसने उत्तम सुख भोगे और फिर स्वर्ग से अवतरित हुआ तथा इसी भारतवर्ष की साकेत नाम की सुन्दर नगरी में पुण्यशाली ऋषभदेव के प्रिय पुत्र चक्रवर्ती भरत और उसकी रानी अनन्तमती से उत्तम गुणों वाला पुत्र मरीचि हुआ जिसकी कान्ति ऊपर चढ़ते हुए सूर्य की किरणों के समान थी॥२५-२७॥ उसने भगवान् आदिनाथ के साथ दीक्षा ले ली पर परीषहों को न जीत सकने कि कारण और इस दीर्घ संसार में आसिक्त होने के कारण (तपस्या छोड़कर) परिव्राजक साधु हो गया॥२८॥ उसके बाद चिरकाल तक तप करके यमराज के द्वारा जीवन ले लेने पर अर्थात मृत्यु होने पर ब्रह्म लोक का इन्द्र हुआ जहाँ उसकी आयु दस सागर की थी॥२९॥

तदनन्तर वहाँ से च्युत होकर इसी साकेत नगरी में कपिल नामके ब्रह्मण की काली नामकी पत्नी से जटिल नाम का पुत्र हुआ॥३०॥ उसने परिव्राजक साधु

की दीक्षा लेकर खूब तप किया और अन्त में मरकर सौधर्म स्वर्ग में देवों का इन्द्र हुआ जहाँ उसकी आयु दो सागर की थी॥३१॥ इसके बाद वहाँ से च्युत होकर स्थूणागार नाम के नगर में विद्वान ब्राह्मण भारद्वाज की पत्नी पुष्पदन्ता से पुष्पमित्र नाम का पुत्र हुआ॥३२॥ वहाँ भी वह परिव्राजक साधु हो गया और बहुत समय तक तपश्चर्या करके सौधर्म स्वर्ग में देव हुआ । फिर एक सागर पर्यन्त वहाँ के अमित सुखों को भोगकर वहाँ से च्युत हो श्वेतम्बिका नामके नगर में अग्निभूति ब्राह्मण की पत्नी गौतमी से अग्निसह नामका पुत्र हुआ॥३३-३४॥ उसने परिव्राजक साधु का रूप धारण कर जीवन बिताया और अन्त में सनत्कुमार स्वर्ग में सात सागर की आयु वाला देव हुआ॥३५॥ उसके बाद वहाँ से अवतरित हो श्वेत भवनों वाले मन्दिर नामके नगर में गौतम ब्राह्मण की पत्नी कौशिकी से अग्निमित्र नामका पुत्र हुआ॥३६॥ और परिव्राजक साधु का वेष धारण कर कुधर्म के बोझ को बहुत समय तक ढोकर अन्त में माहेन्द्र स्वर्ग में सात सागर की आयु वाला देव हुआ॥३७॥ फिर वहाँ से च्युत हो मन्दिर नाम के नगर में शालङ्कायन नामक ब्राह्मण की पत्नी मन्दिरा से भारद्वाज नामका पुत्र हुआ॥३८॥ फिर परिव्राजक रूप धारण कर तप रूपी धन को प्राप्त कर अर्थात खूब तपस्या कर अन्त में सप्त सागर की आयु वाला उत्तम देव हुआ॥३९॥ वहाँ से च्युत होकर वह तीव्र मान और मिथ्या उपदेशों के कारण इस संसार में अनेक त्रस और स्थावर योनियों में बहुत समय तक घूमता फिरा॥४०॥

इस तरह भगवान् महावीर के उस जीव ने जरा रूपी लताओं से भरे हुए, व्यसन रूपी सर्पों और रोग रूपी वनचर जानवरों से व्याप्त, महादुर्गतिरूपी पर्वत वाले, कुनय रूपी, खोटे रास्ते तथा मृत्यु रूपी सिंहों से भरे संसार रूपी जंगल में अति उन्मार्ग ज्ञानी होकर प्रवेश किया और अनेक भवों में मिले हुए अनेक प्रकार के विषैले रोगों से अतुलनीय दुखों का अनुभव किया॥४१॥ खोटे चरित्र वाले जीव-जिनका कि पुण्यरूपी अमृत रस एकदम गलित हो गया है- बहुत समय तक नाना जन्मों में भी जिस मनुष्य योनि को नहीं पा सकते, उसे यह जीव, पापराशि के उपशम होने पर ठीक वैसे ही पा लेता है जैसे कोई समुद्र के भीतर से निकलकर बाहर पड़े हुए उत्तम रत्न को पा लेता है॥४२॥

इस प्रकार अर्थाख्यान संग्रह से युक्त पुराणसंग्रह के वर्धमान चारित्र में (जो कि देवसंघ के लिए बनाया गया था) प्रथम सर्ग समाप्त हुआ।

*****

द्वितीय सर्ग

अथानन्तर वह जीव इसी भारत वर्ष के उत्तम राजगृह नामके नगर में कर्म धर्म में रत शाण्डिल्यायन नामके ब्राह्मण और उसकी पत्नी पाराशरी से स्थावर नाम का पुत्र हुआ। और परिव्राजक बन कर पुण्योपार्जन कर महेन्द्र स्वर्ग गया जहाँ उसने सात सागर तक उत्तम सुख भोगे। फिर पुण्य क्षय होने से वहाँ के सुखों में अतृप्त होता हुआ च्युत हुआ ॥१-३॥ और राजगृह नगर में यशस्वी राजा विश्वभूति की रानी जयिनी से गुणवान विश्वनन्दी नामका पुत्र हुआ ॥४॥

एक समय राजा विश्वभूति ने अपने छोटे भाई विशाखभूति को राज्य पद देकर और अपने पुत्र विश्वनन्दि को युवराज पद देकर आचार्य श्रीधर के पास तीन सौ राजाओं के साथ सब परिग्रह छोड़कर श्रेष्ठ जैनी दीक्षा ले ली ॥५-६॥ किसी समय युवराज पद से विभूषित, कामदेव के समान वह विश्वनन्दि अपने रनिवास के साथ सहस्राम्रवन में क्रीड़ा करने के लिए गया ॥७॥ और सब ऋतुओं के फूलों से भरे हुए उस उद्यान में वह स्त्रियों के साथ उत्तम भोगों से क्रीडा करने लगा ॥८॥

इधर राजा विशाखभूति की महारानी लक्ष्मणा से शरत् कालीन चन्द्रमा के समान मनोहर विशाखनन्दि नामका पुत्र था ॥९॥ वह गुण, रूप और वैभव में युवराज विश्वनन्दि के समान था। एक समय विश्वनन्दी उद्यान में क्रीड़ा कर रहा था उस समय उसे वहाँ जाने न दिया गया इससे वह रुष्ट हो गया ॥१०॥ और अपनी माँ से कहकर उद्यान में प्रवेश करने की याचना की। माता ने भी राजा से कारण बतलाकर उसे उद्यान में जाने देने की माँग की ॥११॥ तब राजा ने रानी की बात को मान कर अपने मंत्रियों से सलाह ली और विश्वनन्दी को प्रेमपूर्वक बुलाकर इस प्रकार कहा ॥१२॥ कि हे युवराज ! हमारे देश के सीमान्त भाग में शत्रु दल उपद्रव मचा रहा है। इस समय उसे जल्दी ही नष्ट करने के लिए मैं चढ़ाई करूँगा ॥१३॥ तुम लोक- व्यवहार को जानते हो इसलिए प्रमाद रहित होकर नगर वासियों के साथ बहुत समय से सुख-समृद्धि से सम्पन्न अपने देश की रक्षा करो ॥१४॥ इस प्रकार राजा के कहने पर स्वयं ही उस कार्य को करने की इच्छा से अर्थात् स्वयं ही शत्रु का नाश करने की इच्छा से विश्वनन्दी ने विनयपूर्वक राजा से निवेदन किया और किसी तरह उससे आज्ञा पा ली ॥१५॥ तब स्वभाव से युद्ध का प्रेमी वह विश्वनन्दी बड़ी भारी सेना के साथ शीघ्र ही देश के सीमा प्रान्त को चला गया ॥१६॥

इस बीच राजा ने विश्वनन्दी की पत्नियों को नन्दन वन के समान उस बगीचे से हटाकर वहाँ अपने पुत्र को क्रीड़ा के हेतु जाने दिया ॥१७॥ इसके बाद विश्वनन्दी शत्रु दल की बाधा को देखते हुए लौट आया और यह सब इन सब लोगों का रचा हुआ जाल समझ कर क्रोध से दीपक की बत्ती के समान जलने लगा ॥१८॥ और अपने हाथ की कोहनी से पत्थर के बने शोभोनीय उद्यान तिलक नामक खम्भे को उखाड़ दिया और कैथे के वृक्ष को (जहाँ विशाखनन्दी छिपा था) गिरा दिया ॥१९॥

इस प्रकार अपनी शक्ति को दिखालाकर वह संसार से विरक्त हो गया और सम्भूत नामके मुनिराज के पास पाप रहित (दैगम्बरी) दीक्षा ले ली ॥२०॥ एक दिन वे चरित्रवान विशाल हृदय मुनिराज एक मास के उपवास के बाद पारणा करने के लिए मथुरा नगरी में प्रविष्ट हुए॥२१॥ बहुत समय तक उग्र तप करने के कारण उनका शरीर कृश हो गया था। वे शान्त मुनिराज सद्यप्रसूता गाय के बछड़े के धक्के से गिर पड़े २२॥ वहाँ लक्ष्मणा का वह पुत्र विशाखनन्दी एक वेश्या के मकान में खड़ा हुआ उन्हें देख रहा था । तथा उनके अमानुषिक बल के नष्ट होने से वह बहुत जोरो से हँसा २३॥ उसके इन अप्रिय वचनों को सुनकर उन मुनिराज को बड़ा क्रोध आया और वे पारणा बिना किये ही लौट गये। अन्त में निदान पूर्वक शरीर को छोड़कर महाशुक्र स्वर्ग में देव हुए॥२४॥ वहाँ अणिमा आदि आठ ऐश्वर्यों से युक्त हो सोलह सागर की आयु पाई और अपने पूर्व पुण्योदय से नाना भोगों को भोग कर वहाँ से च्युत हुआ॥२५॥

अथानन्तर इसी भारतवर्ष के पोदनपुर नामक प्रसिद्ध नगर में राजा प्रजापति की प्रभावशाली मृगावती रानी से त्रिपृष्ठ नामका पुत्र हुआ। और पूर्वजन्मों में जो विश्वभूति का जीव था वह राजा प्रजापति की बड़ी रानी जयावती से विजय नामका पुत्र हुआ॥२६-२७॥ जयावती के पुत्र विजय और त्रिपृष्ठ दोंनों बड़े प्रतापशाली थे, उन दोनों में बड़ा स्नेह था तथा बड़ा पराक्रम और बड़ी शोभा थी॥२८॥

पूर्वजन्म में विश्वनन्दी का चचेरा भाई विशाखनन्दी जो कि बड़ा मौजी था अश्वग्रीव नामका विद्याधर हुआ। वह त्रिपृष्ठ का शत्रु था॥२९॥ उसे मार कर वे दोनों भाई इस भारतर्ष में प्रथम नारायण और बलदेव हुए और अपने सब प्रकार के रत्नों को पाकर बहुत समय तक राज्य लक्ष्मी का भोग किया॥३०॥ काम भोगों में

तृप्त न होता हुआ वह त्रिपृष्ठ नारायण अन्त में मरकर तीव्र एवं बहुत कष्टों की खानि वाले अर्थात् अनेक कष्टों से भरे हुए सातवें नरक में गया॥३१॥ वहाँ उत्कृष्ट आयु अर्थात् तैंतीस सागर की आयु पाकर अनेक दुख भोगकर वहाँ से निकला और इस गंगा के तट पर सिंहगिरि नामक पर्वत पर सिंह हुआ। और बहुत पाप इकटठे कर मरा तथा प्रथम नरक में एक सागर की आयु वाला नारकी हुआ वहाँ उसने कठिन से कठिन भारी वेदनाओं का अनुभव किया वहाँ से निकलकर वह यहाँ तुम सिंह हुए हो॥३२-३४॥ हे सिंह! इस संसार में सुख और दुख के विपाक स्वरूप परिवर्तन को तुमने अपने कर्मों के आधीन होकर बहुत काल तक भोगा॥३५॥ इसलिए मिथ्या बातों से उत्पन्न मिथ्यात्व रूपी पाप से तुम विरक्त हो जाओ और यदि इस संसार से निकलना चाहते हो- छुटकारा चाहते हो तो धर्म में चित्त लगाओ॥३६॥ हे सिंह ! हम दोनों मुनियों ने श्री धर नामक केवली के पास सुना है कि तुम अब से दश में भव में तीर्थंकर होओगे॥३७॥

इस प्रकार कहकर तथा अत्यन्त आनन्द के कारण सजल नेत्रवाले उस सिंह को सम्यग्दर्शन देकर उन अरिञ्जय और अमितगुण मुनि ने जाने की इच्छा प्रकट की॥३८॥

अपने शरीर से निकलती हुई पीली ज्योति से प्रकाशमान, कलुषित परिणामों से रहित वे दोनों चारण मुनि, उस आकाश मार्ग से जाने लगे जो कि देवाङ्गनाओं के स्तनों पर लगे हुए सुगन्धित द्रव्यों से सुगन्धित तथा नीले कमलों की कान्ति के समान निर्मल था॥३९॥

वह सिंह भी पाप से रहित, भव सागर के संकट में घूमने से भयभीत एवं शुभ भावनाओं वाला हो विधिवत प्रत्याख्यान कर मरा और सौधर्म स्वर्ग में मनोरम शान्ति पा हरिध्वज-सिंहकेतु नामका देव हुआ तथा वहाँ एक सागर की आयु पाई॥४०॥

इस प्रकार पुराण-सारसंग्रह के वर्धमान चरित में सम्यग्दर्शन प्राप्ति नामक द्वितीय सर्ग समाप्त हुआ।

*****

तृतीय सर्ग

वहाँ से च्युत होकर वह देव धातकी खण्ड द्वीप के पूर्वमन्दरा चलके पूर्व विदेह में मंगलावती देश के विजयार्ध पर्वत की उत्तर श्रेणी में कनकप्रभपुर के राजा कनकाभ और रानी कनकमाला से कनकोज्जवल नामका पुत्र हुआ ॥१-२॥ वहाँ उसने विशाल राज्य पाकर अपने धन और वैभव के अनुकूल ही अपनी उत्तम शोभावाली रानी कनकप्रभा के साथ नाना प्रकार के भोग भोगे ॥३॥

किसी समय उसने मन्दर उद्यान में प्रियमित्र नामके मुनीश्वर से धर्मोपदेश सुनकर उत्तम सम्यग्दर्शन धारण किया ॥४॥ और कनकरथ नामक अपने पुत्र को राज्य देकर उन्हीं मुनि के पास दीक्षा लेकर महान् तप करने लगा ॥५॥ फिर प्रधान सल्लेखना को धारण कर लान्तव नामक स्वर्ग में तेरह सागर की आयु वाला देवों को आनन्द देने वाला देव हुआ ॥६॥ तत्पश्चात वहाँ से अवतीर्ण हो अयोध्या नगरी के राजा वज्रसेन और रानी सुषेणा से हरिषेण नामक पुत्र हुआ ॥७॥ एक दिन पुत्र के साथ वज्रसेन राजा ने श्रुतसागर मुनि से धर्मोपदेश सुना और अपने पुत्र को राज्य देकर उनके पास दीक्षा ले ली ॥८॥ हरिषेण ने राज्य के साथ सम्यक्त्व को भी प्राप्त कर और अतिचार रहित श्रावकों के उत्तम व्रतों का पालन करते हुए नाना सुख भोगे ॥९॥ फिर आयु समाप्त होने पर महाशुक्र स्वर्ग के प्रीतिवर्द्धन नामक विमान में देवों का स्वामी प्रीतिङ्कर नामका देव हुआ ॥१०॥ वहाँ उसने सोलह सागर तक सुखामृत का पान किया और पुण्योदय के क्षीण होने पर वहाँ से च्युत हुआ ॥११॥

तथा धातकीखण्ड द्वीप के पूर्व मन्दराचल के पूर्व विदेह में जनता को सुख देने वाले पुष्कलावती देश में पुण्डरीकिणी नगरी के राजा सुमित्र और रानी सुव्रता से अनेक गुणों वाला प्रियमित्र नाम का पुत्र हुआ ॥१३॥ एक समय क्षेमंकर तीर्थंकर के समीप धर्मोपदेश सुनकर वह राजा अपने पुत्र को राज्य देकर उन विद्वान् मुनिराज का शिष्य हो गया ॥१४॥ प्रियमित्र उत्तम राज्यलक्ष्मी को धारण कर ऐसे साम्राज्य पद को पाया जिसमें उसके पुत्र से सभी राजा, विद्याधर और देवता उसके वशीभूत थे अर्थात् उसने चक्रवर्ती पद पाया ॥१५॥ उसने देवताओं और विधाधरों द्वारा लाई गई अत्युत्तम भोग-लक्ष्मी का बहुत समय तक, पृथ्वी में दूसरे इन्द्र के समान उपभोग किया ॥१६॥

एक दिन वह चक्रवर्ती विषय-भोगों से विरक्त हो गया और अरिञ्जय नामके अपने पुत्र को सुखपूर्वक राज्य पद दे दिया ॥१७॥ तथा पूर्ण पुरुषार्थी उस राजा ने क्षेमङ्कर मुनिराज के पास एक हजार राजाओं के साथ पापों को नष्ट करने वाली

दीक्षा ले ली ॥१८॥ उस राजा ने बहुत समय तक तपस्या की और चार आराधनाओं का आराधन कर सहस्रार स्वर्ग के रुचक नामक विमान में देव हुआ ॥१९॥ वहाँ उसका नाम सूर्यप्रभ था और अट्ठारह सागर की आयु पर्यन्त उसने विषयों में प्रीति उत्पन्न करने वाली भोग-सम्पत्ति का भोग किया ॥२०॥ फिर यमराज के दृष्टिपात से अर्थात् आयु समाप्त होने पर पुण्योदय क्षीण होने से वह वहाँ सें च्युत हुआ और हे राजन्, वह यहाँ तुम ही (नन्दन नामके राजा) हुए हो[1] ॥२१॥

इस प्रकार मैंने (प्रोष्ठिल ने) तुम्हारे पूर्व जन्मों की परम्परा कह दी। अब इसको भलीभाँति समझकर कर्मों के बोझ को हल्का कर मोक्ष पद पाने के लिए उत्साह करो ॥२२॥ तब उनकी मनोहर वाणी को सुनकर और भवसागर में भ्रमण की बात को जानकर वहा राजा राज्यलक्ष्मी से विरक्त हो गया और उन मुनिराज की पूजा की। फिर प्रियङ्करा रानी से उत्पन्न गुणवान अपने पुत्र आनन्द को सब गुणों से सम्पन्न राज्य दे दिया ॥२३-२४॥ वह भगवान् वासुपूज्य तीर्थंकर का तीर्थ काल था, उसमें गुणों से सुशोभित उन प्रोष्ठिल मुनिराज के समीप उसने सब प्रकार का परिग्रह छोड़ कर दीक्षा ले ली ॥२५॥ और संयम धारण कर उस महामति ने ग्यारह अंगों का अभ्यास किया तथा कर्मराशि को जीतने की इच्छा से घोर तपस्या की ॥२६॥ तथा दर्शनविशुद्धि आदि भावनाओं को भाकरके तीर्थंकर नाम कर्म की प्रकृति का बन्ध किया और प्रायोपगमन सन्यास धारण कर तपस्या से क्षीण शरीर का त्याग कर दिया ॥२७॥ फिर अच्युत स्वर्ग के पुष्पोत्तर नामक विमान में बाईस सागर की आयु वाला देवों का इन्द्र हुआ ॥२८॥

वह इन्द्र सूर्य की किरणों को लज्जित करने वाले चमकीले हाथ के कंगन, गले की माला और सिर के मुकुट से अत्यन्त शोभित था। उसने पुण्य कर्म के उदय से देवेन्द्र पद को पाया था। तथा वह मनोहर गुण समूहों व ज्ञानशक्ति युक्त था ॥२९॥ वहाँ उस देव ने भोगों के आनन्द में आसक्त चित्त होकर बहुत समय तक सुख रस से भरे हुए अंगो वाली रमणीय सुगन्धित द्रव्यों से सुशोभित, तथा कामदेव के बाणों की तीक्ष्ण धारा के बराबर गिरने से निशान के समान, एवं अनेक गुणों और कलाओं से सम्पन्न, सहस्रों देवाङ्गनाओं के साथ भोग भोगे ॥३०॥

इस प्रकार पुराणसार संग्रह के वर्धमान चरित में भगवान् के भवों का कथन नामक तृतीय सर्ग समाप्त हुआ।

*****

१-यह कथानक प्रथम सर्ग के तेरहवें श्लोक से बराबर चल रहा है।

चतुर्थ सर्ग

अथानन्तर इसी भरत क्षेत्र में विदेह नामका समृद्धिशाली देश है वहाँ देवों के नगरों से भी बढ़कर कुण्डनपुर (कुण्डलपुर) नाम का नगर था॥१॥ उस नगर में जनता के बीच सुन्दर आकृति वाला सिद्धार्थ नामका राजा था जिसने अपनी शक्ति से बड़े-बड़े राजाओं को, दैव सम्पत्तियों को एवं रत्नों को प्राप्त किया॥२॥ उसकी प्रियकारिणी नामकी प्यारी पटरानी थी जिसने रूप, कान्ति, वैभव आदि से देवाङ्गनाओं को जीत लिया था॥३॥

एक समय वह श्री ह्री आदि देवियों से अच्छी तरह सेवित हो शिरीषपुष्प के समान कोमल शय्या पर सुख से सो रही थी॥४॥ उस समय उसे रात्रि के अन्त में गज, वृषभ, सिंह, अभिषेक की जाती हुई लक्ष्मी, दो मालाएँ, चन्द्र, सूर्य, मीनयुगल, दो कलश, खिले कमलों से भरा सरोवर, समुद्र, सिंहासन, विमान, धरणेन्द्र का भवन, जगमगाती हुई रत्नराशि और निर्धूम अग्नि इन सोलह स्वप्नों को अलग-अलग दिखलाकर, आयु के अन्तिम छह माहों में देवेन्द्रों से पूजित वह पुष्पोत्तर विमान का स्वामी इन्द्र स्वर्ग से अवतीर्ण हुआ और अपनी पुण्यशक्ति से तीनों लोकों को कम्पित करता हुआ श्वेत हाथी का रूप धारण कर उस माता के मुख में प्रविष्ट हुआ॥५-८॥ यह देख वह रानी स्वयं जाग गई और शरीर को अंलकारों से विभूषित कर मनोहर रूप धारण कर राजा के पास गई और उन सोलह स्वप्नों को निवेदन करने लगी॥९॥ तब हर्ष से पुलकित हो उस राजा ने स्वप्नों के फल को कहा कि हम लोग तीनों लोक के गुरु-तीर्थंकर के गुरु अर्थात् माता-पिता होवेंगें॥१०॥

कुबेर ने भगवान् के गर्भ में आने के छह माह पहले और गर्भावस्था के नव महीनों में (प्रतिदिन) इस तरह पन्द्रह महीनों तक साढ़े तीन किन्हीं शास्त्रों में १४ करोड़ रत्न प्रतिदिन वर्षने का कथन प्राप्त होता है। एक बार में साढ़े तीन करोड़ रत्न तथा एकदिन की चारों संध्या कालों में चौदह करोड़ बरशते थे। करोड़ों रत्न भगवान के माता-पिता के घर बरसाये॥११॥ जन्म काल आने पर वे भगवान् तीन लोकों को कम्पायमान करते हुए उस माता से ठीक वैसे ही पैदा हुए जैसे पूर्व दिशा से सूर्य उगता है॥१२॥

उस समय सभी प्रजा संतुष्ट हो गई और सभी दिशाएँ स्वच्छ हो गई। देवतागण दुन्दुभि बाजे बजाने लगे और आकाश से पुष्पवृष्टि होने लगी॥१३॥ इन्द्रों ने अपने-अपने आसन कम्पने से शीघ्र ही भगवान् के जन्म को जान लिया और बड़ी विभूति से देवों और देवाङ्गनाओं के साथ उस नगर में आये॥१४॥

इन्द्राणी माता का संस्कार कर तथा उसे मोह निद्रा में सुला, पास में मायामयी बालक को रखकर भगवान् को उठा ले गई और उसे इन्द्र के हाथ में रख दिया॥१५॥ वस्त्रों से भूषित इन्द्र के हाथ में वे भगवान् अत्यन्त शोभित हुए जैसे कि संध्या के समय स्वच्छ समुद्र पर शरद् कालीन सूर्य सुशोभित होता है॥१६॥ इसके बाद इन्द्र, भगवान् के ऊपर श्वेत छत्र लगाकर चंवरों को हिलाता हुआ उन्हें रत्नों की किरणों से गुलाबी रंगवाले सुमेरु पर्वत पर ले गया॥१७॥ और उन्हें निर्मल पाण्डुक शिला के ऊपर जगमगाते सिंहासन पर बैठाकर क्षीरसागर के जल से भरे हुए स्वर्ण के कलशों से भगवान् का अभिषेक किया॥१८॥ इसके बाद इन्द्र ने भगवान् को उत्तम वस्त्र आभूषण अंलकार आदि पहनायें और सभी इन्द्रों ने भगवान् को प्रणाम कर स्तुति की तथा सुमेरु पर्वत से नगर में ले आये॥१९॥ फिर इन्द्राणी ने अपने पति के करकमलों से भगवान् को लेकर, मायामयी बालको को हटाकर माता की गोद में रख दिया॥२०॥ तथा सभी इन्द्र भगवान् के माता-पिता की विधिपूर्वक पूजा कर के आनन्द नामक नाटक खेलकर अपने-अपने स्थान चले गये॥२१॥

त्रैलोक्य में पूजा के योग्य पात्र श्रेष्ठ पुत्र को पाकर भगवान् के माता-पिता अत्यन्त प्रसन्न हुए॥२२॥ त्रिभुवनपति के उत्पन्न होने से काश्यप वंश की लक्ष्मी दिनों-दिनों चारों ओर खूब बढ़ने लगी; इसलिए तथा उनके दर्शन से इन्द्र लोग और भगवानके माता-पिता के नेत्र तृप्त हो गये, इन कारणों से भगवान् का नाम प्रसन्नता पूर्वक "श्रीवर्धमान" रखा गया॥२३-२४॥ तीन ज्ञान के धारी वे भगवान् जनता को प्रतिदिन परम प्रसन्नता देते हुए, बाल-चन्द्रमा के समान सौम्य कान्ति से बढ़ने लगे॥२५॥

एक समय भगवान् बहुत से राजकुमारों के साथ खेल रहे थे। उसी समय उन्हें किसी देव ने भयङ्कर सर्प का रूप धारण कर डराया॥२६॥ पर भगवान के न डरने से वह स्वयं डर गया और उन्हें नमस्कार कर पूजा की तथा उनका 'वीर' यह प्रसिद्ध नाम रख दिया॥२७॥ भगवान् के शरीर की सुगन्धि फूले हुए कमल की गंध के समान थी, प्रभामण्डल से व्याप्त उनके शरीर की कान्ति थी तथा उनका शरीर अनेक प्रकट शुभ चिन्हों से युक्त था॥२८॥ भगवान् के लिए अत्यंत अद्भुत वस्तु भी कुछ भी अद्भुत न थी पर भगवान के अद्भूत चरित को देखने वालों के लिए अन्य दूसरे अद्भुत पदार्थ भी व्यर्थ ही थे॥२९॥ उनके गुणों मे मुग्ध जनता उन्हें देखकर बहुत प्रसन्न होती थी और सब लोग उनके दर्शन को अपने पूर्व जन्म में उपार्जित उत्तम पुण्य का फल ही मानने लगे॥३०॥

वे भगवान् इन्द्र की आज्ञा से कुबेर-द्वारा लाये गये अत्यन्त सुख देने वाले, विचित्र प्रकार के अनेकों भोगों से सुखपूर्वक रहने लगे। राज्य-लक्ष्मी के तीक्ष्ण

कटाक्षों और स्नेह भरे नेत्रों से चाहे जाने पर भी वे भगवान् जाति स्मरण हो जाने से मतिज्ञानावरण के क्षयोपशम हो जाने पर (गृहस्थावस्था में) ठहर न सके ॥३१-३२॥ उस समय नियोग पूरा करने के लिए लौकान्तिक देव आये और भगवान् को समझाने लगे कि हे भगवान्, दोषों को नष्ट करने के लिए तुम्हारे लिए यही क्षण अच्छा है ॥३३॥ इन्द्र की आज्ञा से कुबेर ने जिन भगवान् की दीक्षा के एक वर्ष पहले ही जनता के लिए "जो चाहो उसी वस्तु" का दान दिया ॥३४॥ अवधिज्ञानधारी इन्द्रों ने अपने-अपने आसनों के कांपने से भगवान् का दीक्षा-कल्याणक जाना और जल्दी से सजधज कर अपने-अपने परिवारों के साथ वहाँ आये ॥३५॥ तथा भगवान् का क्षीर सागर के जल से भरे एक हजार आठ कलशों से अभिषेक किया और उन्हें वस्त्र आभूषण आदि से सजाया ॥३६॥ तब कुबेर चन्द्रमा की किरणों की चमक को मात करने वाली चन्दप्रभा नामकी रमणीय पालकी को बनाकर भक्ति पूर्वक वहाँ लाया ॥३७॥ और इन्द्र के निवेदन करने पर वे भगवान उस मनोहर पालकी में बैठे, जिसे पहले क्षत्रिय लोग उठाकर ले चले और फिर देवता लोग उसे लेकर चले ॥३८॥ बहुत प्रसन्न देवाङ्गनाओं द्वारा गीत, नृत्य, आदि से सेवित वे भगवान् पृथिवी के तिलक के समान सुन्दर ज्ञातखण्ड नाम के उद्यान में पहुचें ॥३९॥ फिर पालकी से उतर कर उन्होंने वस्त्र-आभूषण उतार दिये और एक शिला पर बैठकर पञ्च मुष्ठि से अपना केशलोंच कर लिया ॥४०॥ फिर उन्होनें समस्त परिग्रह छोड़कर षष्ठोपवास पूर्वक दीक्षा ले ली और स्वाभाविक दीप्ति से वे ऐसे मालूम होते थे जैसे बादलों के हट जाने से सूर्य प्रभान्वित (प्रकट) होता है ॥४१॥ तब इन्द्रों ने भगवान् के बालों को सोने की डिबिया में रखकर और उनकी पूजाकर उन्हें क्षीर सागर के निर्मल जल में क्षेप दिया ॥४२॥ दीक्षा लेते ही भगवान् को मनःपर्यय ज्ञान हो गया तब इन्द्रों ने अपने सब देवों तथा देवियों के साथ तप कल्याणक की पूजा की तथा वे स्वर्गलोक लौट गये ॥४३॥

अनेक गुणरूपी किरणों से विभूषित उन जिन रूपी सूर्य ने, ऐसे संसार-समुद्र के सारे जल को शीघ्र ही सुखा देने का प्रयत्न किया जहाँ कि वृद्धावस्था रूपी भँवरों के चक्कर हैं, जो कि नाना प्रकार के रोगरूपी ग्राहों से व्याप्त हैं तथा भय और क्लेश रूपी लहरों से भरा है, एवं जहाँ सदा मरण रूपी चंचल जल है और जो तृष्णा रूपी वायुओं से संचालित है ॥४४॥

इस प्रकार पुराणसार संग्रह के वर्धमानचरित में भगवान् का दीक्षा कल्याणक नामक चौथा सर्ग समाप्त हुआ।

*****

पंचम सर्ग

किसी दूसरे दिन दयालु बुद्धिमान भगवान् संयम आदि की रक्षा के लिए भिक्षा लेने को कूल ग्राम में गये॥१॥ वहाँ के कूल नामके राजा ने भगवान् को अपने यहाँ आया हुआ जानकर उन्हें नमस्कार कर पूजा की और आदरपूर्वक खीरका आहार दान दिया॥२॥ तब वहाँ पंच आश्चर्य हुए-पहला, आकाश से धन की वृष्टि हुई; दूसरा, आकाश में दुन्दुभियाँ बजने लगीं; तीसरा, शीतल एवं दिव्य सुगन्धि को फैलाने वाली वायु बहने लगी; चौथा, चन्दन की सुगन्धि और अमृत से भरे फूलों की वृष्टि होने लगी; पांचवाँ, देवताओं ने प्रसन्न होकर "अहो दान", "अहो दान" इस प्रकार बहुत बार शब्द किये॥३-४॥ भगवान् शुद्ध दाता से दी गई निर्दोष भिक्षा को शरीर धारण मात्र के लिए लेकर अष्टिका नामक स्थान में योग पूर्वक ठहर गये॥५॥ उस समय देवों ने प्रसन्न होकर कानों को प्रिय लगने वाले वचनों से योग्य-पात्र में दिये गये दान की प्रशंसा की और उस कूल राजा की पूजा की॥६॥

वे भगवान् जितनी जल्दी यह कर्मराशि क्षीण हो जाये तदनुरूप ही उत्तम तप और आराधना करने में प्रयत्नशील हुए॥७॥ तथा संसार के सभी प्राणियों पर दया से चित्त को व्याप्त कर अर्थात् दयाभाव से वर्षाकाल के चार महीनों में वे एक ही जगह योग धारण कर रहते थे॥८॥ और उसके अतिरिक्त दूसरे महीनों में ज्ञान ध्यान तप में लवलीन वे भगवान बेरोक-टोक नगरों और देशों में लोगों का धर्मोपदेश देते हुए भ्रमण करने लगे॥९॥

एक समय ये उज्जयिनी नगर में रात्रि के समय कायोत्सर्ग धारण कर बैठे थे। वहाँ गौरी के साथ घूमते हुए योगी (सात्यकि नामके) महादेव ने उन्हें देखा॥१०॥ उस रुद्र ने भगवान् के धैर्य की परीक्षा करने के लिए अपने विद्या-बल से वेताल, सर्प, सिंह आदि के रूप धारण किये, पर वह उन्हें डिगाने में असमर्थ रहा। फिर उनकी पूजा कर, उनका 'महावीर' नाम रखकर वह अपने स्थान चला गया॥११-१२॥

एक समय भगवान् ऋजुकूला नदी के किनारे जृम्भिक ग्राम के पास मनोहर नामक वन में एक साल वृक्ष के नीचे शिला पर बैठे थे॥१३॥ वहाँ उन्होंने षष्ठोपवास पूर्वक शुक्ल ध्यान प्राप्त किया, तथा कर्म शत्रुओं को जीतने के लिए क्षपक श्रेणी में आरूढ़ हुए॥१४॥ और अपनी ध्यानरूपी अग्नि में मोहनीय आदि चार घातिया कर्मों की आहुति देकर दोपहर के बाद केवल ज्ञान प्राप्त किया॥१५॥ तब तीनों लोकों को कम्पन करने वाले केवलज्ञान को उत्पन्न हुआ जानकर सभी

इन्द्र, देवों के समूह के साथ, बड़े वैभव से वहाँ आये॥१६॥ और प्रदक्षिणा कर स्तुति योग्य उन भगवान् की स्तुति की तथा प्रसन्नता पूर्वक सिर झुकाकर उन्हें नमस्कार कर तथा पूजाकर स्वर्गलोक चले गये॥१७॥

भगवान् की दिव्यध्वनि न खिरने का क्या कारण होना चाहिए यह विचार कर इन्द्र गौतम (इन्द्रभूति) को वहाँ किसी उपाय से ले गया। वे गौतम भगवान् के प्रथम गणधर हुए॥१८॥ भगवान् की दिव्यध्वनि श्रावण महीने के कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा के दिन पूर्वाह्न में निकली और छह सात दिन तक बराबर चलती रही॥१९॥ उन भगवान् ने तीर्थ प्रवर्तन करने के लिए हेतुभूत मध्यमा वाणी का अवलम्बन लिया और महासेन वन नामक उद्यान में आकर बैठ गये॥२०॥ तब अपने शरीर के आभूषण आदि के प्रकाश मण्डल (जगमगाहट) को फैलाते हुए और समस्त दिशाओं को प्रकाशित करते हुए चारों ओर से देवता लोग वहाँ आये॥२१॥ उस समय आकाश में दुन्दुभियाँ बजने लगीं, सुगन्धित वायु बहने लगी और दिशाओं को सुगन्धि से सुगन्धित करती हुई आकाश से पुष्पवृष्टि गिरने लगी॥२२॥ सभी देवता आठ प्रातिहार्यों की रचना कर और अत्यन्त अद्‌भुत पूजाकर भगवान् के धर्मोपदेश रूपी अमृत का पान करते हुए समवशरण में बैठ गये॥२३॥ तीनों लोकों में अपात्र लोगों के लिए दुर्लभ उस वाणी को इन्द्रभूति आदि गणधरों ने जीवादि तत्व में सन्देह रहित होकर सुना॥२४॥

चेटक राजा की छठवीं पुत्री चन्दना ने भगवान् को प्रणाम कर तथा शीघ्र ही संसार से विरक्त हो जिनदीक्षा धारण कर ली॥२५॥ महासेन आदि राजा लोग भी श्रावक हो गये और प्रियङ्गुदेवी आदि रानियाँ अज्ञान रहित हो श्राविकाएँ हो गई॥२६॥ वे भगवान् मुनि, आर्यिका, श्रावक-श्राविका, इन चार संघों के स्वामी थे। उन्होंने अपने श्रेष्ठ ज्ञानबल से देवताओं और मनुष्यों की सभा में जनता का संशय नष्ट किया॥२७॥ संसार-सागर से तरने योग्य भव्य जीवों को तारते हुए तथा प्राणि वर्ग को उपदेश देते हुए वे जिनेन्द्र भूतल पर भ्रमण करने लगे॥२८॥

सभी अतिशयों से युक्त उन श्रीवर्धमान भगवान् के संघ में महाबुद्धि शाली ११ गणधर थे; ५०० मनःपर्यय ज्ञानधारी थे तथा सात सौ केवलज्ञानी मुनि थे; तेरह सौ अवधिज्ञानी मुनियों की संख्या थी; विक्रियाऋद्धिधारी मुनियों की संख्या नौ हजार नौ सौ थी; तथा परम तेजस्वी चौदह पूर्वधारी मुनि तीन सौ थे एवं युक्तिवादी मुनि चार सौ थे; चन्दनादि छत्तीस हजार आर्यिकाऐं थीं तथा तीन लाख श्राविकाऐं थीं और एक लाख यशस्वी श्रावक थे॥२९-३४॥

इस प्रकार चतुर्विध संघ [illegible] में वे रत्नत्रय निधि के स्वामी भगवान् पावा नगर। [illegible] शिला पर अकेले खड्गासन से खड़े होकर उन भगवान् ने शेष कर्मों को भी नष्ट कर दिया ॥३६॥ और उन्होंने कार्तिक महीने की कृष्ण चतुर्दशी (अमावस्या [illegible] प्रथम मुहूर्त में) की रात्रि के अन्तिम प्रहर में कृतकृत्य हो प्रातः काल मोक्ष प्राप्त किया ॥३७॥ तब इन्द्र लोग देवताओं के साथ शीघ्र ही रात्रि के अंधकार को अपनी प्रभामण्डल से भेदते हुए अर्थात् लोक को प्रकाशित करते हुए भक्ति पूर्वक वहाँ आये ॥३८॥ तथा अपनी आत्मीय शक्ति का पूरा प्रदर्शन करते हुए उन लोगों ने जल चन्दन पुष्प आदि से भगवान् के शरीर की अद्भुत पूजा की ॥३९॥ और जिन भगवान् का गुण कीर्तन कर पुण्य लाभ कर प्रसन्नचित हो स्वर्ग लोक चले गये ॥४०॥

उन भगवान ने अपनी आयु के तीस वर्ष भोगों में, १२ वर्ष तपस्या में और तीस वर्ष तक इन्द्रों से पूज्य अर्हन्त लक्ष्मी पाकर विहार किया ॥४१॥ उन ने वैशाख शुक्ल दशमी तिथि के दिन केवलज्ञान प्राप्त किया था और श्रावण कृष्ण प्रतिपदा को तीर्थ प्रवर्तन किया था। वर्धमान भगवान् के स्वर्ग से अवतरण आदि में अर्यमा नाम का योग था और मोक्ष जाने में स्वाति नक्षत्र था ॥४२-४३॥ उनके शरीर की ऊँचाई सात अरत्नि अर्थात् साढ़े तीन हाथ थी। शरीर की कान्ति शरद् कालीन सूर्य के समान थी। मैं प्रकाशमयी उन जिनेन्द्र वर्धमान स्वामी को नमस्कार करता हूँ ॥४४॥

इस प्रकार भक्तिवश मैंने यशरूपी गन्ध से सुगन्धित और स्तुति रूपी कोपलों से सुशोभित (अलंकारादि) कान्ति से रहित होने पर भी नामावली रूपी मनोहर पुष्पों से जिन भगवान् की पूजा की है। गुणों से रहित भी इस स्तुति के संबंध में सज्जन लोग मुझे क्षमा करें ॥४५॥

विद्या में पारङ्गत देवाङ्गनाओं का स्वामी इन्द्र भी जिनके थोड़े गुणों की भी पूरी तरह से स्तुति करने में असमर्थ रहा, वे महिमाओं के आधार संसार अज्ञानांधकार को दूर करने में सूर्य के समान वीर भगवान् हम लोगों के जन्म मृत्यु जीतने वाली सम्पत्ति अर्थात मोक्ष को देने वाले हों ॥४६॥

इस प्रकार पुराणसारसंग्रह के वर्धमान चरित में भगवान् का मोक्षगमन नामक पाँचवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

*****